॥ ओ३म् ॥

पूज्यपादस्वामिविरचित

# समाधिशतकम् ।

तदुपरिभावार्थ-हिन्दी-भाषाटीका-

अनुवादक मुनिमाणिक

( प्रभाचन्द्रसंस्कृतटीका के अनुसार )

प्रसिद्धकर्त्ता-

मेरठ आत्मकल्याण पब्लिक-जैन-लाइब्रेरी के हितार्थ

वकील कीर्त्तिप्रसाद जी जैनी बी. ए. एल. एल. बी.

*Printed by-*

RAGHUBIR SARAN DUBLIS

*At the Bhaskar Press, MEERUT. and Published by*

*B. KIRTIPRASAD B. A. LL. B. Vakil Meerut*

प्रथमावृत्ति प्रति १००]          [ कीमत ≡) तीन आना

वीर सं० २४४१, सन् १९१५

# प्रस्तावना

—[]७[]—

समाधिशतक आत्महितचिन्तकों के लिये अपूर्व ग्रन्थ है जिसको दिगम्बराम्नाय के प्रसिद्ध मुनि पूज्यपाद स्वामी ने बनाया जिन्होंने यह ग्रन्थ बनाकर मन स्थिर करने की अमृत औषध हरेक भव्यात्माओं के लिये इसमें रखदी है इसमें किसी पक्ष पर आक्षेप न कर सर्वमान्य ग्रन्थ बनाया है, इस पर प्रभाचन्द्र जीने सरलटीका की है, जिसका अनुवाद गुजराती भाषा में करवा कर बड़ौदामहाराज ने अपने स्कूलों में प्रचलित किया है और अंग्रेजी अनुवाद मणिलाल नथुभाई द्विवेदी ब्राह्मण ने किया है इसका अनुवाद मराठी भाषा में भी होचुका है। मेरे को समाधि देने वाला होने से मैंने हिन्दीभाषा जानने वाले भ्राताओं के लिये श्लोकों का भावार्थ बनाया है। श्लोकों का अक्षरार्थ करने से गूढ ग्रन्थ का रहस्य बालजीवों को नहीं मिल सकता और पंडितों को अर्थ बताने की आवश्यकता नहीं है जिससे सिर्फ हिन्दी भावार्थ श्लोकों के साथ छपाया है। इस पर यदि कोई महाशय विशेष सरल शुद्ध शब्दार्थ लिखेंगे तो अधिक उपकार होगा। ऐसे ग्रन्थों की लाखों प्रति भेंट देकर लोगों को ज्ञान प्रकाश करने की आवश्यकता है जिसको पढ़कर आत्मार्थिओं को विषयानन्द जो सुखाभास है वह छूट जावेगा केवल सच्चा आत्मानन्द और चिरस्थायी शान्ति मिलेगी।

मुनिमाणिक

मेरठ सिटी

अथ

# समाधिशतक

## हिन्दी भाषान्तर सहित।

येनात्माऽबुध्यतात्मैव परत्वेनैव चापरम्।
अक्षयानन्तबोधाय तस्मै सिद्धात्मने नमः ॥ १ ॥

जिसने आत्मा को जानलिया है और आत्मा से भिन्न जैसे अजीव पदार्थ शरीरादि को आत्मा से भिन्न जान कर उस का मोह त्यागदिया है तथा शुद्ध आ मा का ध्यान करने से, माया-प्रपंच जाल छूट जाने से जिस को अनन्त ज्ञान (कैवल्यज्ञान) कभी नाश न होने वाला प्राप्त हुआ उस सिद्ध भगवान् को मेरा नमस्कार हो ॥ १ ॥

जयन्ति यस्यावदतोऽपि भारती,
विभूतयस्तीर्थकृतोऽप्यनीहितुः ।
शिवाय धात्रे सुगताय विष्णवे,
जिनाय तस्मै सकलात्मने नमः॥२॥

जिस भगवान् की विना बोले भी वाणी की शोभा जगत् में यश फैला रही है और मोक्ष देने वाला तीर्थ प्रकट करने से सुरेन्द्र नरेन्द्रों से निरन्तर पूजनीय होने पर भी अहंकारादि से विमुख है, उस उपद्रव दूर करने वाले, मोक्षमार्ग की विधि वताने वाले, सुस्थान (सिद्धि) मे वैठे हुए, अनन्त ज्ञान से जगत् में व्याप्त और कर्मशत्रुओं को जीतने वाले शुद्ध अखण्ड आत्मा को मेरा नमस्कार हो ॥

इस श्लोक से ग्रन्थकर्त्ता ने अपना निष्पक्षपात स्थापन करके धर्मों का जो क्लेश नाहक जगत् मे फैल रहा है उसको दूर करने का मार्ग ग्रहण किया है ॥

श्रुतेन लिंगेन यथात्मशक्ति,
समाहितान्तः करणेन सम्यक्।
समीक्ष्य कैवल्यसुखस्पृहाणाम्,
विविक्तमात्मानमथाभिधास्ये॥३॥

जिनेश्वर प्रभु के कहे हुए सिद्धान्त से सहहेतु यथाशक्ति चित्त स्थिर करके अच्छी तरह से विचार करके एकान्तसुख के वाञ्छक भव्यजीवों को निर्मल निष्कलंक निरञ्जन निराबाध आत्मा का स्वरूप कहूंगा ॥ ३ ॥

इस श्लोक में ज्ञानी भगवान् के वचनानुसार ग्रन्थ करने का प्रयोजन बतलाया है। तथाहि "एगो मे सासओ अप्पा नाणदंसण संजुओ सेसा मे बाहिरा भा वा सव्वे सजोग लक्खणा" और अपना प्रमाद दूर करके ग्रन्थ बनाया है जिस से श्रोताओं को पढ़ने में प्रमाद छोड़ कर पढ़ने को सूचित किया है और इस ग्रन्थ का अधिकारी संसार के दुःखमिश्रित सुख से विमुख होने वाला होना चाहिये।

बहिरन्तः परश्चेति त्रिधाऽऽत्मा सर्वदेहिषु।
उपेयात्तत्र परमं मध्योपायाद्बहिस्त्यजेत् ॥ ४ ॥

इस संसार में जितने प्राणी हैं उन्हों में आत्मा विद्यमान होने पर भी चेष्टा भिन्न और विचित्र देख कर ज्ञानी भगवान् ने उस आत्मा को तीन प्रकार से शास्त्र में बताया है। तथाहि—(१) बाह्यआत्मा (२) अभ्यन्तर आत्मा और (३) परमात्मा। इस से भव्यजीवों को वीतराग प्रभु उपदेश करते हैं कि हे भव्यजीवो! आप लोग अभ्यन्तर आत्मा में स्थिर होकर शुदुपाय से बाह्य आत्मा की चेष्टा छोड़ कर परमात्मा का स्वरूप प्राप्त करो॥४॥

इस श्लोक में बालचेष्टा से जो जीव दुःख पाता है उस को छुड़ाने के लिये यह उपदेश दिया है कि आप बालचेष्टा छोड़ो।

बहिरात्माशरीरादौ जातात्मभ्रान्तिरान्तरः।
चित्तदोषात्मविभ्रान्तिः परमात्मातिनिर्मलः ॥ ५ ॥

बाह्यआत्मा अपना शरीर धन औरत बेटे अपने से भिन्न होने पर भी अपने मान कर बाह्य वस्तु और शरीर के घटने बढ़ने पर हर्ष शोक करता है और नये पाप कर कर्मबन्ध से जन्म मरण का दुःख पाता है। किन्तु अभ्यन्तर आत्मा अपने दुष्ट कर्म क्षय और शान्त होने से किंवा सद्गुरु की सेवा और सदुपदेश मिलने से शरीरादि को भिन्न जान कर बाह्य वस्तु किंवा शरीरादि के घट बढ़ होने पर भी चित्त में खेद हर्ष नहीं करता है और परमात्मा कर्म से मुक्त हो कर निर्मलरूप में है ॥ ५ ॥

निर्मलः केवलः शुद्धो विविक्तः प्रभुरव्ययः।
परमेष्ठी परात्मेति परमात्मेश्वरो जिनः ॥ ६ ॥

जैनधर्म में परमात्मा को दो रूप से मानते हैं–१–साकार ( अरिहन्त ) और २–निराकार ( सिद्ध )। अरिहन्त उपदेश देने वाले और सिद्ध मुक्ति में गये हुए। दोनों का कैवल्यज्ञान सम्पर्ण होने से दोषों से मुक्त होने से कर्ममल से रहित निर्मल है। दोनों का मोह शरीरादि से दूर होने से भिन्न है, पाप से विमुक्त होने से शुद्ध है, फिर जन्ममरण न होने से पुद्गल ( जड ) समूह से न्यारा है, कर्मबन्ध दूर होने से सब का स्वामी है, अज्ञानता दूर होने से चिदानन्द स्वरूप बदलना नहीं है, श्रेष्ठता प्राप्त करने से श्रेष्ठ पद में रहता है, निर्मल आत्मा होने से संसारी जीवों से उत्तम है, गति भ्रमण से दूर होने से ईश्वर है और रागद्वेषादि शत्रुओं को जीतने से जिन है ॥ ६ ॥

बहिरात्मेन्द्रियद्वारैरात्मज्ञानपराङ्मुखः।
स्फुरितः स्वात्मनो देहमात्मत्वेनाध्यवस्यति ॥७॥

बाह्य आत्मा ( विषयाभिलाषी ) कान, आंख, नाक, जीभ और शरीर के उपयोग से कार्य करता हुआ उन इन्द्रियों को ही आत्मा जानता है और अपने चिदानन्द स्वरूप आत्मा को याद में नहीं लाता कि तू मेरा आत्मा शरीर के भीतर है, इस का ध्यान भी उन के हृदय में नहीं आता और शरीर को ही आत्मा

वीर्य का नाशिक है। किन्तु कर्म के सम्बन्ध से तुम को वह शरीर मिला है।

स्वदेहसदृशं दृष्ट्वा परदेहमचेतनम्।
परात्माधिष्ठितं मूढः परत्वेनाध्यवस्यति ॥ १० ॥

अपने शरीर के मुआफिक अन्य जीवों की देह ( शरीर ) देखकर जैसे अपने आत्मा को भूलगया है वैसे ही दूसरे जीवों के आत्मा को भूल जाता है। किन्तु अचेतन शरीर को ही उसका आत्मा मानकर यह जुदा मनुष्य है वैसा मान्य करता है किन्तु मेरा आत्मा जैसा चिदानन्द स्वरूप है वैसा ही और प्राणी का भी है ऐसा नहीं मानता है ॥ १० ॥

इस श्लोक से कितनेक लोग दूसरे प्राणियों के आत्मा नहीं मानते हैं उनको हितशिक्षा दी है कि आप लोग अपने आत्मा के तुल्य और के भी आत्मा को जानो ॥

स्वपराध्यवसायेन देहेष्वविदितात्मनाम्।
वर्त्तते विभ्रम पुंसां पुत्रभार्यादिगोचरः ॥ ११ ॥

विषयाभिलाषी संसारसुख आकांक्षी मूढ पुरुष आत्मज्ञान से विमुख होने से दूसरे प्राणियों को पर जान कर उनके लिये विभ्रम उठाता है और मोह दशा में डूब कर अधर्म भी करता है और पुनः२ दुःख पाता है।

इस श्लोक मे जो लोग अपने बच्चों तथा औरतों के लिये अनीति करते हैं और पाप करने से इस लोक मे शिक्षा पाते हैं तथा हर्ष शोक करके अहंकार दीनता धारण करते हैं, उन को हितशिक्षा दी गई है कि वे बाल बच्चे तुम्हारे नहीं हैं, किन्तु कर्मसम्बन्ध से मिले हैं। कर्मबन्धन छूटने से वे भी अपना कर्म भोगने को कहां भी चले जायंगे। तुम उनके लिये अहंकार दीनता का भ्रम मत उठाओ, किन्तु आत्महित ( परमार्थ ) करके परमात्मरूप सम्पादन करो ॥

मूलं संसारदुःखस्य देह एवात्मधीस्ततः ।
त्यक्त्वैनां प्रविशेदन्तर्बहिरव्यापृतेन्द्रियः ॥१५ ॥

विचारवान् पुरुषों को अब मालूम होगा कि शरीर को आत्मा मान लेने से संसार दुःखी है यानी सब दु:खों का मूल यह मूर्खता है कि शरीर को आत्मा मानना, जिससे आप लोग हृदय मे सोचें कि वह दुर्विचार त्याग के शरीर से भिन्न आत्मा से भिन्न जानकर इस के सुख का विचार छोड़ के आत्महित में चित्त रखना ॥१५॥

इस श्लोक मे इन्द्रियों के वश होकर जो मूर्ख दुःखों की जड डालते हैं और अनादिकाल से जन्म मरण के दुःख भोगते हैं उनके लिये हितशिक्षा दी है कि इन्द्रियों को कब्जे मे रक्खो ।

मत्तश्च्युत्वेन्द्रियद्वारैः पतितो विषयेष्वहम् ।
तान् प्रपद्याहमिति मां पुरा वेद न तत्त्वतः ॥ १६ ॥

जिस बुद्धिमान् आदमी को आत्मा शरीर से भिन्न मालूम हुआ है वह सुज्ञ पुरुष हृदय में विचारता है कि मैंने इन्द्रिय द्वारों से ज्ञान होना देखकर, इन्द्रियों को ही आत्मा जानकर, इन्द्रियों के वश हो कर, आत्महित से पतित ( भ्रष्ट ) होकर, विषयों में लीन होकर बहुत दुःख पाया है। मेरा अब फर्ज है कि इन इन्द्रियों का परवशपना छोड़कर आत्महित सोचूं । अहा ! इतने दिनों में मैंने अपने को भी नहीं जाना कि मैं आत्मा हूं ॥१६ ॥

इस श्लोक में समझाया है कि आप इन्द्रियां नहीं हो,किन्तु आत्मा हो । इन्द्रियां भिन्न हैं ।

एवं त्यक्त्वा बहिर्वाचं त्यजेदन्तरशेषतः ।
एष योगः समासेन प्रदीपः परमात्मनः ॥ १७ ॥

जिस आदमी ने आत्मा को जानलिया है वह ज्ञानीपुरुष बाह्य कायचेष्टा को छोड़ता है और सद्गुरु से प्रार्थना करता है कि हे सद्गुरो ! मेरे को आप योग बताइये, जिसमे मेरे को शान्ति होवे । इन भव्यजीवों को यह उपदेश है कि आप लोग पहिले

अपनी जीभ को वश में करो, किसी के साथ बात मत करो और फिर पीछे मैं सुखी, मैं दु:खी, मैं पुष्ट, मैं कमताकत, मैं बादशाह, मैं कंगाल—इस प्रकार के अन्तर में विकल्प मत करो। यह योग साधने की संक्षिप्त शिक्षा है और इस तरह से अपना शुद्ध स्वरूप जो परमात्मा के तुल्य है वह प्रकाशक हो जावेगा ॥ १७ ॥

यन्मया दृश्यते रूपं तन्न जानाति सर्वथा ।
जानन्न दृश्यते रूपं ततः केन ब्रवीम्यहम् ॥ १८ ॥

जिस पुरुष का चित्त स्थिर नहीं होता है और जिसे बातों का बहुत अभ्यास है उस पुरुष को यह हितशिक्षा है कि आप मन में सोचोगे और आत्मध्यान करोगे तब यह हृदय में अध्यवसाय होगा कि मैं जो किसी का शरीर ( रूप ) देखता हूं वह जड होने से किसी के साथ बात करता नहीं और मेरा कहना वह बिलकुल जानता नहीं है और जिस का आत्मा मेरा कहना जानता है वह आत्मा अरूपी होने से मेरे देखने में नहीं आता तब मैं किस के साथ बात करूं ? यह विचार करने से जिह्वा से जो जिस तिस के साथ झगड़ा और गालागाली होती है वह आत्मज्ञानी पुरुष को नहीं होगी ॥ १८ ॥

यत्परैः प्रतिपाद्योऽहं यत्परान् प्रातिपादये ।
उन्मत्तचेष्टितं तन्मे यदहं निर्विकल्पकः ॥ १९ ॥

जो दूसरे को बोध देते हैं या दूसरे से बोध पाते हैं और अहङ्कार दीनता लाते हैं वह पुरुष मन में जब आत्मज्ञान लावेगा तब उस को मालूम होता है कि मैं न किसी से बोध पाता हूं किंवा न मैं किसी को बोध करता हूं किन्तु सब का ज्ञान सब के पास ही है और दूसरा पुरुष निमित्त मात्र है किन्तु आत्मा का ज्ञानावरण दूर होता है। तब ज्ञान प्रकाश होता है तो मैं किसी से कैसे बोध पाऊंगा किंवा मैं बोध कर सकूंगा तब मुझे नाहक क्यों हर्ष शोक से अहङ्कार दीनता लाना। मैं निर्विकल्प हूं मेरे को यह खटपट छोड़ देना और मैंने जो अहङ्कार दीनता की

सो मेरा उन्मत्त चेष्टित कर्म है।

यदग्राह्यं न गृह्णाति गृहीतं नापि मुञ्चति।
जानाति सर्वथा सर्वं तत्स्वसंवेद्यमस्म्यहम् ॥ २० ॥

जो प्रज्ञ ( विद्वान् ) पुरुष है और आत्मध्यान करता है वह पुरुष अग्राह्य ( क्रोधादि ) ग्रहण नहीं करता है और आत्मज्ञान जो चिदानन्दरूप केवल ज्ञान है सो कभी भी छोडता नहीं है और इस ज्ञान से सब पदार्थों का सम्पूर्ण स्वरूप जानता है जिस में विचार करता है कि मेरे को मालूम होता है कि मैं अपने ज्ञान से अपने को जानूं ॥ २० ॥

इस श्लोक में आत्मध्यान करने वाले को सूचना दी है कि आप अपने आत्मा की परीक्षा अपने अनुभव से करो और किसी को पूछने की आवश्यकता नहीं है कि मेरा आत्मा कहां है और कैसा है ? आप के पास ही शरीर से भिन्न शरीर में बैठा है।

उत्पन्नपुरुषभ्रान्तेः स्थाणौ यद्वद्विचेष्टितम्।
तद्वन्मे चेष्टितं पूर्वं देहादिष्वात्मविभ्रमात् ॥ २१ ॥

आत्मज्ञान होने से हृदय में यह विचार [illegible] शरीर को आत्मा मानने में कैसी मूर्खता की [illegible] पेड़ के ठुण्ठ ( सूखा हुआ पेड़ का [illegible] रह जाता है ) को पुरुष [illegible] करना और [illegible] वैसी शरीर के लिये मेरी पूर्व चेष्टा [illegible] पाया, किन्तु [illegible] ।

इस श्लोक में [illegible] ज्ञान हो जाने पर [illegible] ।

[illegible]

और जागृत होने से मुझे मालूम होता है कि मेरा आत्मा मेरी इन्द्रियों से देखने मे नहीं आवेगा, किन्तु इन्द्रियों को शान्त करके ध्यान करने से ही मेरे आत्मा का मुझें अनुभव होता है जिससे मैं शरीर से भिन्न आत्मा हूं सोही मैं हूं।

क्षीयन्तेऽत्रैव रागाद्यास्तत्त्वतो मां प्रपश्यतः ।
बोधात्मानं ततः कश्चिन्नमे शत्रुर्न च प्रियः ॥ २५ ॥

उसको आत्मज्ञान हो जाने से उस पुण्यवान् आत्मा के राग-द्वेष नष्ट हो जाते हैं और आत्मा मे तत्त्वज्ञान दृढ़ हो जाने से स्वयं आत्मा का अनुभव करके अपने आत्मा को देखता हुआ चिदानन्द स्वरूप उसका देखकर अपने आत्मा के मलिन भाव जो कर्मजनित पुद्गल ( जड ) का समूह रूप है सो देखकर आत्मा को कलुषित नही करता, किन्तु विचारता है कि आत्मा चिदानन्द स्वरूप है उसके ऊपर कर्म सिवाय किसी का उपकार तथा अपकार नहीं होता है और सब उपकार तथा अपकार करने वाले निमित्त मात्र हैं सो मेरे को न तो कोई उपकार करने वाला है न कोई अपकार करने वाला है जिससे मेरा न कोई शत्रु है न मित्र ॥२५॥

मामपश्यन्नय लोको न मे शत्रुर्न च प्रियः ।
मां प्रपश्यन्नयं लोको न मे शत्रुर्न च प्रियः ॥ २६ ॥

मेरे को देखने वाले लोग बहुत कम हैं। जो मुझे देखते नही हैं वे मेरे शत्रु मित्र कभी नहीं हो सकते जिससे वे लोग मेरे शत्रु नहीं हैं और मित्र भी नही हैं और देखने वाले जो अतीन्द्रिय ज्ञानी हैं वे लोग किसी के मित्र शत्रु नहीं होते है इस लिये वे लोग भी मेरे शत्रु वा मित्र नही है तब मुझे रागद्वेष क्यों करना चाहिये ॥ २६ ॥

इस श्लोक में सूचना दी है कि आप लोग मित्र को शत्रु वा मित्र मानते है वे लोग जो अतीन्द्रिय ज्ञानी नही होंगे तो

आपके अरूपी आत्मा को कैसे देखेंगे ? इस लिये वे शत्रु मित्र नहीं हैं और जो कैवल्यज्ञानी तुम्हारे अरूपी आत्मा को देखते हैं वे रागद्वेष से रहित होने से तुम्हारे शत्रु वा मित्र नहीं हैं। इस लिये रागद्वेष छोड़ो।

त्यक्त्वैवं बहिरात्मानमन्तरात्मव्यवस्थितः ।
भावयेत् परमात्मानं सर्वसङ्कल्पवर्जितम् ॥ २७ ॥

आत्मज्ञानी सत्पुरुषों को वीतराग ज्ञानी प्रभु ने यह निवेदन किया है कि पूर्व में जो कहा है इस पर ख्याल करके बाह्य आत्मा के लक्षण छोड़ के अभ्यन्तर आत्मज्ञान में स्थित होकर अपना इष्टदेव परमात्मा जो सर्व कर्मों के उपद्रवों से वर्जित है और संसार के किसी जाति के प्रपंचजाल और संकल्प से सर्वथा वर्जित है उस का ध्यान करो।

इस श्लोक में सांसारिक क्रीड़ा में मूढ होकर परमात्मा को भी वैसी लीला करने वाला मानकर उस से सुख मान कर ईश्वर की प्रार्थना में वह संसारी सुख मांगते हैं उस लोगों की दुर्बुद्धि को आत्मज्ञानी को छोड़ देना चाहिये।

सोऽहमित्यात्तसंस्कारस्तस्मिन् भावनया पुनः ।
तत्रैव दृढसंस्काराल्लभते ह्यात्मनः स्थितम् ॥ २८ ॥

परमात्मा आत्मगुणघातक कर्मों से वर्जित होने से निर्मल है और अपना आत्मा उन कर्मों में लिप्त होने से परमात्मा का आलम्बन होने से मैं भी आत्मा हूं और आत्मा है सो ही मैं हूं-ऐसे परमात्मा के आलम्बन से परमात्मा के सदृश अपना आत्मा निर्मल होगा। ऐसी भावना वार २ करने से आत्मा से कर्मजनित पुद्‍गल सङ्कल्प धीरे२ दूर हो जाने से दृढसंस्कार आत्मा में आत्मस्वरूप के हो जाने से वह ही आत्मा अपनी आत्मा की आत्मस्थिति पाता है और आत्मस्थिति मिलने से अपूर्व शान्ति का अनुभव भी होना शुरू होगा।

मूढात्मा यत्र विश्वस्तस्ततो नान्यद्भयास्पदम् ।
यतो भीतस्ततो नान्यदभयस्थानमात्मनः ॥ २६ ॥

आत्मज्ञान प्राप्त करना आरम्भ में कठिन है जिस से मूढ पुरुष विचारा इन्द्रियों के आनन्द में विश्वास करता है और आत्मज्ञान का विचार भी नहीं करता। उसको यह हितशिक्षा है कि भो बन्धो ! जहां तुम विश्वास रख कर बैठे हो वह स्थान तुम्हारे लिये भयकारी है और जहां तुम को अभी भय दीखता है वह आत्मज्ञान तुम्हारा निर्भय स्थान है। अतः आप लोग इन्द्रियों के सुख के लिये जो श्रम उठाते हो और कर्म उपाधि से प्राप्त हुए पुत्र धन मान इत्यादि से नाहक दुःख पाते हो उस को छोड़ कर आत्महित चिन्तन करो जिस से तुम्हारा भय सर्वथा दूर हो जावे।

सर्वेन्द्रियाणि संयम्य स्तिमितेनान्तरात्मना ।
यत्क्षणं पश्यतो भाति तत्तत्त्वं परमात्मनः ॥ ३० ॥

आत्मध्यान करने वाले को इन्द्रियों का ज़ोर बहुत होने से विघ्न होता है इस लिये यह हितशिक्षा है कि पांच इन्द्रियों अर्थात् कान, आंख, नाक, जीभ और शरीर को प्रथम स्थिर करो। एक क्षण भी स्थिर होकर तुम आत्मा में अनुभव करोगे तो तुरन्त आत्मा के निर्मल अंश का अनुभव होगा। वह ही परमात्मा का तत्त्व है अर्थात् आप स्वयं ही परमात्मा के निर्मल स्वरूप को पाने की योग्यता बतलाते हो ॥ ३० ॥

यः परात्मा स एवाहं योऽहं स परमस्ततः ।
अहमेव मयोपास्यो नान्यः कश्चिदिति स्थितिः ॥ ३१ ॥

समुद्र की तरंग के बीच जब नाव हिलती है तब दृश्य ( दिखाव ) विचित्र होता है, जब स्थिर होती है तब उसका असलस्वरूप दीखता है। इसी तरह से आत्मा इन्द्रियों से चञ्चल

आपके अरूपी आत्मा को कैसे देखेंगे? इस लिये वे शत्रु मित्र नहीं हैं और जो केवलज्ञानी तुम्हारे अरूपी आत्मा को देखते हैं वे रागद्वेष से रहित होने से तुम्हारे शत्रु वा मित्र नहीं हैं। इस लिये रागद्वेष छोड़ो।

त्यक्त्वैवं बहिरात्मानमन्तरात्मव्यवस्थितः।
भावयेत् परमात्मानं सर्वसङ्कल्पवर्जितम् ॥ २७ ॥

आत्मज्ञानी सत्पुरुषों को वीतराग ज्ञानी प्रभु ने यह निवेदन किया है कि पूर्व में जो कहा है इस पर ख्याल करके बाह्य आत्मा के लक्षण छोड़ के अभ्यन्तर आत्मज्ञान में स्थित होकर अपना इष्टदेव परमात्मा जो सर्व कर्मों के उपद्रवों से वर्जित है और संसार के किसी जाति के प्रपंचजाल और संकल्प से सर्वथा वर्जित है उस का ध्यान करो।

इस श्लोक में सांसारिक क्रीडा में मूढ होकर परमात्मा को भी वैसी लीला करने वाला मानकर उस में सुख मान कर ईश्वर की प्रार्थना में वह संसारी सुख मांगते हैं उस लोगों की दुर्बुद्धि को आत्मज्ञानी को छोड़ देना चाहिये।

सोऽहमित्यात्तसंस्कारस्तस्मिन् भावनया पुनः।
तत्रैव दृढसंस्काराल्लभते ह्यात्मनः स्थितम् ॥ २८ ॥

परमात्मा आत्मगुणघातक कर्मों से वर्जित होने से निर्मल है और अपना आत्मा उन कर्मों में लिप्त होने से परमात्मा का आलम्बन होने से मैं भी आत्मा हूं और आत्मा है सो ही मैं हूं-ऐसे परमात्मा के आलम्बन से परमात्मा के सदृश अपना आत्मा निर्मल होगा। ऐसी भावना वार २ करने से आत्मा से कर्मजनित पुद्गल सङ्कल्प धीमे२ दूर हो जाने से दृढसंस्कार आत्मा में आत्मस्वरूप के हो जाने से वह ही आत्मा अपनी आत्मा की ममस्थिति पाता है और आत्मस्थिति मिलने से अपूर्व शान्ति अनुभव भी होना शुरू होगा।

मूढात्मा यत्र विश्वस्तस्ततो नान्यद्भयास्पदम् ।
यतो भीतस्ततो नान्यदभयस्थानमात्मनः ॥ २६ ॥

आत्मज्ञान प्राप्त करना आरम्भ मे कठिन है जिस से मूढ पुरुष विचारा इन्द्रियों के आनन्द मे विश्वास करता है और आत्मज्ञान का विचार भी नही करता । उसको यह हितशिक्षा है कि भो बन्धो ! जहां तुम विश्वास रख कर बैठे हो वह स्थान तुम्हारे लिये भयकारी है और जहां तुम को अभी भय दीखता है वह आत्मज्ञान तुम्हारा निर्भय स्थान है । अतः आप लोग इन्द्रियों के सुख के लिये जो श्रम उठाते हो और कर्म उपाधि से प्राप्त हुए पुत्र धन मान इत्यादि से नाहक दुःख पाते हो उस को छोड़ कर आत्महित चिन्तन करो जिस से तुम्हारा भय सर्वथा दूर हो जावे ।

सर्वेन्द्रियाणि संयम्य स्तिमितेनान्तरात्मना ।
यत्क्षणं पश्यतो भाति तत्तत्त्वं परमात्मनः ॥ ३० ॥

आत्मध्यान करने वाले को इन्द्रियों का ज़ोर बहुत होने से विघ्न होता है इस लिये यह हितशिक्षा है कि पांच इन्द्रियों अर्थात् कान, आंख, नाक, जीभ और शरीर को प्रथम स्थिर करो । एक क्षण भी स्थिर होकर तुम आत्मा में अनुभव करोगे तो तुरन्त आत्मा के निर्मल अंश का अनुभव होगा । वह ही परमात्मा का तत्त्व है अर्थात् आप स्वय ही परमात्मा के निर्मल स्वरूप को पाने की योग्यता बतलाते हो ॥ ३० ॥

यः परात्मा स एवाहं योऽहं स परमस्ततः ।
अहमेव मयोपास्यो नान्यः कश्चिदिति स्थितिः ॥ ३१ ॥

समुद्र की तरग के बीच जब नाव हिलती है तब दृश्य ( दिखाव ) विचित्र होता है, जब स्थिर होती है तब उसका मूलस्वरूप दीखता है । इसी तरह से आत्मा इन्द्रियों से चञ्चल

आपके अरूपी आत्मा को कैसे देखेंगे ? इस लिये वे शत्रु मित्र नहीं हैं और जो केवलज्ञानी तुम्हारे अरूपी आत्मा को देखते हैं वे रागद्वेष से रहित होने से तुम्हारे शत्रु वा मित्र नहीं हैं। इस लिये रागद्वेष छोड़ो ।

त्यक्त्वैवं बहिरात्मानमन्तरात्मव्यवस्थितः ।
भावयेत् परमात्मानं सर्वसङ्कल्पवर्जितम् ॥ २७ ॥

आत्मज्ञानी सत्पुरुषों को वीतराग ज्ञानी प्रभु ने यह निवेदन किया है कि पूर्व में जो कहा है इस पर ख्याल करके बाह्य आत्मा के लक्षण छोड़ के अभ्यन्तर आत्मज्ञान में स्थित होकर अपना इष्टदेव परमात्मा जो सर्व कर्मों के उपद्रवों से वर्जित है और संसार के किसी जाति के प्रपंचजाल और संकल्प से सर्वथा वर्जित है उस का ध्यान करो ।

इस श्लोक में सांसारिक क्रीडा में मूढ होकर परमात्मा को भी वैसी लीला करने वाला मानकर उस में सुख मान कर ईश्वर की प्रार्थना में वह संसारी सुख मांगते हैं उन लोगों की दुर्बुद्धि को आत्मज्ञानी को छोड़ देना चाहिये ।

सोऽहमित्यात्तसंस्कारस्तस्मिन् भावनया पुनः ।
तत्रैव दृढसंस्काराल्लभते ह्यात्मनः स्थितम् ॥ २८ ॥

परमात्मा आत्मगुणघातक कर्मों से वर्जित होने से निर्मल है और अपना आत्मा उन कर्मों में लिप्त होने से परमात्मा का आलम्बन होने से मैं भी आत्मा हूं और आत्मा है सो ही मैं हूं- ऐसे परमात्मा के आलम्बन से परमात्मा के सदृश अपना आत्मा निर्मल होगा । ऐसी भावना वार २ करने से आत्मा में कर्मजनित पुद्गल सङ्कल्प धीमे२ दूर हो जाने से दृढसंस्कार आत्मा में आत्मस्वरूप के हो जाने से वह ही आत्मा अपनी आत्मा की आत्मस्थिति पाता है और आत्मस्थिति मिलने से अपूर्व शान्ति का अनुभव भी होना शुरू होगा ।

मूढात्मा यत्र विश्वस्तस्ततो नान्यद्भयास्पदम् ।
यतो भीतस्ततो नान्यदभयस्थानमात्मनः ॥ २९ ॥

आत्मज्ञान प्राप्त करना आरम्भ मे कठिन है जिस से मूढ पुरुष बिचारा इन्द्रियों के आनन्द मे विश्वास करता है और आत्मज्ञान का विचार भी नही करता । उसको यह हितशिक्षा है कि भो बन्धो ! जहां तुम विश्वास रख कर बैठे हो वह स्थान तुम्हारे लिये भयकारी है और जहां तुम को अभी भय दीखता है वह आत्मज्ञान तुम्हारा निर्भय स्थान है । अत आप लोग इन्द्रियों के सुख के लिये जो श्रम उठाते हो और कर्म उपाधि से प्राप्त हुए पुत्र धन मान इत्यादि से नाहक दुःख पाते हो उस को छोड़ कर आत्महित चिन्तन करो जिस से तुम्हारा भय सर्वथा दूर हो जावे ।

सर्वेन्द्रियाणि संयम्य स्तिमितेनान्तरात्मना ।
यत्क्षणं पश्यतो भाति तत्तत्त्वं परमात्मनः ॥ ३० ॥

आत्मध्यान करने वाले को इन्द्रियों का ज़ोर बहुत होने से विघ्न होता है इस लिये यह हितशिक्षा है कि पांच इन्द्रियों अर्थात् कान, आंख, नाक, जीभ और शरीर को प्रथम स्थिर करो । एक क्षण भी स्थिर होकर तुम आत्मा मे अनुभव करोगे तो तुरन्त आत्मा के निर्मल अंश का अनुभव होगा । वह ही परमात्मा का तत्त्व है अर्थात् आप स्वयं ही परमात्मा के निर्मल स्वरूप को पाने की योग्यता बतलाते हैं ॥ ३० ॥

यः परात्मा स एवाहं योऽहं स परमस्ततः ।
अहमेव मयोपास्यो नान्यः कश्चिदिति स्थितिः ॥ ३१ ॥

समुद्र की तरंग के बीच जब नाव हिलती है तब दृश्य ( दिखाव ) विविध होता है, जब स्थिर होती है तब उसका मूलस्वरूप दीखता है । इसी तरह से आत्मा इन्द्रियों से बहुत

होता है तब विरूप भासता है, जब इन्द्रियों को स्थिर का आत्मस्वरूप देखता है तब वह परमात्मा तुल्य अपने को भी देखेगा और मन से विचार भी होगा कि परमात्मा के आलम्बन से अपने आत्मस्वरूप को धीमे २ प्राप्त कर सकूंगा तो मेरे को फिर मेरी ही उपासना करनी रही है और मेरा जो आत्मा है सो ही परमात्मा है और कोई मेरा नहीं है। फिर मैं नाहक शरीरा मे मोह क्यों करता हूं ?

प्राच्याव्य विषयेभ्योऽहं मां मयैव मयि स्थितम्।
बोधात्मानं प्रपन्नोऽस्मि परमानन्दनिर्वृतम्॥ ३२॥

जो शरीरादि से मोह छोड़ता है वह धर्मात्मा अपने हृ में सोचता है कि मैं अपने आत्मा को आत्मा मे स्थिर करके प इन्द्रियों के परवशपने से छुड़ाऊं। मैं अब परम आनन्द से आ आत्मा को ज्ञानस्वरूप मे रहा हुआ देखता हूं। इस सुखस रूप को प्राप्त हो कर मैं फिर क्यों इन्द्रियों के मोहजाल फसूंगा ?

यह हितशिक्षा में बतलाया गया है कि आत्मध्यान में लीन होने वाले को इन्द्रियों का विषयाभिलाष छोड़ना चाहिये। जो इन्द्रियों को अपने वश में नहीं रक्खेगा उसको आत्मध्यान में आनन्द नहीं मिलेगा।

यो न वेत्ति परं देहादेवमात्मानमव्ययम्।
लभते न स निर्वाणं तप्त्वापि परमं तपः॥ ३३॥

कितनेक लोग तपश्चर्या बहुत करते हैं किन्तु वे जन आत्मा को शरीर से भिन्न नहीं जानते हैं जिस से वे बेचारे तपानुष्ठान करके भी इन्द्रियों में प्रत्यक्ष सुख देखने से मोहित होकर इन्द्रियों के ही सुख चाहते हैं—राज्य, पैसा, कुटुम्ब, सत्ता, मान, महत्त्व, बगीचे,

रमणी, लक्ष्मी आदि की ही वाञ्छा करते हैं किंवा स्वर्ग मे देव देवांगना के विलास को चाहते हैं किंवा इन्द्र होने की इच्छा करते हैं जिस से उस तपश्चर्या का फल उन की उन वासनाओं के अनुकूल ही मिलता है, किन्तु उस तपश्चर्या से जो मुक्तिपद मिलना चाहिये सो नहीं मिलता । इसी लिये भव्यात्माओं को सूचना की है कि आप लोग तपश्चर्या से मुक्ति की वाञ्छा रक्खो और इन्द्रियों के सांसारिकसुख की इच्छा मत करो ।

आत्मदेहान्तरज्ञानजनिताह्लादनिर्वृतः ।
तपसा दुष्कृतं घोरं भुञ्जानोऽपि न खिद्यते ॥ ३४ ॥

कोई बालबुद्धिजीव शङ्का करेगा कि अग्नि जला के तपश्चर्या करने का जैनशास्त्रो मे सर्वथा निषेध ( मना ) है जिस से जीवों को निरर्थक दुःख न होवे । सो उपवासादि लंघन करने से जीवों को जो दुःख होगा उन दुःखों के कारण आर्तध्यान होने से मुक्ति कैसे मिलेगी ? ऐसे बालजीवों को वीतराग प्रभु हितशिक्षा देते हैं कि आत्मा से शरीर भिन्न मानने वाले आत्मा मे जब स्थित होते हैं तब उन को आत्मा से स्वाभाविक आनन्द उत्पन्न होता है, उस समय में क्षुधा बाधा नहीं करती है किंवा मनोबल मज़बूत होने से वे क्षुधा आदि के दुःखो को सर्वथा भूल जाते हैं, क्योंकि वह भव्यात्मा जानता है कि मेरा आत्मा अमर है, शरीर भिन्न है । आहार से केवल शरीर ही पुष्ट होता है और यह शरीर पुष्ट न होगा तो भी मेरा आत्मा तो क़ायम ही है इस मे न तो बढ़ाव और न कुछ घटाव होता है ।

रागद्वेषादिकल्लोलैरलोलं यन्मनोजलम् ।
स पश्यत्यात्मनस्तत्त्वं स तत्त्वं नेतरो जनः ॥ ३५ ॥

कर्म तोड़ के मुक्ति में जाने वाले मुमुक्षुओं को तपश्चर्या मे खेद नही मानना चाहिये किंवा थोड़ा आहार मिले अथवा

रूखा सूखा मिले किंवा दो चार दिन आहार बिलकुल नहीं मिले तो भी मनकल्पनाओं को रागद्वेष से व्याप्त करके अस्थिर न करना, किन्तु आत्मध्यान से चित्त स्थिर करके देहादि का मोह छोड़ना चाहिये। जो सज्जन इस तरह से आत्मध्यान में आनन्दित होकर चित्त स्थिर करेगा वह पुरुष ही आत्मतत्त्व को अच्छी तरह से प्राप्त होगा। किन्तु जो मन डगा करके तपश्चर्या का भङ्ग करेगा किंवा आहारादि कम मिलने से दूसरे के ऊपर क्रोधित होवेगा किंवा मनमें अनिष्ट चिंतवन करेगा वह निर्भागी मुक्ति न पा सकेगा किंवा आत्मानन्द भी न मिला सकेगा किंवा आत्मतत्त्व की पहिचान भी उसको दुर्लभ होगी।

अविक्षिप्तं मनस्तत्त्वं विक्षिप्तं भ्रान्तिरात्मनः।
धारयेत्तदविक्षिप्तं विक्षिप्तं नाश्रयेत्ततः॥ ३६॥

ज्ञानी प्रभु बालजीव को हितशिक्षा देते हैं कि भो भद्रक! जो मन में रागद्वेष न होंगे तो जान लेना कि मैं आत्मतत्त्व में स्थित हूं और जो मन में रागद्वेष होने लगे तो जान लेना कि मैं आत्मतत्त्व से अतिरिक्त (भिन्न) शरीरादि में फंसता हूं और आत्मतत्त्व में मेरी भ्रान्ति हुई है जिस से रागद्वेष को छोड़ कर विक्षेप न लाना कि मेरा नाश हो गया या मेरा अपमान करते हैं, मेरा वह विगाड़ करने वाला है, मेरा यह मित्र है, मेरा वह शत्रु है, मेरा इसने द्रव्य छीन लियाहै। इस सब विचारों को छोड़ कर सिर्फ कर्म का दोष निकाल के अपने आत्मा में स्थित होकर मन के विकल्पों को छोड़ना चाहिये।

अविद्याभ्याससंस्कारैरवशं क्षिप्यते मनः।
तदेव ज्ञानसंस्कारैः स्वतस्तत्त्वेऽवतिष्ठते॥ ३७॥

बालबुद्धियों को पुनः पुनः (वारंवार) अज्ञानता के पूर्व के संस्कार होने से उनका मन परवश हो कर उनके मन में विकल्प होते हैं और रागद्वेष, अहङ्कार, दीनता, मान,अपमान, मेरा तेरा

न मन भाव उत्पन्न होने से आत्मा को नये कर्म का बन्ध होने से बारम्बार जन्ममरण के दुःख भोगने पड़ते हैं और जहां तक आत्मतत्त्व का बोध नहीं होगा वहां तक यह ही जन्ममरण का दुःख क़ायम रहेगा, इसलिये हितशिक्षा दी है कि भो भव्या-त्मन् ! तुम आत्मतत्त्व का ज्ञान हासिल करो और वह ज्ञान स्फार जब हृदय में प्रकाश करेगा कि तुरन्त मन के संकल्प सब दूर हो जावेंगे, नया कर्मबन्ध नहीं होगा और आत्मतत्त्व में स्थित होने से दुःखसुख आने पर भी विकल्प न होगा कि मैं सुखी हूं मैं दुःखी हूं, किन्तु यही विचार होगा कि मैं आत्मा सदानन्दस्वरूप अनन्त सुख का स्वामी हूं।

अपमानादयस्तस्य विक्षेपो यस्य चेतसः।
नापमानादयस्तस्य न क्षेपो यस्य चेतसः ॥ ३८ ॥

जिस भोले जीव को मन में विक्षेप होता है, विकल्पों में मस्त रहता है वह बेचारा अपमान मान कर दुःख पाता है, सुख और उदासी लाता है, दूसरे का बिगाड़ करने की तय्यारी करता है और आप ही अपने दिल में वैर रख कर निरन्तर जलता है, उस को सुख की नींद भी नहीं आती और मिले हुए मनुष्यजन्म को और गुरु के सद्बोध को और पूर्व के ज्ञान को भी विसार कर फिर २ यह विचार मन में लाता है कि मैं कब इस का बदला लेऊं। वारंवार वैसे दुष्ट विचारों से पीड़ित होकर अकृत्य करने से भी डरता नहीं है। और जो पुरुष मन में विक्षेप लाता नहीं, किन्तु मैंने पूर्व में कोई पाप किया होगा इस का मैं फल भोगता हूं, इसमें अपमान करने वाले का क्या दोष है वैसा विचार लाकर अपमान को कुछ गिनता नहीं, क्रोध लाता नहीं, किसी का बिगाड़ करता नहीं इस से उस के आत्मा में अपूर्व शान्ति रहती है।

यदा मोहात्प्रजायेते रागद्वेषौ तपस्विनः।

रूखा सूखा मिले किंवा दो चार दिन आहार बिलकुल नहीं मिले तौ भी मनकल्पनाओं को रागद्वेष से व्याप्त करके अस्थिर न करना, किन्तु आत्मध्यान से चित्त स्थिर करके देहादि का मोह छोड़ना चाहिये। जो सज्जन इस तरह से आत्मध्यान में आनन्दित होकर चित्त स्थिर करेगा वह पुरुष ही आत्मतत्त्व को अच्छी तरह से प्राप्त होगा। किन्तु जो मन डगा करके तपश्चर्या का भङ्ग करेगा किंवा आहारादि कम मिलने से दूसरे के ऊपर क्रोधित होवेगा किंवा मनमें अनिष्ट चिन्तवन करेगा वह निर्भागी मुक्ति न पा सकेगा किंवा आत्मानन्द भी न मिला सकेगा किंवा आत्मतत्त्व की पहिचान भी उसको दुर्लभ होगी।

अविक्षिप्तं मनस्तत्त्वं विक्षिप्तं भ्रान्तिरात्मनः।
धारयेत्तदविक्षिप्तं विक्षिप्तं नाश्रयेत्ततः॥ ३६॥

ज्ञानी प्रभु बालजीव को हितशिक्षा देते हैं कि भो भद्रक जो मन में रागद्वेष न होवे तो जान लेना कि मैं आत्मतत्त्व में स्थित हूं और जो मन में रागद्वेष होने लगे तो जान लेना कि मैं आत्मतत्त्व से अतिरिक्त ( भिन्न ) शरीरादि में फंसता हूं और आत्मतत्त्व में मेरी भ्रान्ति हुई है जिस से रागद्वेष को छोड़ कर विक्षेप न लाना कि मेरा नाश हो गया या मेरा अपमान करते हैं, मेरा वह बिगाड़ करने वाला है, मेरा यह मित्र है, मेरा वह शत्रु है, मेरा इसने द्रव्य छीन लियाहै। इस सब विचारों को छोड़ कर सिर्फ कर्म का दोष निकाल के अपने आत्मा में स्थित होकर मन के विकल्पों को छोड़ना चाहिये।

अविद्याभ्याससंस्कारैरवशं क्षिप्यते मनः।
तदेव ज्ञानसंस्कारैः स्वतस्तत्त्वेऽवतिष्ठते॥ ३७॥

बालबुद्धियों को पुनः पुनः ( वारंवार ) अज्ञानता के पूर्व संस्कार होने से उनका मन परवश हो कर उनके मन में विकल्प होते हैं और रागद्वेष, अहङ्कार, दीनता, मान अपमान, मेरा तेरा

न अन्य भाव उत्पन्न होने से आत्मा को नये कर्म का बन्ध हो
ने से वारवार जन्ममरण के दुःख भोगने पड़ते हैं और जहां
क आत्मतत्त्व का बोध नहीं होगा वहां तक वह ही जन्ममरण
ा दुःख क़ायम रहेगा, इसलिये हितशिक्षा दी है कि भो भव्या-
न् ! तुम आत्मतत्त्व का ज्ञान हासिल करो और वह ज्ञान
स्कार जब हृदय में प्रकाश करेगा कि तुरन्त मन के संकल्प सब
र हो जावेंगे, नया कर्मबन्ध नहीं होगा और आत्मतत्त्व में
स्थित होने से दुःखसुख आने पर भी विकल्प न होगा कि मैं
सुखी हूं-मैं दुःखी हूं, किन्तु यही विचार होगा कि मैं आत्मा
सदानन्दस्वरूप अनन्त सुख का स्वामी हूं।

अपमानादयस्तस्य विक्षेपो यस्य चेतसः ।
नापमानादयस्तस्य न क्षेपो यस्य चेतसः ॥ ३८ ॥

जिस भोले जीव को मन में विक्षेप होता है, विकल्पों से
स्त रहता है वह बेचारा अपमान मान कर दुःख पाता है, सुख
र उदासी लाता है, दूसरे का बिगाड़ करने की तय्यारी करता
है और आप ही अपने दिल में वैर रञ्ज का विस्तार करता है,
उस को सुख की नींद भी नहीं आती और जिसने गुरु [illegible]
हो और गुरु के सद्बोध को और पूर्व के ज्ञान का भी विचार कर
बार २ यह विचार मन में लाता है कि मैं [illegible] का बदला
लेऊं। बारंबार ऐसे दुष्ट विचारों से पीड़ित [illegible]
भी डरता नहीं है। और जो पुरुष मन में विक्षेप नहीं करते
किन्तु मैंने पूर्व में कोई पाप किया होगा [illegible]
हूं, इसमें अपमान [illegible] का क्या दोष है [illegible]
अपमान का कुछ गिनता नहीं, क्रोध लाता नहीं किसी का
बिगाड़ करता नहीं [illegible] आत्मा में [illegible]
करती है।

यदा मोहात्प्रजायेते रागद्वेषौ तपस्विनः ।

तदैव भावयेत्स्वस्थमात्मानं शाम्यतः क्षणात् ॥३९॥

बालजीव बेचारे क्रोधादिक करके नाहक जलते हैं। [illegible]
संसारजञ्जाल से विरक्त तपस्वियों को भी कभी २ रागद्वेष [illegible]
जाता है। इन को वीतराग प्रभु हितशिक्षा देते हैं कि-मोक्ष
मार्ग के पन्थिनः ( मुमुक्षुओ )! आप लोगों को कभी मोह
जावे और आप के दिल में कभी रागद्वेष हो जावे तो, [illegible]
लोग हृदय में शान्ति रख के आत्मा को स्थिर करके आत्म
रूप का विचार करलो, जिस से क्षणभर में आप लोगों
रागद्वेष दूर हो जावेगा शत्रु मित्र भाव, अहङ्कार, दीनता,
दुखी भाव, मेरा तेरा यह सब ही आत्मा से भ्रष्ट करने वाले
भाव दूर हो जावेंगे और अपूर्वशांति फिर से उत्पन्न हो जावेगी

यत्र काये मुनेः प्रेम ततः प्राच्याव्य देहिनम् ॥
बुद्धया तदुत्तमे काये योजयेत्प्रेम नश्यति ॥ ४० ॥

गुरु महाराज मुनिराजों को हितशिक्षा देते हैं कि [illegible]
लोगों का प्रेम अपनी काया पर किंवा शिष्य उपासक की क[illegible]
पर होवे उसके पुष्टपने से किंवा शुष्कपने से तुम्हारे दिल
हर्ष शोक होवे तो तुम लोग अपने विचारों को पलट कर, का[illegible]
से आत्मा भिन्न है ऐसा तत्व जानकर, काया का मोह छोड़
मैं आत्मा हूं और काया के सम्बन्धी कर्म सम्बन्धित (जोड़े) हु[illegible]
मुझ को इस फन्द में क्यों फंसना चाहिये, सब अपने कर्मों
आधीन हैं, आयुष्य पूरा होने पर नये कर्म भोगने को [illegible]
उपासक भी चले जांयगे। मैं तो केवल हितशिक्षा देनेवा[illegible]
हूं, मुझे तो अपनी काया की भी चिन्ता न करनी चाहिये [illegible]
न शिष्य उपासक की काया की ही चिन्ता करनी चाहि[illegible]
इस प्रकार की भावना से मोह नष्ट हो जावेगा।

आत्मविभ्रमजं दुःखमात्मज्ञानात्प्रशाम्यति ।
नायतास्तत्र निर्वान्ति कृत्वाऽपि परमं तपः ॥ ४१ ॥

आत्मज्ञान से जिस समय कोई विमुख होता है उस समय उसको दुःख की शुरुआत होती है, किन्तु वह पुण्यात्मा जो फिर आत्मज्ञान मे दृढ हो जावे तो दुःख भी दूर हो जावेगा। किन्तु जो प्रमाद से किंवा अज्ञान से लिप्त रहवे और आत्मतत्त्व को न जाने, न ध्यान मे लावे तो उत्कृष्ट तपश्चर्य्या करने वाला भी मोक्षमार्ग नहीं पा सकता, क्योंकि जहां तक आत्मा आत्मज्ञान से अतिरिक्त ( दूर ) है वहां तक रागद्वेष नहीं छोडता, अहङ्कार ममता कायम रहती है। दुःखी सुखी भावना दृढ होती है और माया तथा काया के सम्बन्धी कर्मजनित जो पदार्थ हैं उनके लिये प्रयास करने मे अपना आत्महित याद नहीं आता है। खंधक मुनि के ५०० शिष्य मुक्ति को प्राप्त हुए किन्तु आचार्य को मुक्ति नहीं मिली ॥

शुभं शरीरं दिव्यांश्च विषयानभिवाञ्छति ।
उत्पन्नात्ममतिर्देहे तत्त्वज्ञानी ततश्च्युतिम् ॥ ४२ ॥

कोई २ जन तपश्चर्य्या करके दूसरे की काया मनोहर देखकर किंवा शास्त्र मे से देवों के दिव्यभोग श्रवण करके वैसे भोगों की वाञ्छा करता है और ध्यान मे वह शरीर मे ही रहते हैं और शरीर मे ही आत्मबुद्धि रह जाने से मरके फिर वैसे भोग पाकर सुख मे लिप्त ( गरकाव ) होजाता है, किन्तु आत्मा को भी सर्वथा भूल जाता है। फिर वह पुण्य जो तपश्चर्य्या मे प्राप्त किया था उसके पूर्ण हो जाने पर अशुभकर्म के फल भोगने के लिये अभिलषित पदार्थों को भी भोगता है और रातदिन दुःख से रोता रहता है। ऐसी स्थिति प्रायः सर्वत्र देखने मे आती है, किन्तु तत्त्वज्ञानी शुभ शरीर और दिव्यभोगों को भी जडपुद्गल जान कर अपने चेतन आत्मा से भिन्न मानकर स्वप्न मे भी वाञ्छा नहीं करता है।

परत्राहंमतिः स्वस्माच्च्युतो बध्नात्यसंशयम् ।
स्वस्मिन्नहंमतिश्च्युत्वा परस्मान्मुच्यते बुधः ॥ ४३ ॥

तदैव भावयेत्स्वस्थमात्मानं शाम्यतः क्षणात् ॥३९॥

बालजीव बेचारे क्रोधादिक करके नाहक जलते हैं। संसारजञ्जाल से विरक्त तपस्वियों को भी कभी २ रागद्वेष जाता है। इन को वीतराग प्रभु हितशिक्षा देते हैं कि-मोक्ष मार्ग के पन्थिनः ( मुमुक्षुओ )! आप लोगों को कभी मोह जावे और आप के दिल में कभी रागद्वेष हो जावे तो, लोग हृदय में शान्ति रख के आत्मा को स्थिर करके आत्म रूप का विचार करलो, जिस से क्षणभर में आप लोगों रागद्वेष दूर हो जावेगा शत्रु मित्र भाव, अहङ्कार, दीनता, दुखी भाव, मेरा तेरा यह सब ही आत्मा से भ्रष्ट करने वाले भाव दूर हो जावेंगे और अपूर्वशांति फिर से उत्पन्न हो जावे

यत्र काये मुनेः प्रेम ततः प्राच्याव्य देहिनम् ॥
बुद्धया तदुत्तमे काये योजयेत्प्रेम नश्यति ॥ ४० ॥

गुरु महाराज मुनिराजों को हितशिक्षा देते हैं कि लोगों का प्रेम अपनी काया पर किंवा शिष्य उपासक की पर होवे उसके पुष्टपने से किवा शुष्कपने से तुम्हारे दि हर्ष शोक होवे तो तुम लोग अपने विचारों को पलट कर, से आत्मा भिन्न है ऐसा तत्व जानकर, काया का मोह छोड़ मैं आत्मा हूं और काया के सम्बन्धी कर्म सम्बन्धित (जोड़े) मुझ को इस फन्द में क्यों फंसना चाहिये, सब अपने कर्म आधीन हैं, आयुष्य पूरा होने पर नये कर्म भोगने को उपासक भी चले जांयगे। मैं तो केवल हितशिक्षा देने हूं, मुझे तो अपनी काया की भी चिन्ता न करनी चाहिये न शिष्य उपासक की काया की ही चिन्ता करनी चा इस प्रकार की भावना से मोह नष्ट हो जावेगा।

आत्मविभ्रमजं दुःखमात्मज्ञानात्प्रशाम्यति।
नायतास्तत्र निर्वान्ति कृत्वाऽपि परमं तपः ॥ ४१

आत्मज्ञान से जिस समय कोई विमुख होता है उस समय उको दुःख की शुरुआत होती है, किन्तु वह पुण्यात्मा जो फिर आत्मज्ञान मे दृढ हो जावे तो दुःख भी दूर हो जावेगा। किन्तु ो प्रमाद से किंवा अज्ञान से लिप्त रहवे और आत्मतत्त्व को जाने, न ध्यान में लावे तो उत्कृष्ट तपश्चर्या करने वाला भी ोक्षमार्ग नहीं पा सकता, क्योंकि जहां तक आत्मा आत्मज्ञान अतिरिक्त ( दूर ) है वहां तक रागद्वेष नहीं छोडता, अहङ्कार ोनता क़ायम रहती है। दुःखी सुखी भावना दृढ होती है और ाया तथा काया के सम्बन्धी कर्मजनित जो पदार्थ हैं उनके लये प्रयास करने से अपना आत्महित याद नहीं आता है। खंधक ुनि के ५०० शिष्य मुक्ति को प्राप्त हुए किन्तु आचार्य को मुक्ति ाहीं मिली॥

शुभं शरीरं दिव्यांश्च विषयानभिवाञ्छति।
उत्पन्नात्ममतिर्देहे तत्त्वज्ञानी ततश्च्युतिम्॥ ४२॥

कोई २ जन तपश्चर्या करके दूसरे की काया मनोहर देखकर किंवा शास्त्र मे से देवों के दिव्यभोग श्रवण करके वैसे भोगों की वाञ्छा करता है और ध्यान मे वह शरीर मे ही रहते हैं और शरीर में ही आत्मबुद्धि रह जाने से मरके फिर वैसे भोग पाकर सुख में लिप्त ( ग़र्क़ाब ) होजाता है, किन्तु आत्मा को भी सर्वथा भूल जाता है। फिर वह पुण्य जो तपश्चर्या मे प्राप्त किया था उसके पूर्ण हो जाने पर अशुभकर्म के फल भोगने के लिये अभिलषित पदार्थों को भी भोगता है और रातदिन दुःख से रोता रहता है। ऐसी स्थिति प्रायः सर्वत्र देखने में आती है, किन्तु तत्त्वज्ञानी शुभ शरीर और दिव्यभोगों को भी जडपुद्गल जान कर अपने चेतन आत्मा से भिन्न मानकर स्वप्न में भी वाञ्छा नहीं करता है।

परत्राहंमतिः स्वस्माच्च्युतो बध्नात्यसंशयम्।
स्वस्मिन्नहंमतिश्च्युत्वा परस्मान्मुच्यते बुधः॥ ४३॥

तदैव भावयेत्स्वस्थमात्मानं शाम्यतः क्षणात् ॥३९॥

बालजीव बेचारे क्रोधादिक करके नाहक जलते हैं, संसारजञ्जाल से विरक्त तपस्वियों को भी कभी २ रागद्वे जाता है। इन को वीतराग प्रभु हितशिक्षा देते हैं कि-मोक्ष मार्ग के पन्थिनः ( मुमुक्षुओ ) ! आप लोगों को कभी मोह जावे और आप के दिल में कभी रागद्वेष हो जावे तो, लोग हृदय में शान्ति रख के आत्मा को स्थिर करके आत्म रूप का विचार करलो, जिस से क्षणभर में आप लोगों रागद्वेष दूर हो जावेगा शत्रु मित्र भाव, अहङ्कार, दीनता, दुखी भाव, मेरा तेरा यह सब ही आत्मा से भ्रष्ट करने वाले भाव दूर हो जावेंगे और अपूर्वशांति फिर से उत्पन्न हो जावे

यत्र काये मुनेः प्रेम ततः प्राच्याव्य देहिनम् ॥
बुद्ध्या तदुत्तमे काये योजयेत्प्रेम नश्यति ॥ ४० ॥

गुरु महाराज मुनिराजों को हितशिक्षा देते हैं कि लोगों का प्रेम अपनी काया पर किंवा शिष्य उपासक की का पर होवे उसके पुष्टपने से किंवा शुष्कपने से तुम्हारे दिल हर्ष शोक होवे तो तुम लोग अपने विचारों को पलट कर, से आत्मा भिन्न है ऐसा तत्व जानकर, काया का मोह छोड मैं आत्मा हूं और काया के सम्बन्धी कर्म सम्बन्धित (जोड़) हुए मुझ को इस फन्द में क्यों फंसना चाहिये, सब अपने कर्मों आधीन हैं, आयुष्य पूरा होने पर नये कर्म भोगने को शि उपासक भी चले जायंगे। मैं तो केवल हितशिक्षा देनेवा हूं, मुझे तो अपनी काया की भी चिन्ता न करनी चाहिये न शिष्य उपासक की काया की ही चिन्ता करनी चाहिये इस प्रकार की भावना से मोह नष्ट हो जावेगा।

आत्मविभ्रमजं दुःखमात्मज्ञानात्प्रशाम्यति।
नायतास्तत्र निर्वान्ति कृत्वाऽपि परमं तपः ॥ ४१ ॥

आत्मज्ञान से जिस समय कोई विमुख होता है उस समय
ो दुःख की शुरुआत होती है, किन्तु वह पुण्यात्मा जो फिर
ात्मज्ञान मे दृढ हो जावे तो दुःख भी दूर हो जावेगा। किन्तु
ामाद से किंवा अज्ञान से लिप्त रहवे और आत्मतत्त्व को
ाने, न ध्यान मे लावे तो उत्कृष्ट तपश्चर्या करने वाला भी
मार्ग नहीं पा सकता, क्योंकि जहां तक आत्मा आत्मज्ञान
तिरिक्त ( दूर ) है वहां तक रागद्वेष नहीं छोड़ता, अहङ्कार
ता क़ायम रहती है। दुःखी सुखी भावना दृढ होती है और
। तथा काया के सम्बन्धी कर्मजनित जो पदार्थ हैं उनके
प्रयास करने मे अपना आत्महित याद नहीं आता है। खंधक
के ५०० शिष्य मुक्ति को प्राप्त हुए किन्तु आचार्य को मुक्ति
मिली ॥

शुभं शरीरं दिव्यांश्च विषयानभिवाञ्छति ।
उत्पन्नात्ममतिर्देहे तत्त्वज्ञानी ततश्च्युतिम् ॥ ४२ ॥

कोई २ जन तपश्चर्या करके दूसरे की काया मनोहर देखकर
ा शास्त्र मे से देवों के दिव्यभोग श्रवण करके वैसे भोगों की
छा करता है और ध्यान मे वह शरीर मे ही रहते हैं और
र में ही आत्मबुद्धि रह जाने से मरके फिर वैसे भोग पाकर
मे लिप्त ( गृ कृ ब ) होजाता है, किन्तु आत्मा को भी
या भूल जाता है। फिर वह पुण्य जो तपश्चर्या मे प्राप्त
ा था उसके पूर्ण हो जाने पर अशुभकर्म के फल भोगने के
े अभिलषित पदार्थों को भी भोगता है और रातदिन दुःख से
ा रहता है। ऐसी स्थिति प्रायः सर्वत्र देखने मे आती है,
न्तु तत्त्वज्ञानी शुभ शरीर और दिव्यभोगों को भी जडपुद्गल
न कर अपने चेतन आत्मा से भिन्न मानकर स्वप्न में भी
च्छा नहीं करता है।

परत्राहंमतिः स्वस्माच्च्युतो बध्नात्यसंशयम् ।
स्वस्मिन्नहंमतिश्च्युत्वा परस्मान्मुच्यते बुधः ॥ ४३ ॥

तदैव भावयेत्स्वस्थमात्मानं शाम्यतः क्षणात् ॥३९॥

बालजीव बेचारे क्रोधादिक करके नाहक़ जलते हैं, उसके संसारजञ्जाल से विरक्त तपस्वियों को भी कभी २ रागद्वेष से ग्र जाता है। इन को वीतराग प्रभु हितशिक्षा देते हैं कि-मोक्ष, जो न मार्ग के पन्थिनः ( मुमुक्षुओ )! आप लोगों को कभी मोह मो जावे और आप के दिल में कभी रागद्वेष हो जावे तो, मे लोग हृदय में शान्ति रख के आत्मा को स्थिर करके आत्म दी रूप का विचार करलो, जिस से क्षणभर में आप लोगों क रागद्वेष दूर हो जावेगा शत्रु मित्र भाव, अहङ्कार, दीनता, दुखी भाव, मेरा तेरा यह सब ही आत्मा से भ्रष्ट करने वाले भाव दूर हो जावेंगे और अपूर्वशांति फिर से उत्पन्न हो जा

यत्र काये मुनेः प्रेम ततः प्रच्याव्य देहिनम् ॥
बुद्धया तदुत्तमे काये योजयेत्प्रेम नश्यति ॥ ४० ॥

गुरु महाराज मुनिराजों को हितशिक्षा देते हैं कि लोगों का प्रेम अपनी काया पर किंवा शिष्य उपासक की का पर होवे उसके पुष्टपने से किंवा शुष्कपने से तुम्हारे दिल हर्ष शोक होवे तो तुम लोग अपने विचारों को पलट कर, से आत्मा भिन्न है ऐसा तत्व जानकर, काया का मोह छोड मैं आत्मा हूं और काया के सम्बन्धी कर्म सम्बन्धित (जोड़े) हुए मुझ को इस फन्द में क्यों फंसना चाहिये, सब अपने कर्मों आधीन हैं, आयुष्य पूरा होने पर नये कर्म भोगने को उपासक भी चले जांयगे। मैं तो केवल हितशिक्षा देने हूं, मुझे तो अपनी काया की भी चिन्ता न करनी चाहिये न शिष्य उपासक की काया की ही चिन्ता करनी चाहि इस प्रकार की भावना से मोह नष्ट हो जावेगा।

आत्मविभ्रमजं दुःखमात्मज्ञानात्प्रशाम्यति।
नायतास्तत्र निर्वान्ति कृत्वाऽपि परमं तपः ॥ ४१ ॥

आत्मज्ञान से जिस समय कोई विमुख होता है उस समय उसको दुःख की शुरुआत होती है, किन्तु वह पुण्यात्मा जो फिर आत्मज्ञान मे दृढ हो जावे तो दुःख भी दूर हो जावेगा। किन्तु जो प्रमाद से किंवा अज्ञान से लिप्त रहवे और आत्मतत्त्व को न जाने, न ध्यान मे लावे तो उत्कृष्ट तपश्चर्या करने वाला भी मोक्षमार्ग नहीं पा सकता, क्योंकि जहां तक आत्मा आत्मज्ञान से अतिरिक्त (दूर) है वहां तक रागद्वेष नहीं छोडता, अहङ्कार दीनता क़ायम रहती है। दुःखी सुखी भावना दृढ होती है और काया तथा काया के सम्बन्धी कर्मजनित जो पदार्थ हैं उनके लिये प्रयास करने मे अपना आत्महित याद नहीं आता है। खंधक मुनि के ५०० शिष्य मुक्ति को प्राप्त हुए किन्तु आचार्य को मुक्ति नहीं मिली ॥

शुभ शरीरं दिव्यांश्च विषयानभिवाञ्छति।
उत्पन्नात्ममतिर्देहे तत्त्वज्ञानी ततश्च्युतिम्॥ ४२॥

कोई २ जन तपश्चर्या करके दूसरे की काया मनोहर देखकर किंवा शास्त्र मे से देवो के दिव्यभोग श्रवण करके वैसे भोगों की वाञ्छा करता है और ध्यान मे वह शरीर मे ही रहते हैं और शरीर में ही आत्मबुद्धि रह जाने से मरके फिर वैसे भोग पाकर सुख मे लिप्त (ग़र्क़ाब) होजाता है, किन्तु आत्मा को भी सर्वथा भूल जाता है। फिर वह पुण्य जो तपश्चर्या मे प्राप्त किया था उसके पूर्ण हो जाने पर अशुभकर्म के फल भोगने के लिये अभिलषित पदार्थो को भी भोगता है और रातदिन दुःख से रोता रहता है। ऐसी स्थिति प्रायः सर्वत्र देखने मे आती है, किन्तु तत्त्वज्ञानी शुभ शरीर और दिव्यभोगो को भी जडपुद्गल जान कर अपने चेतन आत्मा से भिन्न मानकर स्वप्न मे भी वाञ्छा नहीं करता है।

परत्राहंमतिः स्वस्माच्च्युतो बध्नात्यसंशयम्।
स्वस्मिन्नहंमतिश्च्युत्वा परस्मान्मुच्यते बुधः॥ ४३॥

जो मूढात्मा हैं उन को ज्ञानी भगवान् निर्ममता के कि जो मूर्ख अपनी आत्मा को छोड़ कर और जगह पर मैं हूं मेरा है ऐसी मति करनेवाला है निश्चय वह राग करके कर्म बांध कर वहीं उत्पन्न होजाते और जन्म जरा मृत्यु के दुःखों को निरन्तर भोगता है; और जो ज्ञानी पुरुष है वह धर्मात्मा आत्मा के सिवाय और कहीं भी अपनेपन को या अहंभाव को धारण नहीं करता वह जन्मादिक के दुःख को भोगता नहीं है और जो दुःख भोगने शेष रहे हैं उन को भी शान्ति से भोगकर आत्मभाव में ही स्थित होकर मैं आत्मा हूं, मैं जड़ नहीं हूं; मेरा कोई नहीं है, मैं किसी का नहीं हूं, मेरा ज्ञान अनन्त है, मेरे मोह करना उचित नहीं है, यह सुन्दरता फंसाने वाली है, मैं न फंसूंगा-ऐसे शुद्धभावों से वह मुक्ति अवश्य पावेगा।

दृश्यमानमिदं मूढस्त्रिलिङ्गमवबुध्यते ।
इदमित्यवबुद्धस्तु निष्पन्नं शब्दवर्जितम् ॥ ४४ ॥

बेचारा कम-अक्ल आदमी आत्मज्ञान से विमुख होजाने वह अपने शरीर को आत्मा जानकर आत्मा को लिङ्ग लगाता कि मैं पुरुष हूं मैं स्त्री हूं, मैं नपुंसक हूं—ऐसा मान कर आत्मा लिंग से विमुक्त है तो भी स्वयं लिंगवाला हो जाता है और कर्मबन्धन में पड़ कर जन्ममरण भोगता है, किन्तु आत्मज्ञानी आत्मा को चिदानन्दस्वरूप मानकर मैं न तो पुरुष हूं, न स्त्री और न नपुंसक ही हूं, किन्तु यह स्त्री भोगने की पुरुष को और पुरुष का संग करने की स्त्री को जो इच्छा होती है सो पुरुष और स्त्रीवेद कहा है सो कर्मजनित है। मेरे को यह इच्छा नहीं होनी चाहिये। इच्छा करने से रागद्वेष होता है और राग द्वेष से फिर स्त्री के उदर में जन्म लेना पड़ेगा, इस लिये मेरा आत्मा लिंगवर्जित है सोही भावना में चित्त स्थिर करना योग्य है

जानन्नप्यात्मनस्तत्त्वं विविक्तं भावयन्नपि ।
पूर्वविभ्रमसंस्काराद्भ्रान्तिं भूयोऽपि गच्छति ॥ ४५ ॥

ज्ञानी प्रभु ज्ञान से सर्वजीवों की चेष्टा देखकर आत्मज्ञानियों को समझाते हैं कि आप लोग आत्मज्ञान जानते हो और शरीर से आत्मा को भिन्न जानकर भावना भी भाते हो तो भी ध्यान में रक्खो कि पूर्व के विभ्रम के संस्कारो के हृदय में जमे हुए होने से फिर से भी आत्मा मे भ्रान्ति हो जावेगी कि मैं पुरुष हूं मैं गोरा हूं, मैं काला हूं मैं पुष्ट हूं, मैं पतला हूं, मैं रोगी हूं, मैं दुःखी हूं—ऐसे संस्कार होने से आत्मभ्रान्ति होगी और आत्मभ्रान्ति होने से अहङ्कार दीनता होगी और अपूर्वशान्ति नष्ट हो जाने से फिर कर्मबन्धन होगा और जन्ममरण का दुःख शिर पर क़ायम ही रहेगा । इस लिये मुझ को फिर भ्रान्ति न होगी ऐसा विचार भरोसे से न बैठना, किन्तु भ्रान्ति होवे तो तुरन्त दूर करना ।

अचेतनमिदं दृश्यमदृश्यं चेतनं ततः ।
क्व रुष्यामि क्व तुष्यामि मध्यस्थोऽहं भवाम्यतः ॥ ४६ ॥

जब आत्मभ्रान्ति होवे तब उस भव्यात्मा को हृदय में सोचना चाहिये कि मैं जो बाह्यशरीर देखता हूं वह शरीर अचेतन जड पुद्गल का समूह है और मैं किंवा मेरा आत्मा चेतन है सिर्फ़ कर्मसम्बन्ध से दोनो का सम्बन्ध है और शरीर से भिन्न ही हूं और मुझ को ज्ञान से मालूम होता है और अनुभव से जानता भी हूं कि मैं चिदानन्दस्वरूप हूं । तब मैं कहां सुख मानूं किंवा कहां दुःख मानूं और मैं भी देखता हूं कि रोष तोष करनेवाले राजा, महाराजा, वैद्य, हकीम, सेठ आदि सभी अपने २ माननीय पुष्ट गौरशरीर को छोड के हाथ मलते अपने कृत्यों के अनुसार फल भोगने को चले गये तब मेरा फ़र्ज़ है कि मुझे शरीर किंवा शरीर के कर्मद्वारा मिले हुए सम्बन्धी पुत्रपौत्रादि पर रागद्वेष छोड़ कर मध्यस्थ होना चाहिये ।

त्यागदाने बहिर्मूढः करोत्यध्यात्ममात्मवित्।
नान्तर्बहिरुपादानं न त्यागो निष्ठितात्मनः ॥ ४७ ॥

जो मूढ तत्त्वज्ञान से विमुख है वह बेचारा अपनी इच्छा के अनुसार पदार्थों का संग्रह करेगा किंवा त्याग करेगा. किन्तु राग-द्वेषपूर्वक करने से नये कर्म का बन्ध अवश्य ही करेगा; और जो आत्मज्ञानी है वह महा पुरुष न तो संग्रह ही करेगा और न कभी त्याग करेगा और कभी ज़रूरत पड़ी तो रागद्वेष करे विना अपने आत्महित का चिन्तन करके संग्रह त्याग करेगा, किन्तु जैसे तैल का दाग़ उतारने के लिये साबुन और जल का उपयोग वस्त्र पर करना पड़ेगा तो भी तैल किंवा साबुन, पानी के साथ सम्बन्ध नहीं है केवल ज़रूरत सफ़ेद वस्त्र की है। इस तरह से आत्मा के ऊपर कर्मों का आवरणरूप मैल लगा है उस के दूर करने के लिये देवगुरु, धर्मदान पूजा सामायिक की ज़रूरत है और पापव्यापार का छोड़नाभी है तौभी आवश्यक तो शुद्धातमा के स्वरूप मिलने की है

युञ्जीत मनसाऽऽत्मानं वाक्कायाभ्यां वियोजयेत्।
मनसा व्यवहारं तु त्यजेद्वाक्काययोजितम् ॥ ४८ ॥

पहिल आत्मा स्थिर करने के अभिप्राय से आत्मा को मन के साथ जोड़ कर वाचा और काया की चेष्टा दूर करनी चाहिये और वाचा काया शान्त होने पीछे मन से रक्खा हुआ व्यवहार भी वाक् काया से छोड़ देना चाहिये। इस श्लोक मे आचार्य महाराज ने प्रवृति में पड़े हुए को सूचना की है कि आप लोग पहले आत्मज्ञान प्राप्त करो और शान्ति पाने के लिये वचन काया की प्रवृति कम करो और दोनों के स्थिर हुए पीछे मन से भी आत्मा को अलग करके आत्मभाव में स्थिर होओ। ऐसा ध्यान करने वाले को व्यवहार प्रवृत्ति कम करना चाहिये किंवा व्यवहार प्रवृति छूटने मे विघ्न आते होवें तो प्रवृति करते हुए भी आप उस के बाह्य प्रवर्ति में विशेष चित्त मत रक्खो, रागद्वेष

करे। विना अपना व्यवहार करके अपना चित्त तो आत्मध्यान में और आत्महित मे ही रक्खो।

जगद्देहात्मदृष्टीनां विश्वास्यं रम्यमेव च।
स्वात्मन्येवात्मदृष्टीनां क्व विश्वासः क्व वा रतिः ॥४९॥

बेचारे भोले लोग जो आत्मज्ञान से विमुख हैं वे बेचारे निर्भाग्य लोग अपने बच्चे औरत नौकर आदि की बातों मे बड़ा आनन्द मानते हैं और अधम लोग तो दुराचारिणी वेश्या किंवा कुलटाओं के साथ शृंगार रस की बातों मे आनन्द मानेगे किंवा मित्र की सलाह पर विश्वास रक्खेंगे, किन्तु आत्मज्ञानी आत्मा से अतिरिक्त कोई भी हो उस के साथ बातों मे आनन्द नहीं मानेगा, बल्कि आत्मध्यान मे ही आनन्द मानेगा और इसी मे विश्वास रक्खेगा। किन्तु पुत्र कलत्र आदि मे न तो उसकी रति होगी और न उस का विश्वास होगा। जिसने शास्त्रज्ञान प्राप्त कर लिया है और आत्मस्वरूप में जिसकी दृष्टि हुई है उस साधु को यह भावना अति उत्तम है, पर नये शिष्यों को योग्यता पाने के लिये गुरु महाराज के पास पहिले शास्त्र श्रवण कर आत्मस्वरूप की पहिचान कर आत्मभावना मे बैठना—यह अनुकूल और हितकारी होगा।

आत्मज्ञानात्परं कार्यं न बुद्धौ धारयेच्चिरम्।
कुर्यादर्थवशात्किञ्चिद्वाक्कायाभ्यामतत्परः ॥ ५० ॥

आत्मज्ञानी मुमुक्षुओं को यह हितशिक्षा है कि और किसी कार्य को बुद्धि मे बहुत काल तक मत रक्खो ताकि तुम्हारे हृदय मे संकल्पों की तरंग उत्पन्न न होवें और मन मे रागद्वेष न होवे। पर यदि परोपकार के लिए व्याख्यान और निर्वाह के लिये भोजन आदि जरूरी कार्य करना पडे तो वाचा और काया मे करो, किन्तु उस मे उत्कंठा मत रक्खो, नहीं तो रागद्वेष हो जाने से नया कर्म का बन्ध हो जाने पर फिर दुःख पाओगे।

यत्पश्यामीन्द्रियैस्तन्मे नास्ति यन्नियतेन्द्रियः ।
अन्तः पश्यामि सानन्दं तदस्य ज्योतिरुत्तमम् ॥ ५१ ॥

आत्मज्ञानी को सिर्फ हितशिक्षा दी है कि आप लोगों के हृदय में यह भावना पहिले होनी चाहिये कि मैं जो इन्द्रियों से देखता हूं वह मेरा नहीं है और वह मैं भी नहीं हूं, किन्तु मैं जब इन्द्रियों को कब्जे मे लेकर हृदय में स्थिरता करके अन्दर देखता हूं तब मेरे को आनन्द अनुभव होता है सो ज्ञानस्वरूप आत्मा का उत्तम स्वरूप है लोक मे ज्योति दीपक को कहते हैं। किन्तु वह ज्योति पुद्गल होने से इन्द्रियों से देखी जावेगी, पर आत्मज्योति ज्ञानस्वरूप अरूपी होने से केवल ज्ञानी साक्षात् देखेगे । हम लोगों को तो सिर्फ ध्यान करने से शान्ति और आनन्द अनुभव में आवेगा और शुद्ध परिणाम के अनुसार कर्म कटने से शान्ति आनन्द दिन पर दिन बढ़ता रहेगा और परम्परा से कैवल्यज्ञान होजाने पर साक्षात् भी दीखेगा ।

सुखमारब्धयोगस्य बहिर्दुःखमथात्मनि ।
बहिरेवासुखं सौख्यमध्यात्मं भावितात्मनः ॥ ५२ ॥

जो भव्यात्मा आत्मध्यान की शुरुआत करता है इस को बाह्य विषय में जो सुख है वैसा सुख अध्यात्म में न होगा क्योंकि विषयों की सुन्दरता का राग छोड़ना अति दुर्लभ है । ललना, लक्ष्मी, मान, सत्ता, पुत्र, परिवार सुखदायी वारंवार दीखता है जिस से न तो उन को छोड़ना अच्छा लगता है न आत्मध्यान अच्छा लगता है, किन्तु ज़बरदस्ती से किंवा देखादेखी किंवा भविष्य में उस ध्यान से आनन्द अनुपम मिलेगा । वैसी भावना से जो पुरुष कभी आत्मध्यान में बैठे तो पहिले एक कंटक रूप

हो आत्मध्यान दीखेगा और जिसको आत्मध्यान का आनन्द अनुभव हो रहा है वह धर्मात्मा न रमणी रमा के भोग में फंसेगा न उनके लिये रागद्वेष करेगा किन्तु साधु होकर परमार्थ मे जीवन व्यतीत करता हुवा आत्मध्यान मे ही रक्त होकर वाह्य व्याख्यान गोचरी ( भोजन ) में अतृप्त होवेगा, क्योंकि आत्मध्यान के सिवाय उसको कही भी आनन्द सुख नहीं दीखता है ।

तद्ब्रूयात्तत्परान्पृच्छेत्तदिच्छेत्तत्परो भवेत् ।
येनाविद्यामयं रूपं त्यक्त्वा विद्यामयं व्रजेत् ॥५३॥

अध्यात्मज्ञानी को यह हितशिक्षा है कि कभी आप को आत्मज्ञान मे बहुत काल तक स्थिरता न होवे तो आप वही बचन बोलो वही बात दूसरे से पूछो वही इच्छा करो उसी मे तत्पर रहो जिससे आप लोगों के आत्मज्ञान की भ्रान्ति जो अविद्या रूप है वह नाश हो जावे और तत्त्वज्ञान आप को प्राप्त होवे। इस श्लोक में बताया गया है कि प्रवृति में दृढ पुरुषों को आत्मध्यान मे स्थिरता न होवे तो उसी चर्चा मे समय लगाओ जिस से आत्मध्यानमे सहायता होवे धर्मकथा इत्यादि मे जो चित्त लगे तो स्वपर उपकार करके भी अन्त मे वही सार लाना चाहिये कि जिस से आत्मज्ञान होवे और आत्मध्यान मे स्थिरता होवे। संसार मे रक्तता यह अविद्या है और विरक्तता यह सुविद्या है।

शरीरे वाचि चात्मानं संधत्ते वाक्शरीरयोः ।
भ्रान्तोऽभ्रान्तः पुनस्तत्त्वं पृथगेषां निबुध्यते ॥ ५४ ॥

जो बेचारे भोले जीव हैं वे आत्मज्ञान से विमुख होने से आत्मा को शरीर मानते हैं किंवा बोलने वाली जिह्वा को ही आत्मा मान लेते हैं। वे जीव भ्रान्ति मे पड़े हैं, उनको मालूम नहीं है कि आत्मा के साथ कर्म लगे हैं जिस से जिह्वा मिली है और वाचा का और काया का व्यापार होता है। किन्तु आत्म-

ज्ञानी आत्मा को न तो शरीर मानता न वाचा मानता है, किन्तु आत्मशरीर वाचा से भिन्न है सो ही मेरा आत्मा है। वह पुरुष आत्मध्यान से च्युत नहीं है और वह भ्रान्ति से गिरा हुआ भी पीछे ठिकाने आ सकता है।

न तदस्तीन्द्रियार्थेषु यत्क्षेमङ्करमात्मनः।
तथाऽपि रमते वालस्तत्रैवाज्ञानभावनात्॥ ५५॥

जो आत्मा में सुख है निर्वाण का कारण है दुःख का विध्वंस है वह इन्द्रियों के विषय में सर्वथा नहीं है। यत्किञ्चित् दीखता है वह भी आनन्दाभास है जिस में वेचारे भोले जीव अज्ञानता से फंस जाते हैं और इन्द्रियों के विषय में सुख मानते हुवे अपना तन मन धन सब अर्पण करके भी भोगों की वांछा करते हैं जो बहुतसों को प्राप्त हो जाते हैं बहुतसों को नहीं होते, तौ भी तृष्णा नहीं मिटती है और अन्य पुण्यवान् पुरुषों की ईर्षा कर के दिनरात जलते हैं, हाय २ करते हैं, अनाचार से वर्तते हैं अकृत्य करते हैं, राजाओं की शिक्षा पाते हैं, कुल की आबरु गांठ का पैसा और मनुष्यजन्म निरर्थक गवांते हैं तौ भी बेचारे न तो सुख पाते हैं न सद्गति बल्कि नरक को जाते हैं।

चिरं सुषुप्तास्तमसि मूढात्मनः कुयोनिषु।
अनात्मीयात्मभूतेषु ममाहमिति जाग्रति॥ ५६॥

विषय आनन्दी भोले जीवों के प्रति यह हितशिक्षा है कि आप बहुत काल से संसार में भ्रमण करते हुए चौरासी लाख योनियों में होते हुए इधर आये हो। वह पूर्व का अभ्यास जो अविद्या का है सो अब भी तुमको भ्रान्ति में डालता है और यह यह मेरा है, यह शरीर मैं हूं, मेरा घर, बाग़बग़ीचे, औरत, बेटे हैं, मैं इनका पालन करने वाला हूं, मेरे भरोसे पर बैठे हैं मेरे हितचिन्तक हैं—ऐसे विचार करते हुए आत्मज्ञान से विमुख हो कर इन्द्रियज्ञान और बाह्य पदार्थ जो आत्मा से अतिरिक्त और

कर्मसम्बन्ध से मिले हुए हैं इस मे वे जागृत हैं और इसी मे हर्ष शोक अहंकार दीनता सुख दुःख मानते हुए जन्म मरण का दुःख परवश होकर भोग रहे हैं ।

पश्येन्निरन्तरं देहमात्मनोऽनात्मचेतसा ।
अपरात्मधियाऽन्येषा मात्मतत्त्वे व्यवस्थित. ॥ ५७ ॥

अपने शरीर को निरन्तर आत्मा से भिन्न देखना चाहिये और अपने आत्मा मे स्थिर होकर अन्य पुरुषों की देह को भी आत्मा से भिन्न मानना चाहिये, क्योंकि उनकी देह को भी आत्मबुद्धि से देखने से फिर रागद्वेष होगा और भ्रान्ति होगी, इस लिये मन में निश्चय करे कि मेरा आत्मा जैसा अरूपी है वैसा अन्य का भी अरूपी है और अरूपी आत्मा का सम्बन्ध हो नहीं सकता, इस से रागद्वेष क्यों करे ।

अज्ञापितं न जानन्ति यथा मां ज्ञापितं तथा ।
मूढात्मानस्ततस्तेषां वृथा मे ज्ञापनश्रमः ॥ ५८ ॥

कितनेक प्राणी ऐसे भी हैं जिनको आत्मतत्त्व का ज्ञानाभ्यास बिल्कुल नही है, वे रातदिन विषयानन्दी होकर हर्ष शोक का दुःख पाते हैं । वे यदि प्रयास करें तौ भी इन्द्रियों का साथ छोड़ने मे अशक्त हैं और कभी मैं हितशिक्षा कहने को जाऊं तो वे लोग नही समझेंगे, किन्तु मेरे को भी नाहक श्रम होगा, इसलिये उन मूढ आत्माओं को आत्मज्ञान का उपदेश करना निष्फल है फिर मैं नाहक क्यों प्रयास करूं ।

यद्बोधयितुमिच्छामि तन्नाहं यदहं पुनः ।
ग्राह्यं तदपि नान्यस्य तत्किमन्यस्य बोधये ॥ ५९ ॥

वे लोग जो इन्द्रियप्रियों को बोध देने को जाते हैं उनको यह हितशिक्षा है कि तुम को सोचना चाहिये कि मैं जिसको बोध देना चाहता हूं वह मैं नही हूं और मैं किसी से ग्राह्य भी नही हूं, मैं अरूपी हूं और ग्राह्य जो शरीर है उस से आत्मा अलग है

तब मैं क्या किसी को समझाऊं ? जो कर्म का पर्दा उसका खु
होगा तो वह आत्महित चिन्तवन करके आत्मानन्दियों से मि
कर आत्मतत्त्व की शोध करेगा । रोगियों को पहिले मालू
होना चाहिये कि मैं रोग से व्याप्त हूं और दवा करने से निरो
हो सकूंगा । तब वह वैद्य की शोध मे जाकर दवा लेकर निरो
होगा । इस तरह से शरीर को भिन्न मानने वाला ही आत्महि
करने का उद्यम करेगा और कर्म तोडने का उद्यम कर कर्मबन्धन
मुक्त हो सकेगा मेरा प्रयास मेरे आत्मतत्त्व चिन्तन के लिये ही योग

बहिस्तुष्यति मूढात्मा पिहितज्योतिरन्तरे ।
तुष्यत्यन्तः प्रबुद्धात्मा बहिर्व्यावृत्तकौतुकः ॥६० ॥

जो ससार में भ्रमण करने वाले आत्मज्ञान से विमुख
आत्मा हैं वे बाह्य आडम्बर और इन्द्रियविषय में आन
मानते हैं और जो आत्मानन्दी प्रज्ञ जीव है वह बाह्य कौ
चेष्टा से विमुख होकर आत्मतत्त्व में रक्त हैं और आत्मज्ञान
प्रबुद्ध होकर आत्मा में ही सन्तुष्ट हैं ।

न जानन्ति शरीराणि सुखदुःखान्यबुद्धयः ।
निग्रहानुग्रहधियं तथाऽप्यत्रैव कुर्वते ॥ ६१ ॥

जो आत्मज्ञान से विमुख हैं वे बेचारे नहीं जानते कि
शरीर है वही सुखदुःख है और ऐसा न जानने से वे लोग आ
शरीर में रागद्वेष करके उस पर अनुग्रह निग्रह करते हैं, पि
शरीर को पुष्ट करने को स्वादिष्ट व्यञ्जन खाते हैं और रोग
होने मे रेचक ( जुलाब ) पदार्थ लेंगे किंवा उपवास आदि क
किंवा शरीरशोभा के लिये स्वर्ण मोती के आभूषण धारण क
और शरीर से जो अकार्य होगा तो फिर शरीर को शिक्षा क
कोई तो अपघात भी करते हैं। जैसे शरीर को शिक्षा करते
वैसे परिवार को भी अनुग्रह निग्रह करते हैं । किन्तु कर्म स

न्ध को भूल जाते हैं कि आत्मा से अतिरिक्त शरीर पर क्यों रागद्वेष किया जाय।

स्वबुद्धया यावद्गृह्णीयात् कायवाक् चेतसां त्रयम्।
संसारस्तावदेतेषां भेदाभ्यासे तु निर्वृतिः॥ ६२॥

जहां तक अपना आत्मा आत्मा से विमुख होकर शरीर वाणी और मन में ममता रक्खेंगे किंवा अपना मान कर रागद्वेष करेंगे जब तक ही पुद्गलसमूह कर्म सम्बन्ध से लगकर संसार मे जन्म मरण कर भ्रमण करेंगे और दुःख पावेंगे, किन्तु आत्मा में दृढता रखके उन तीनों को न्यारा जानकर उन पर से रागद्वेष दूर करेंगे। तब पुद्गलसमूह दूर होकर आत्मा स्वयं जुदी हो जावेगी और जन्ममरण के दुःख दूर होवेंगे फिर अहङ्कार, दीनता, काम, क्रोध, कपट का काम ही न रहेगा। इस श्लोक में सूचित किया है कि आत्मा से अतिरिक्त काया वचन और मन मानना चाहिये, यदि नहीं मानेंगे तो संसार मे भ्रमण होगा और न्यारा मानेंगे तो भ्रमण मिट जावेगा।

घने वस्त्रे यथात्मानं न घनं मन्यते तथा।
घने स्वदेहेऽप्यात्मानं न घनं मन्यते बुधः॥ ६३॥

बेचारे भोले जीवों को बारम्बार कहने पर भी याद नहीं रहता है। इस लिये उनको यह हितशिक्षा दी है कि आप लोग कपड़े बहुत पहिनते हो और कपड़े मोटे होने पर भी आप अपनी आत्मा को पुष्ट नहीं मानते हो, इसी तरह से आपको आत्मा में स्थिरता करके सोचना चाहिये कि शरीर पुष्ट होने से आत्मा पुष्ट कैसे होगी? क्योंकि कपड़े जैसे आत्मा से अलग हैं वैसे ही शरीर भी आत्मा से अलग है। क्योंकि अपने घर मे या गांव में किसी की मृत्यु हो जाती है तब आप लोग यह मान कर कि शरीर से जीव अलग हो गया इस (शरीर) को जला देते हैं किंवा गढ़े मे दबा देते हैं किंवा जल मे डाल देते है यदि आत्मा पृथक्

न होता तो पहिले क्यों नहीं जलाते ? और जलाते हो तो आप देह से अलग क्यों नहीं ? यदि अलग हो तो शरीर पर क्यों मोह रख न और पुष्ट मानना चाहिये ?

जीर्णे वस्त्रे यथात्मानं न जीर्णं मन्यते तथा।
जीर्णे स्वदेहेऽप्यात्मानं न जीर्णं मन्यते बुधः ॥ ६४॥

करुणा के सागर गुरु महाराज बालबुद्धिजनको समझाते हैं कि भो भव्यात्मन्! आप लोग अंग पर पहिरे हुए कपड़े जीर्ण होजाने से अपने आत्मा को जीर्ण नहीं मानते हो। जैसे पुराने कपड़े को फेंक देते हो वैसे आत्माको निकला हुवा नही मानते हो किन्तु शरीर में बैठा हुवा ही मानते हो। इसी तरह से जो पुरुष बुध और प्रज्ञहैंवे आत्मज्ञानी पुरुष देह जीर्ण होने से अपने को जीर्ण नहीं मानते हैं, क्योंकि जीर्ण मानने से खेद, दीनता, दुःख और व्याकुलता होगी। कितने भोले जीव अपनी मृत्यु यानी शरीर से अपना अलग होना जानकर पहिले से व्याकुलता करेंगे किन्तु पंडित पुरुष शरीर नाश होने से भी व्याकुल नहीं होता है और न आत्मा में दीनता लाता है।

नष्टे वस्त्रे यथात्मानं न नष्टं मन्यते तथा।
नष्टे स्वदेहेऽप्यात्मानं न नष्टं मन्यते बुधः ॥ ६५॥

और भी बाल जीवों को वीतराग प्रभु समझाते हैं भो भद्रक तुम लोग जिस समय अपना कपड़ा जलता हुवा देखते हो तो कपड़े को दूर फेंक देते हो किंवा कपड़े को बुझा डालते हो यदि सब कपड़ा जल जावे तो आप उसको नष्ट हुवा कहेंगे और मानेंगे किन्तु आप ऐसा न मानेंगे और न कहेंगे कि मेरी आत्मा नष्ट हो गई। इसी प्रकार पंडित पुरुष अपनी काया को नष्ट हुई देख कर यह नहीं मानता कि मैं या मेरी आत्मा नष्ट हो गयी और आत्मा को वैसी नहीं मानने से काया नष्ट होने से भी आत्मा में दीनता खेद दुःख नहीं लाता है किन्तु शान्ति

खता है कि जैसे कर्म होंगे वैसा मेरा शरीर मिलेगा और कर्म होंगे तो मुक्ति विना इच्छा मिल जायगी ऐसा बुद्धि के अनुसार ाप भी मानो और खेद मत करो ।

रक्ते वस्त्रे यथात्मानं न रक्तं मन्यते तथा ।
रक्ते स्वदेहेऽप्यात्मानं न रक्तं मन्यते बुधः ॥ ६६ ॥

कपड़े से शरीर को शोभायमान बनाने वालों को हितशिक्षा ै कि कपड़े रंगीन होने पर भी आप लोग आत्मा को रंगीन ाहीं मानते हैं वैसे ही आत्मज्ञानी शरीर को रक्त होने पर भी प्रपनी आत्मा को रंगीन नहीं मानते हैं। जो भोले जीव हैं वे ेचारे ऐसा नहीं जानने से अपने शरीर को सुवर्ण किंवा गुलाबी ंग किंवा गौरवर्ण को देख कर अहंकार करते हैं और श्यामरंग ेख कर दीनता बताते और हर्ष शोक करते हैं। दुःख सुख मानते हैं किन्तु आत्मज्ञानी बुद्धिमान् पुरुष अच्छे वर्ण से न तो आनन्द मानता और न श्यामवर्ण से खेद मानता है। किन्तु पूर्व कर्म का फल मान कर समता धारण करता है। मैं अर्थात् मेरी आत्मा इस शरीर से भिन्न अरूपी है मेरे को इस वर्ण के साथ क्या निस्बत है ?

यस्य सस्पन्दमाभाति निःस्पन्देन समं जगत् ।
अप्रज्ञमक्रियाभोगं स शमं याति नेतरः ॥ ६७ ॥

जो आत्मा मे स्थिर हुए है उनका यह लक्षण है कि जगत् में अनेक व्यावहारिक चेष्टा हो रही हैं गायन रुदन होरहा है जय नाद वा भागने की हायपीट की आवाज हो रही है तो भी इनके दिल मे जगत् शून्यवत् दीखता है और चेष्टा करने वालों को भी जड़ मानता है। उनका सुखा स्वाद किंवा दुःख भोगना पुतलियों के खेल के समान होता है। अपने आत्मा को वह सब चेष्टाओं से अलग चिदानन्दस्वरूप मानता है वही स्थिर आत्मा सच्चे सुख को पाता है। किन्तु जैसे सुख दुःखो मे हर्षशोक मे

अहंकार दीनता से अपने को व्याप्त मानता है वह बाह्य
बालबुद्धि कभी सुख नहीं पा सकता है, किन्तु उसको
भोगने से भी सुख या तृप्ति नहीं मिलेगी ॥

शरीरकञ्चुकेनात्मा संवृतज्ञानविग्रहः ।
नात्मानं बुध्यते तस्माद्भ्रमत्यतिचिरं भवे ॥ ६८ ॥

बेचारा भोला जीव ज्ञानी गुरु के समझाने पर भी
ज्ञान शरीर आवरण से ढक जाने से नहीं जान सकता कि मैं
हूं । यह शरीर दो प्रकार के हैं एक तो बाह्य स्थूल शरीर,
दूसरा अभ्यतर सूक्ष्म शरीर । स्थूल शरीर आयु पूर्ण होने से
हो जाता है, किन्तु सम्पूर्ण कर्म नष्ट हो जावे तब अभ्यतर
शरीर नष्ट हो जाता है और मुक्ति मिल जाती है । जहां
सूक्ष्म शरीर नष्ट न होवे वहां तक नया स्थूल शरीर मिलता
और सुख दुःख भोगना पड़ता है । इस लिये ज्ञानी भगवान्
इस श्लोक में हितशिक्षा दी है कि सूक्ष्म शरीर के परदे से
बुद्धि में भ्रम होता है कि मैं शरीर हूं किन्तु भ्रांति छोड़कर,
को भिन्न मान कर शरीर से रागद्वेष दूर करो और
पाने का अभ्यास करो और भवभ्रमण से छूटो ॥

प्रविशद्गलतां व्यूहे देहेऽणूना समाकृतौ ।
स्थितिभ्रान्त्या प्रपद्यन्ते तमात्मानमबुद्धयः ॥ ६९ ॥

भोले जीव शरीर को ही आत्मा क्यों मानते हैं ?
आत्मा शरीर के भीतर रहता है और जितना शरीर
आत्मा कर्म के सम्बन्ध से होता है । एक स्थूल शरीर छोड़
आत्मा सूक्ष्म शरीर के साथ जाता है, और कर्म के अनुसार
शरीर मिलता है । इतने स्थूल शरीर में आत्मा व्याप्त हो जाती
चींटी की आत्मा हाथी मे हाथी तुल्य हो जाती है और हाथी
की आत्मा चींटी के शरीर में जाती है तब हाथी बड़ा होने

ो चींटी के शरीर तुल्य हो कर चींटी के शरीर मे रहता है।
ाम में बालआत्मा जो बालबुद्धि पे बेचारे भूम मे पड़ते हैं कि
ह शरीर ही आत्मा है और बढ़ता घटता पुद्गलराशि शरीर
ात्मा है किन्तु इतना नहीं जानता है कि यह फेरफार कर्मजनित
और कर्म छूट जाने पर आत्मा मे कोई फेरफार नहीं होता
और शरीर स्थूल और सूक्ष्म छूट जाने पर भी आत्मा चिदानन्द
वरुप क़ायमरहता व सुखदुःख का कृत्रिमआभास बन्द होजाता है।

गौरः स्थूलः कृशोवाहमित्यङ्गेनाविशेषयन् ।
आत्मानं धारयेन्नित्यं केवलज्ञप्तिविग्रहम् ॥ ७० ॥

मैं गोरा मैं काला मै स्थूल मैं पतला ऐसा शरीर देख कर
ात्मा को ऐसा मत मानो किन्तु मेरा आत्मा यानी मैं (आत्मा)
काला हूं न गोरा हूं न पुष्ट हूं न कृश हूं। उन शरीर से मैं
भन्न हूं मेरा आत्मा अनन्त ज्ञानमय (कैवल्य ज्ञान) है यानी
दार्थमात्र को जानना यही मेरा स्वरूप है। ऐसी भावना नित्य
ारण करने से हर्ष शोक आदि सब दूर हो जायेंगे। इस भावना
ो भावने वाले गृहस्थी भी व्यभिचार से दूर रहेंगे क्योंकि
ज्ञानता किंवा मोह से या रूप से मोहित हो कर परस्त्री के
ांस में फंस कर इस लोक मे मान, शिक्षा, लज्जा, निर्धनता और
ोगादि को प्राप्त होते हैं और जो रूप से मोहित न होंगे वे
र्मात्मा अपनी स्त्री मे संतोष कर आवरु पा कर सद्गति में
ायेंगे और परम्परा से मुक्ति मे भी जायगे॥

मुक्तिरेकान्तिकी तस्य चित्ते यस्याचला धृतिः ।
तस्य नैकान्तिकी मुक्तिर्यस्य नास्त्यचला धृतिः ॥७१॥

जिस के चित्त मे अचल धीरज है कि मैं आत्मा हूं, शरीर से
भिन्न हूं मैं तो कर्म पुद्गल से छूटने पर अवश्य मोक्ष मे जाऊंगा
ऐसे अचल धीरज वाला पुरुष मुक्ति मे जायगा और इस मे कोई

भी विघ्न नहीं कर सकता, किन्तु दिन पर दिन · त्मा·
होकर शान्ति पावेगा और जो मुक्ति के विषय मे धीरज
रक्खेगा किंवा मेरे को मुक्ति मिलेगी अथवा नहीं मिलेगी ऐ
शंका करेगा किंवा बाह्य विकल्पों से मन में चिन्ता रक्खेगा
पुरुष की मुक्ति होनी दुर्लभ है । क्योंकि अनेक प्रकार के मोह
फांसे सामने आ कर खड़े रहेगे और वह विषयानन्दी हो जावे
किंवा मैंने नाहक विषय सुख व्यर्थ किया ऐसे विकल्पों से
से पीड़ित हो कर दुःख पावेगा, इस लिये मुमुक्षुओं को आ
ध्यान में अटल धैर्य रखना चाहिये ।

जनेभ्यो वाक्कृतः स्पन्दो मनसश्चित्रविभ्रमाः।
भवन्ति तस्मात्संसर्गं जनैर्योगी ततस्त्यजेत् ॥ ७२॥

मनुष्यों से बात चीत करने से चित्त में विकल्प होता है
संसर्ग से विकथा होती है इस लिये आत्मानन्दी योगियों
मनुष्य का संसर्ग छोड़ना चाहिये । जो संसर्ग अधिक रक्खेंगे
धर्मकथा में रस नहीं आने से धीमे २ योगी भी गृहस्थी का
करने के लिये उन की स्त्रीकथा भोजनकथा देशकथा ।
में प्रवृत होगा और प्रवृति में पड़ने से मन में विकल्प होगा
विकल्प होने से स्थिरता रहनी कठिन होगी इस लिये योगी
गृहस्थों का संसर्ग अवश्य कम रखना चाहिये । गोचरी
कारणे प्रसङ्गवश से संसर्ग हो जावे तो उस में उत्कंठा न
किन्तु आत्मानन्द में विघ्न न आवे इस तरह से अल्प
कार के मन में तो वही भावना रक्खे कि मैं कब आत्महित साधूं

ग्रामोऽरण्यमिति द्वेधा निवासोऽनात्मदर्शिनाम्।
दृष्टात्मनां निवासस्तु विविक्तात्मैव निश्चलः॥ ७३॥

चाहे कोई ग्राम में निवास करे किंवा अरण्य मे निवास
किन्तु दोनों निवास जो आत्मानन्दी नहीं है उनको दुःख के का

ै। किन्तु जिसको आत्मानन्द हो रहा है वह आत्मा पुण्यवान्
जीव चाहे जंगल में रहो चाहे शहर में रहो तौ भी उसका जीव
आत्मा से भिन्न उस देह से विमुख होकर आत्मा में ही अपना
निवास मानता है। जो आत्मा से विमुख होकर अरण्य में रहवे
चाहे शहरमें रहवे तौ भी अज्ञानतासे मोहदशा में पीडित होकर
दुर्गति में जाता है, इसीलिये भगवान् ने कहा है कि आप अकेले
हो किंवा समुदाय में हो जंगल में हो किंवा शहर में अथवा दुःखी
या सुखी तौ भी अपने आनन्द से भ्रष्ट मत हो आत्मा में ही मेरापन
रक्खो और आत्मा से भिन्न किसी बाह्य उपाधि में मत पड़ो।

देहान्तरगतेर्बीजं देहेऽस्मिन्नात्मभावना।
बीजं विदेहनिष्पत्तेरात्मन्येवात्मभावना ॥ ७४ ॥

जिस पुरुष को मुक्ति अवश्य चाहिये उसको यह उपाय बताया
है कि दूसरा भव मिलने का बीज यह अपनी देह में आत्मभावना
रखने का है और देह से मुक्त होने का बीज आत्मा में ही आत्म-
भावना रखनी चाहिये। यदि आप लोग देहबन्धन से और दुःख-
समूह से मुक्त होने की इच्छा करते हो तो अपनी देह को आत्मा
मत मानो किन्तु शरीर से भिन्न आत्मज्ञानस्वरूप मानो जिस का
स्वभाव इन्द्रियों की वशता से दूर होकर आत्मानन्द में ही दृढ रहे।

नयत्यात्मानमात्मैव जन्मनिर्वाणमेव वा।
गुरुरात्माऽऽत्मनस्तस्मान्नान्योऽस्ति परमार्थतः ॥ ७५ ॥

आत्मा को अपनी आत्मा ही जन्ममरण के फांसे में डालता
है किंवा जन्ममरण से मुक्त करता है परन्तु और कोई जन्ममरण
का फांसा डालने में समर्थ नहीं हैं किंवा जन्ममरण की पीड़ा से
छुड़ाने वाला आत्मा के सिवाय कोई नहीं है। इस लिये आत्मा
को परमार्थ की बुद्धि से देखा जावे तो आत्मा का ही उपकार
अपकार है और आत्मा का हितशिक्षक गुरु आत्मा ही है और

दुर्गति में डालने वाला भी आत्मा ही है इस लिये सज्जनों
चाहिये कि अपनी आत्मा को अपनी ही आत्मदुर्गति में
लेजायें इस लिये आत्मा से अपर उस देह के सम्बन्धी पुत्रादि
मोह छोड़कर आत्मा में स्थिरता करनी चाहिये ।

दृढात्मबुद्धिर्देहादावुत्पश्यन्नाशमात्मनः ।
मित्रादिभिर्वियोगं च बिभेति मरणाद्भृशम् ॥ ७६ ॥

इस संसार में यह जो बालबुद्धि मोहग्रस्त जीव हैं वह वे
अपनी देह में ही आत्मबुद्धि मानकर जिस समय मृत्यु आती
उस समय अपने मित्र कुटुम्ब परिवार से अपना वियोग होने
मरने से बहुत डरते हैं और व्याकुलता दर्शाते हैं । किन्तु
आत्मा हूं अमर हूं नाश होने वाला शरीर है मैं इस से आर्ति
ज्ञानमय पुण्य पाप का फल भोगने वाला कर्म सम्बन्ध से मि
हुवा शरीर के भीतर हूं और किये हुए कृत्यों के अनुसार
नया शरीर बन्धनरूप मिलेगा इस लिये मेरे को व्यर्थ शोक
करना चाहिये । ऐसी भावना भी हृदय में नहीं होती जिस
मरने वाला भयभीत होकर डरता है और उसके अनुयायी
सभी इस तरह के वियोग को देख कर रोते हैं किन्तु शरीरा
आत्मा होने से स्थूल शरीर को छोड़कर मरने वाला
सूक्ष्म शरीर को लेकर नये जन्म में चला जाता है और रोने
अनुयायी रोते ही रह जाते हैं ।

आत्मन्येवात्मधीरन्यां शरीरगतिमात्मनः ।
मन्यते निर्भयं त्यक्त्वा वस्त्रं वस्त्रान्तरग्रहम् ॥ ७७

जिस पुण्यवान् जीव को आत्मज्ञान हुआ है वह
में आत्मबुद्धि रखता है किन्तु शरीर से भिन्न आत्मा
मानकर शरीर को नाश होते हुए देखकर भी जैसे बालक अ
से युवक होता है और युवक से बुड्ढा होता है ऐसे ही बुढ़ापे

कोई नयी अवस्था मिलेगी ऐसा मानकर कि जैसे कपड़ा फट जाने से पुरुष नये वस्त्र बदलता है और असन्तुष्ट नहीं होता है, इसी प्रकार एक शरीर नष्ट होने पर दूसरा शरीर मिलने से असन्तुष्ट नहीं होता है और भय भी नहीं लाता है। न व्याकुल होता है न रोता है किन्तु धैर्यता रखके अपने अनुयायी, मित्र, परिवार को हितशिक्षा देता है कि जैसे मेरा शरीर कर्म सम्बन्ध पूरा हो जाने से बदलेगा वैसे ही आप का शरीर बदलेगा किन्तु जहांतक थोड़ा भी कर्म भोगने बाकी हैं वहां तक फिर नया शरीर मिलेगा और नये सम्बन्धी से संयोग और सब जगह खेद होगा। जिस से यह काया बन्धन से छूट जावे ऐसा उपाय करो जिस से कि हर्ष शोक की ज़रूरत न रहवे।

व्यवहारे सुषुप्तो यः स जागर्त्यात्मगोचरे।
जागर्ति व्यवहारेऽस्मिन्सुषुप्तश्चात्मगोचरे ॥ ७८ ॥

जो पुरुष अपनी आत्मभावना छोड़कर व्यवहार मे प्रवृत्ति रखता है वह आत्मानन्दी नहीं हो सकता। इन को यह हितशिक्षा दी है कि आप यदि व्यवहार मे प्रवृत्ति कम रक्खोगे तो आत्मदृष्टि जागृत हो जावेगी और आत्मानन्द बढ़ता रहेगा और जो आप व्यवहार मे प्रवृत्ति अधिक रक्खोगे तो ज्ञान से विमुख रहोगे। इसी आत्मानन्दी होने वाले को बाह्यप्रवृत्ति कम करनी चाहिये और आत्मभावना मे दृढ़ होना चाहिये। संसारमें कुशलपुरुषो को भी संभाल रखनी चाहिये कि जब तक आप आत्मा से दृढता नही रक्खोगे तब तक आप को बाह्यकुशलता से स्थिर आनन्द नहीं होवेगा किन्तु खेदमिश्रित हर्ष होवेगा और दुर्ध्यान होने पर कुशलता भी चली जावेगी। इस लिये बाह्यप्रवृत्ति करनेवालोंको भी आत्मज्ञान बढ़ाने की मुख्य आवश्यकता है।

आत्मानमन्तरे दृष्ट्वा दृष्ट्वा देहादिकं बहिः।
तयोरन्तरविज्ञानादभ्यासादच्युतो भवेत ॥ ७९ ॥

सद्गुरु महाराज परमकरुणा से फिर हितशिक्षा कहते हैं- भो भव्यात्मन्! तुम अपनी आत्मा को आत्मस्वरूप से देखो और बाह्यशरीर को और उपाधि ( लक्ष्मीललना ) को वाह्यसमझ कर दोनों को भिन्न जानकर आत्मा का आत्मा में ही ध्यान करने का अभ्यास करो। जिस से आप लोग अच्युत हो जावें क्योंकि जो आत्मा स्थिर होता है उस को रागद्वेष कम होते हैं और रागद्वेष कम होने से पुद्गलसमूह का नया सम्बन्ध नहीं होता है और पुराना समूह भी धीरे २ क्षय होकर नष्ट हो जाता है। उस की आत्मा निर्मल होती है और निर्मलता बढ़ने से नया जन्ममरण नही होता। किन्तु मुक्तिस्थान में जाकर अच्युतपद पाता है। इसी लिये आत्मा और देह की भिन्नता हृदय में निरन्तर विचारनी चाहिये।

पूर्वं दृष्टात्मतत्त्वस्य विभात्युन्मत्तवज्जगत्।
स्वभ्यस्तात्मधियः पश्चात्काष्ठपाषाणरूपवत्॥ ८०॥

आरम्भ मे आत्मतत्त्व का अभ्यास करने वाले भव्यात्माओं को इस जगत् की चेष्टा में रमणी के विलास खेल तमाशे उस उन्मत्त की नाईं दीखते हैं जैसे यदि मदिरा पी कर कोई आदमी बुरी चेष्टा करेगा तो उस पर सज्जन ख़याल नहीं करते किन्तु बेचारे ने नाहक जन्म गंवाया ऐसा मान कर उस पर दया लाते हैं। इसी प्रकार आत्मध्यानी भी खिलाड़ियों और विषयाभिलाषियों पर दया लाते हैं किन्तु स्थिर आत्मध्यानियों को इस जगत् की चेष्टा करने वालों पर ख़याल भी नहीं आता किन्तु काष्ठपाषाण की तरह स्थिर पड़े हुए मालूम होते हैं। इस तरह स्थिर दीखने से न हंसी आती न खेद होता है।

शृण्वन्नप्यन्यतः कामं वदन्नपि कलेवरात्।
नात्मानं भावयेद्भिन्नं यावत्तावन्न मोक्षभाक्॥ ८१॥

भोले जीव जो मन्द बुद्धि हैं वे गुरु से बहुत श्रवण करते हैं और देखादेखी बड़े ज़ोर से यह भी कहते हैं कि आत्मा शरीर से भिन्न है किंवा जब तक आत्मा में दृढ़ भावना शरीर से भिन्न आत्मा की न होगी तब तक मोक्षप्राप्ति होनी असम्भव है। इस लिये मुमुक्षुओं को चाहिये कि श्रवण कर के न बैठे रहें किन्तु निरन्तर यही भावना रहनी चाहिये कि मैं शरीर से भिन्न ज्ञानस्वरूप आत्मा हूं मेरे को इस मायाजाल रूपी संसारी विषयों के फंदे में फंसना नहीं चाहिये। मैं पूर्व में फंसा था जिस से मेरे को इतना दुःख भोगना पड़ा और जब तक शरीर से मोह नहीं छूटेगा तब तक यह संसारी प्रपंच क़ायम ही रहेगा। जैसे गौ चरने को जाती है किन्तु ध्यान बछड़े में ही है ऐसे ही मुमुक्षु को भी संसारी प्रवृति कार्य्यवशात् करें परन्तु ध्यान आत्मा में ही रहना चाहिये॥

तथैव भावयेद्देहाद् व्यावृत्यात्मानमात्मनि।
यथा न पुनरात्मानं देहे स्वप्नेऽपि योजयेत्॥ ८२॥

आत्मानन्दी मुमुक्षुओं को वीतराग प्रभु यह हितशिक्षा देते हैं कि आप लोग ऐसी दृढ भावना देह से भिन्न आत्मा की भाओ जिस से आत्मा में आत्मा स्थिर हो जावे और स्वप्न में भी यह ख़याल न होवे कि मैं शरीर जड हूं और जड शरीर मेरा है। किन्तु स्वप्न में भी ख़याल होना चाहिये कि मैं आत्मा चिदानन्द और ज्ञानस्वरूप हूं मेरा इस संसार में कुछ नहीं है मेरी आत्मा निर्बाध, निरामय, अक्षय, अरूप इन्द्रियों से अग्राह्य कैवल्यज्ञान से ज्ञेय है कर्म सम्बन्ध से मैं शरीरबंधन में क़ैद हूँ मैं बिना कारण शरीर से मोह करके दुःख भोगता था मैं समझता हू कि अब मैं इस प्रपच मे नहीं गिरूंगा।

अपुण्यमव्रतैः पुण्य व्रतैर्मोक्षस्तयोर्व्ययः।
अव्रतानीव मोक्षार्थी व्रतान्यपि ततस्त्यजेत्॥ ८३॥

व्रत पालने से पुण्य होता है और पुण्य है सो शाता वेदनी देताहै और पाप अव्रत है इस अव्रत से अशान्ति होती है जिससे पहिले अव्रत और पीछे व्रत छोडना चाहिये जिस से न तो अशाता दुःख का बंध होवे और न शाता ( सुख ) का बन्ध होवे किन्तु ध्यान रखना कि पाप इतना प्रबल है कि मनुष्य की बुद्धि वारम्बार विगाड़ देता है । इस लिये परमगुरु महाराज जब योग्यता देखें तब आज्ञा दें तो व्रतों का विकल्प छोड़ना चाहिये नहीं तो न घर का न मोक्ष का रह कर बीच में ही घिसिटेगा इस लिये अव्रत को छोड़ने में खूब उद्यम करना चाहिये । हिंसा झूठ, चोरी, स्त्रीसंग, परिग्रह इनका छोडना यह व्रत है और हिंसादिक करना यह अव्रत है इस अव्रत को पहिले छोड़ कर व्रत धारण करो और व्रत मे हिंसा नहीं है और अव्रत हो जाने से नरक मे जाना पडेगा । व्रत छोडने का अर्थ यही है कि मैं आत्मा हूं आत्मानन्दी हूं बाह्य प्रपंच से मुक्त हूं शिष्यादि सब परिवार से मैं भिन्न हूं । मेरी आत्मा ही मेरी तारक है, मैं न किसी से तरनेवाला और न किसी को तराने वाला हूं ।

अव्रतानि परित्यज्य व्रतेषु परिनिष्ठितः ।
त्यजेत्तान्यपि संप्राप्य परमं पदमात्मनः ॥ ८४ ॥

पहिले अव्रत छोडना जिस से किसी जीवको पीड़ा न होवे और पाप छूट जावें और आत्मानन्द की पूर्ण योग्यता हो जावे और गुरु महाराज योग्य समझे तब आत्मा में पूर्ण स्थिरता करके कर्म को काटना चाहिये इस समय आत्मा की इतनी स्थिरता होनी दुर्लभ है कि यदि कोई अंग पर आग लगावे,या चन्दन लगावे तो भी एक पर द्वेष और दूसरे पर रागदशा न होवे । तो भी पुण्यवान् पुरुषों को धीमेर अभ्यास पढ़ने से ऐसी समाधि आसकतीहै

यदन्तर्जल्पसंपृक्तमुत्प्रेक्षाजालमात्मनः ।
मूलं दुःखस्य तन्नाशे शिष्टमिष्टं परं पदम् ॥ ८५ ॥

जब तक चिन्ताजाल है तब तक आत्मा को सम्पूर्ण शान्ति हीं मिलती । इस लिये पहिले दुःखों का मूल अवृत और सांसा-क विषयस्वाद छोड़ना पीछे स्थिरता होने पर व्यवहार चारित्र । वृत विकल्प है और शिष्यादिकों की सभाल और झगड़े हैं भी योग्य शिष्यों को सौंप कर सपूर्ण आत्मानन्दी हो जाने से भिलषित चिरस्थायी मोक्षपद का बीज केवलयज्ञान प्राप्तहोता है

अव्रती व्रतमादाय व्रती ज्ञानपरायणः ।
परात्मज्ञानसम्पन्नः स्वयमेव परोभवेत् ॥ ८६ ॥

पहले संसारभ्रमण का बीज अव्रत छोड कर व्रत धारण करना ।र फिर व्रती होकर गुरु महाराज की सेवा से व्रत मे स्थिरता के ज्ञान पढ़ने में ततपर होना जीव अजीव पदार्थ का सम्पूर्ण ान होने पर आत्मानन्दी और अच्छी तरह से आत्मभावना स्थिर हो कर क्षपक श्रेणी में चढ़ कर कैवल्यज्ञान प्राप्त करो ास से मोह और अज्ञान का आवरण सम्पूर्ण नष्ट होने पर बिना ाकी सहायता के भी आप तर सकेंगे और अन्य भव्यात्माओ को दुबोध देकर परमपद दे सकेंगे ।

लिङ्गं देहाश्रितं दृष्टं देह एवात्मनो भवः ।
न मुच्यन्ते भवात्तस्मात्ते ये लिङ्गकृताग्रहाः ॥ ८७ ॥

कितनेक भोलेजीव ऐसा मानते हैं कि ब्राह्मणादिजाति के तिरिक्त मोक्ष किसी को नहीं मिलता और कितनेक ऐसा मानते कि जटादि चिन्ह बिना मोक्ष नहीं मिलता । उन सब लोगों को ह हितशिक्षा दी है कि जाति और जटादि देह उपाधि के साथ म्बन्ध रखते हैं । इस लिये ऐसे आग्रह रखने वाले आत्मतत्त्व विमुख होने के कारण मुक्ति नहीं पा सकते । जिनका आग्रह रीरादि उपाधि, और जटादि जंजाल में नहीं है किन्तु आत्मा ो ही आत्मा मान कर उसकी भावना शरीर से भिन्न भाते हैं,

वे सब अवश्य मुक्ति पा ो इसलिये जाति और लिंग का क
ग्रह छोड़ कर किन्तु स समभावना स भाव रख कर शरीरादि
मोह छोडना चाहिये ।

जातिर्देहाश्रिता दृष्टा देह एवात्मनो भवः ।
न मुच्यन्ते भवात्तस्मात्ते ये जातिकृताग्रहाः ॥ ८८ ॥

पूर्व के श्लोक मे जाति और लिंग दोनो का आग्रह व
है इस लिये आत्मा यथो को उस कदाग्रह को छोड़ देना चा
और सब प्राणी पर समभाव रखना चाहिये । किसी को
जान कर उसका अपमान मत करो क्योंकि वह मनुष्य पूर्व
में जाति का अहङ्कार करने से उस जाति मे उत्पन्न हुवा है। द
वह पुरुष अपने पूर्व अहंकार की निन्दा करे तो अवश्य कर्
होकर मुक्ति मे जावेगा । यह खूब याद रखना चाहिये कि श
पर रागद्वेष रखने से मुक्ति नहीं होती, किन्तु आत्मा की
भावना से होती है ।

जातिलिङ्गविकल्पेन येषां च समयाग्रहः ।
तेऽपि न आप्नुवन्त्येव परमं पदमात्मनः ॥ ८९ ॥

बालजीवों को फिर भी मन मे ऊंचनीच जाति के वि
ल्पों से यदि अहंकार दीनता आवे तो इनको यह हितशिक्षा
कि आप लोग मैं ऊंच जाति हूं मैं साधु वेषधारी हूं ऐसीकल्प
मत लाओ और न इसके भरोसे बैठे रहो क्योंकिकेवल इस से
मुक्ति न होगी । ऐसा विचार छोड कर यह मानना चाहिये
मैं आत्मा हूं, मैं अनन्त ज्ञानी हू, मैं पुद्गल से भिन्न हूं, श
जड़ से न्यारा हूं यदि मैं कर्म तोडने का अभ्यास करूंगा तो श
बन्धन से छूटूंगा । ऐसी भावना से ऊंचनीच का किंवा साधु
धारी किंवा गृहस्थवेषधारी भी कर्म तोड़के परमात्मा होग
किन्तु जो ऐसा आग्रह रक्खें कि नीच जाति की मुक्ति नहीं

कती किंवा विना साधुवेष मुक्ति नहीं मिल सकती, ऐसे सिद्धा-
त पर चलने वाले की मुक्ति नहीं हो सकती इसलिये जाति
लंग का ऐसा कदाग्रह मुमुक्षुओं को छोड़ना चाहिये।

यत्त्यागाय निवर्तन्ते भोगेभ्यो यदवाप्तये।
प्रीति तत्रैव कुर्वन्ति द्वेषमन्यत्र मोहिनः ॥ ९० ॥

जो बेचारे भोले लोग जाति लिंग का कदाग्रह न छोड़ेंगे
उनके दिल मे साधुवेष और ऊंच जातिपर प्रीति होगी और अन्य
वेष व नीच जाति पर द्वेष होगा इस लिये इन लोगों को संसार
के भोग छोड़ने पर भी मोह होने से मुक्ति होनी दुर्लभ होगी।
इस लिये मुमुक्षुओं को आत्मदृष्टि पर विशेष भाव रखकर समता
धारण करनी चाहिये और समता में ही उनकी मुक्ति होगी।
साधुवेष यद्यपि पूजनीय है तो भी आत्मानन्दियों को पूज्यता
को लक्ष मे रखने से मुक्ति न होगी किन्तु आत्मस्थिरता से
ही मुक्ति होगी यह विचारना चाहिये।

अनन्तरज्ञः सन्धत्ते दृष्टिं पङ्गोर्यथान्धके।
संयोगाद् दृष्टिमङ्गेऽपि सन्धत्ते तद्वदात्मनः ॥ ९१ ॥

आत्मस्थिरता होने पर भी शंका होगी कि शरीर को ही
मूर्ख लोग क्यों आत्मा मानते हैं इसलिये उनको यह हित
शिक्षा है कि जिस प्रकार अन्धा और लङ्गड़ा मिल कर चलते हैं
तो मंदबुद्धि दूरसे यह कहेगा कि अंधे के चक्षु हैं अर्थात् देखता
हुवा मनुष्य चला आता है किन्तु पास जाने से अथवा विचार
करने से वह भ्रम दूर हो जावेगा। इसी तरह से शरीर और
आत्मा का कर्म सम्बन्ध से संयोग होने से सृष्टिव्यवहार भी चलता
है और शरीर मे चलने हिलने बोलने की चेतन शक्ति भी देखने
में आती है जिससे बालबुद्धि अविवेकी जन शरीर को ही
आत्मा मानते हैं और इसके भरोसे रहकर रागद्वेष से नये कर्म में

वन्ध कर जन्म पाते हैं। इसलिये मुमुक्षुओं को ऐसा भ्रम दूर अपने आत्मा को भिन्न मानकर आत्मानन्दी होने पर खास ध देना चाहिये जिससे स्वप्न में भी ऐसा भ्रम न होवे।

दृग्भेदो यथा दृष्टिं पङ्गोरन्धे न योजयेत्।
तथा न योजयेद्देहे दृष्टात्मा दृष्टिमात्मनः॥ ९२॥

ज्ञानी गुरु जी कहते हैं कि आप इसी प्रकार आत्म समझो जैसे लंगडे की दृष्टि अन्धे में नहीं हो सकती, किन्तु अ न्धे में मूर्खों को यही भ्रम होता है। विचारवान् तो कभी अंधे को लंगडे की दृष्टि आरोपण नहीं करेंगे और न भ्रम में किन्तु विचार से निर्णय कर लेंगे। इसी तरह से आप लोग में न पडो किन्तु आत्मा को शरीर से भिन्न मान कर आत्मभा में दृढ रहो।

सुप्तोन्मत्ताद्यवस्थैव विभ्रमोऽनात्मदर्शिनाम्।
विभ्रमोऽक्षीणदोषस्य सर्वावस्थात्मदर्शिनः॥ ९३॥

बालबुद्धिजनों को सोने किंवा नशे की अवस्था में अब को ही विभ्रम वाली अवस्था दीखतीहै, किन्तु आत्मज्ञानि संसारी जीवों की सब अवस्था भ्रम रूप ही दीखती हैं। मैं की चेष्टाओं में भूल से भी न फसूंगा।

विदिताशेषशास्त्रोऽपि न जाग्रदपि मुच्यते।
देहात्मदृष्टिर्ज्ञातात्मा सुप्तोन्मत्तोऽपि मुच्यते॥ ९४

सब शास्त्रों का ज्ञाता जागृत होने पर भी देह से को भिन्न न मानेगा तो मुक्ति नहीं पा सकता, किन्तु आत्म देह से भिन्न मानने वाला पुरुष यदि सोता हो किंवा प्रमाद तो भी आत्मज्ञान आजाने पर वह पुरुष कर्म से मुक्त होकर में जावेगा इस लिये भव्य जीवों को हमेशा काया से आत्म भिन्न मानना चाहिये।

यत्रैवाहितधीः पुंसः श्रद्धा तत्रैव जायते ।
यत्रैव जायते श्रद्धा चित्त तत्रैव लीयते ॥ ९५ ॥

भव्यात्माओ को यह हितशिक्षा है कि आप खूब याद रक्खे कि [illegible]सकी जहां बुद्धि है, वहीं उसकी श्रद्धा होगी और चित्त लीन [illegible]गा। इस से यह समझो कि यदि आप की बुद्धि शरीर मे रहेगी [illegible]ो आपकी श्रद्धा शरीर मे ही रहेगी और चित्त भी शरीर में ही [illegible]ीन होगा । अन्तिम भावना के ज़ोर से गति भी शरीर के साथ [illegible]हेगी किन्तु मुक्ति नहीं मिलेगी । जो आत्मा मे बुद्धि रक्खेगा तो [illegible]मी मे श्रद्धा रहेगी और चित्त भी आत्मा मे ही लीन रहेगा तो [illegible]न्त मे आत्मा शरीर से मुक्त हो जायगी इस लिये आत्मा में [illegible]ी बुद्धि, श्रद्धा और चित्त रखना चाहिये ।

यत्रैवाऽहितधीः पुंसः श्रद्धा तस्मान्निवर्तते ।
यस्मान्निवर्तते श्रद्धा कुतश्चित्तस्य तल्लयः ॥ ९६ ॥

जिसकी जहा बुद्धि नहीं है वहा उसकी श्रद्धा नहीं होती [illegible]ौर जहां श्रद्धा नही है वहां चित्त लय नही होता । इस लिये [illegible]व्यात्माओंको अपनी बुद्धि शरीरसे हटाकर आत्मामे लगानी चाहिये।

भिन्नात्मानमुपास्यात्मा परो भवति तादृशः ।
वर्तिर्दीपं यथोपास्य भिन्ना भवति तादृशी ॥ ९७॥

किसी पुरुष को आत्मसाधना न हो [illegible] [illegible]होता हो अथवा बालबुद्धि हैं उन को आत्मस्वरूप [illegible] [illegible]होता इस लिये भ्रम होता है, ऐसे प्राणी को यह दृष्टान्त [illegible] है कि आप लोग अपने घर में दीपक जलाते [illegible] [illegible]दीवेट ( बत्ती ) को जलती हुई [illegible] इसी तरह आप लोग यदि अपनी आत्मा [illegible] परमात्मा के निर्मल स्वरूप का ध्यान [illegible] का निर्मल स्वरूप [illegible] हो सकेंगे, किन्तु परमात्मा [illegible] चाहिये ।

उपास्यात्मानमेवात्मा जायते परमोऽथवा ।
मथित्वाऽत्मानमात्मैव जायतेऽग्निर्यथा तरुः ॥ ९८ ॥

जिनकी बुद्धि आत्मा में स्थिर होगई है उनको यह दृष्टान्त है जैसे वृक्ष की डालों ( शाखों ) में आपस में घिसने से अग्नि प्रकट हो जाती है इसी प्रकार आत्मा आत्मा के साथ आलम्बन करने से शरीर से भिन्न परमात्मा हो जावेगी । इस लिये परमात्मा के आलम्बन से धीमे२ अपने आत्मा के शुद्धस्वरूप को ध्यान में लाकर काया का मोह छोड़ना चाहिये ।

इतीदं भावयेन्नित्यमवाचागोचरं पदम् ।
स्वत एव तदाप्नोति यतो नावर्तते पुनः ॥ ९९ ॥

स्थिर आत्माओं को फिर भी हितशिक्षा देते हैं कि बाह्य निमित्त छोड़ के आत्मा में ऐसी स्थिरता करो कि जिस का वर्णन वाणी से न होसके । मोक्षपद का ऐसा ध्यान करो कि वहां से फिर लौटना न होवे ऐसा अचल स्थिरपद मिले ।

अयत्नसाध्यं निर्वाणं चित्तत्वं भूतजं यदि ।
अन्यथा योगतस्तस्मान्न दुःख योगिनां क्वचित् ॥ १०० ॥

जो ज्ञानस्वरूप आत्मा को भिन्न नहीं मानते उन नास्तिकों को यह सूचना है कि जो आत्मा जड़ से भिन्न न होवे तो योगियों को शरीर वेदना सुख दुःख का अनुभव ही न होना चाहिये किन्तु ऐसा होता है यह सब जानते ही हैं । जिस से आत्मा भिन्न है यह निश्चय हो जाता है और जो मतान्तरी ( अन्यमत वाले ) आत्मा को निर्मल ही मानते हैं, उन योगियों को विना प्रयत्न के ही मोक्ष मिलेगा ।

स्वप्ने दृष्टे विनष्टेऽपि न नाशोऽस्ति यथात्मनः ।
तथा जागरदृष्टेऽपि विपर्यासाविशेषतः ॥ १०१ ॥

क्या किसी ने कभी अपनी आत्मा को स्वप्न में नष्ट हुआ देखा ? तो जैसे आत्मा को नष्ट नहीं मानते इसी तरह स्थूल शरीर

यारा होने पर भी आत्मा का नाश नहीं होता क्योंकि शरीर आत्मा से भिन्न है। दोनों में विपर्यास समान है।

अदुःखभावितज्ञानं क्षीयते दुःखसंनिधौ।
तस्माद्यथावलं दुःखैरात्मानं भावयेन्मुनिः॥ १०२॥

जिस पुरुष को दुःख सहन करने की आदत नही है उस की उत्तम भावना दुःख पड़ने पर नष्ट हो जायगी। इस लिये आत्मध्यानियों को दुःख सहन करने की धीरे २ आदत डालनी चाहिये जिस से उपसर्ग परिषह के विघ्न आवें तो भी आत्मध्यान न छूटे और अकार्य्य करने की आवश्यकता न पड़े।

प्रयत्नादात्मनोवायुरिच्छाद्वेषप्रवर्त्तितात्।
वायोः शरीरयन्त्राणि वर्तन्ते स्वेषु कर्मसु॥ १०३॥

आत्मा में इच्छा होती है तो रागद्वेष को आत्मा का [illegible] प्रकट करता है और वायु से अपने अपने कार्यों में शरीर [illegible] हैं (कर्मसम्बन्ध जहां तक है वहां तक वायु का भी [illegible] है वह वायु प्राणवायु कहलाता है)

तान्यात्मनि समारोप्य साक्षाण्यास्ते सुखं जडः।
त्यक्त्वारोपं पुनर्विद्वान्प्राप्नोति परमं पदम्॥ १०४॥

जड़ पुरुष देह शरीर य [illegible] इन्द्रियों के सापेक्षिता [illegible] में सुख मानता है और अनुकूलता से आनन्द प्रदर्शित [illegible], किंतु विद्वान् उन सबों को भिन्न मान कर रागद्वेष [illegible] को प्राप्त करता है।

मुक्त्वापरत्र परबुद्धिमहंधियं च संसारदुःखजननीं
जननाद्विमुक्तः। ज्योतिर्मयं सुखमुपैति परात्म-
निष्ठस्तन्मार्गमेतदधिगम्य समाधितन्त्रम्॥ १०५

पर में [illegible] की [illegible]
जन्म [illegible] परमात्मा [illegible]
[illegible]

संस्कृत टीकाकार के प्रथम अन्तिम श्लोकः–

सिद्धं जिनेंद्रमलमप्रतिमप्रबोधं निर्वा...
संसारसागरसमुत्तरणप्रपोतं वक्ष्ये समाधिशतकं प्र...
येनात्माबहिरन्तरुत्तमभिदात्रेधाविवृत्त्योदितो मो...
यामलवपुःसद्ध्यानतःकान्तितः॥जीयात्सोऽत्रजिनःसम...
श्रीपादपूज्योऽमलो, भव्यानंदकरःसमाधिशतकृच्छ्री ...

शांतिनाथप्रभोः स्तुतिः।

कर्मघ्नं गुणवर्धकं जिनपतिं शांतिप्रभुं सेव्यतां
येनात्र स्वतनुं विहन्य विहिता रक्षा कपोतस्य भो
लब्ध्वा चक्रिपदं तथा जिनपदं शांतिर्गतो यच्छिव
सदत्तेऽत्र परत्र तत्सुखभरं नूनं यथा श्रीपतिः [१]
ये रागादिजया जिनागतमला स्तीर्णास्तथातारका
स्तीर्थयैः प्रकटीकृतं तनुभृतां दुःखौघनाशं यतः
ज्ञात्वा शुद्धनिजस्वरूपमचिरान्मुक्तिंश्रिता साधव
स्ते कुर्वंतु सदाशिवं जनपदे देवेंद्रपूज्यांघ्रयः [ २ ]
तत्त्वानां खलुबोधकं जिनपतेर्वक्त्रोद्भवशासकं
मोहारि मलयं सुखस्य निलयं सेव्यं सदा चारदं
रोगे रोगहरं भये भयहरं क्षांत्यादि धर्मात्कर
कः सेवेतन भव्य दुःखहरणं ज्ञानं श्रुतंमुक्तये [३]
गेऽनेघः सुखदोजिनेधृतरुचौ भव्ये पुरा पुण्यतो
निर्वाणी शिवदायिनी भयहरी तीर्थेशचरणेनता
स्तुत्या तीर्थपतेः सदैवभविनां कल्याणराशिर्भवेत्
माणिक्यादिसुरत्नमेव लभते भक्तो न किं श्रीपतेः ४
अनवरपुरे वीरसंवत् २४४१वर्षे चैत्रमासे कृष्णपक्षे
गुरुवासरेद्वादशीतिथौमाणिक्यमुनिनापन्यासहर्ष
मुनिनः...दात् विनिर्मिता षोडशजिनपतेः स्तुतिं
सर्वसंपद्दायिनी वक्तृश्रोतृणां च भवतु [ ५ ]

मूल टीकाकार के प्रथम अन्तिम श्लोकः—

सिद्धं जिनेंद्रमलमप्रतिमप्रबोधं निर्वाणमार्गममलं विबुधेन्द्र
ससारसागरसमुत्तरणप्रपोतं वक्ष्ये सामायिकशतकं प्रणिपत्य भक्त्या
येनात्माबहिरन्तरुत्तमभिदा त्रेधा विवृत्योदितो मोक्षानन्त
यामलवपु सद्ध्यानतः कीर्तितः जीयात्सोऽत्र जिनः समस्त वि
श्रीपादपूज्योऽमला, भव्यानंदकरः समाधिशतकं श्रीमत्प्रभेंदुप्रभु

शान्तिनाथप्रभो स्तुति ।

कर्मघ्नं गुणवर्धकं जिनपतिं शांतिप्रभु सेव्यतां
येनात्र स्वतनुं विहाय विहिता रक्षा कपोतस्य भो
लब्ध्वा चक्रिपद तथा जिनपद शांतिर्गतो यच्छिव
मद्तेऽत्र परत्र तत्सुखभरं नूनं यथा श्रीपतिः [१]
ये रागादिजयाजिनागतमला स्तीर्णास्तथातारका
स्तीर्थं यै प्रकटीकृत तनुभृतां दुःखौघनाशं यतः
ज्ञात्वा शुद्धनिजस्वरूपमचिरात् मुक्तिश्रिता साधव
स्ते कुर्वंतु सदाशिव जनपदे देवेंद्रपूज्यांघ्रयः [ २ ]
तत्त्वानां खलु बोधकं जिनपतेर्वक्त्रोद्भव शासकं
मोहारि प्रलय सुखप्रद निलय सेव्यं सदा चारदं
रोगे रोगहर भये भयहरं क्षांत्यादि धर्मात्करं
क सेवेत न भव्य दुःखहरणं ज्ञानं श्रुतंमुक्तये [३]
गोमेध सुरदेवी जिनेश्वरचौ भव्ये पुरा पुण्यतो
निर्वाणा शिवदायिनी भयहरी तीर्थेशचरणेनता
स्तुत्या तीर्थपते सदैव भविनां कल्याणराशिर्भवेत्
सौभाग्यादिमुत्तमेव लभते भक्त्या न किं श्रीपतेः
जनवरपुरे वीरसंवत् २४४२वर्षे चैत्रमासे कृष्णपक्षे
शुभ्रवासरेद्वादशीतिथौ माणिक्यमुनिनापन्यासहर्ष
मुनिप्रसादात् विनिर्मिता षोडशजिनपतेः स्तुतिं
सर्वसंपद्दायिनी वक्तृश्रोतृणां च भवतु [ ५ ]

## मदद करने वालों के नाम।

१५) बा० किशनलाल गोठी इंदौरवाले हेडक्लार्क
एजन्सीसरजन्स औफिस
१३) बा० ऋषभदास जैनी वकील
५) बा० उमरावसिंह वकील मेरठ
५) ला० उमरावसिंह लालचन्द खिवाई वाले
३) ला० सुमेरचन्द मुरारीलाल विनोली वाले
२) बा० दयाचन्द जी ओवरसियर
१।) ला० श्रीचंदजी विनौलीवाले
।।।) चुन्नालाल जी अनवरपुर वाले

## मिलने के पते:--

आत्मलब्धि पबलिक जैन लाइब्रेरी मेरठ (तहसील के नि
आत्मानन्द जैन लाइब्रेरी, छोटा दरीबा, देहली।
आत्मानन्द पुस्तकप्रचारकमण्डल, देहली और आगरा।
नत्थूराम जैनी जीरा (पंजाब)
सरस्वती पबलिक लाइब्रेरी, हापुड़ (मेरठ)
जैनमित्र मण्डलसभा माण्डल जिला अहमदाबाद।
[ यहां ग्रन्थकर्ता के दूसरे ग्रन्थ भी मिलसकते हैं ]
भीमसिंहमाणिकजैन बुकसेलर, मांडवीशाकगली नं०३

अथ श्रीस्वामिचरणदासजीकृत-

# ज्ञानस्वरोदय-भाषा.

दोहा--नमो नमो शुकदेवजी, परणाम करौं अनन्त ॥
तुम प्रसाद स्वरभेदको, चरणदास वर्णन्त ॥
पुरुषोत्तम परमातमा, पूरण विस्वा वीश ॥
आदिपुरुषअविचलतुहीं, तोहिं नवाऊं शीश ॥
कुंडलिया--क्षर ॐ सो कहत हैं, अक्षर सोहं जान ॥
निर्अक्षर श्वासा रहत, ताहीको मन आन ॥
ताहीको मन आन, रातदिन सुरतिलगावो ॥
आपा आप विचारि, और ना शीश नवावो ॥
चरणदास मथि कहत हैं, अगमनिगमकी सीख ॥
यही वचन ब्रह्मज्ञानका, मानो विस्वा वीस ॥
ॐ सो काया भई, सोहं सो मन होय ॥
निर्अक्षर श्वासा भई, चरणदास भल जोय ॥

चरणदास भल जोय. खैंचि मनवां तहँ राखो ॥
क्षर अक्षर निअंक्षर. एकै दुबिधा नाखो ॥
जब दरशे यक एकही. शेष यह सभी तिहारो ॥
डार पात फल फूल. मूल सो सभी निहारो ॥
श्वासा मों सोहं भयो. सोहं मों ॐकार ॥
ॐ मो र भयो. साधो करो विचार ॥
साधो करो विचार. उलटि घर अपने आवो॥
घट घट ब्रह्म अनूप. ममिटिकरितहां समावो॥
चारि वेदका भेद है. गीताका है जीव ॥
चरणदास लखि आपको. तो मैं तेरा पीव ॥

दोहा--सब योगनको योग है. सब ज्ञाननको ज्ञान ॥
सर्व सिद्धिको सिद्धि है. तत्त्व स्वरनको ध्यान ॥
ब्रह्मज्ञानको जाप है. अजपा सोहं साध ॥
परमहंस कोइ जानि है. ताको मतो अगाध ॥
भेद स्वरोदय सो लहै. समझे श्वास उसाँस ॥
इंगी भर्ली तामें लखे. पवन सुरति मन गाँस ॥
शुकदेव गुरू कृपाकरी. दियो स्वरोदय ज्ञान ॥
जब मों यह जानी परी, लाभ होय कै हान ॥
इड़ा पिंगला सुषमना, नाडी तीन विचार ॥
दहिने बायें स्वर चलें, लखे धारणा धार ॥
पिंगल दहिने अंग है, इड़ा सो बायें होय ॥
सुषमन इनके बीच है, जब स्वर चालें दोय ॥
जब स्वर चालें पिंगला, तेहि मधि सूरज वास ॥

इड़ा सो बायें अंग है, चन्द्र करत परकास ॥
उदय अस्त तिनकी लखै, निर्गम दुर्गम विद्धि ॥
अरु पावै तत वरणको, जब वह होवै सिद्धि ॥
शुकदेवकहिचरणदाससों, थिरचरस्वरपहिंचान ॥
थिर कारजको चन्द्रमा, चर कारजको भान ॥
कृष्ण पक्ष जबहीं लगै, जाय मिलत है भान ॥
शुक्ल पक्ष है चन्द्रको, यह निश्चय करिजान ॥
मंगल अरु इतवार दिन, और शनीचर लीन ॥
शुभकारजको मिलत हैं, सूरजके दिन तीन ॥
सोमवार शुक्कर भलो, दिनबृहस्पतिको देखि ॥
चंदयोगमें सुफल हैं, चरणदास बीशेखि ॥
तिथिअरुवारविचारकरि, दहिनो बाओं अंग ॥
चरणदास स्वरजो मिलै, शुभ कारज परसंग ॥
कृष्ण पक्षके आदिहि, तीनि तिथीतक भान ॥
फिरिचंदा फिरिभान है, फिरिचंदा फिरिभान ॥
शुक्ल पक्षके आदिही, तीनि तिथी लग चन्द ॥
फिरिसूरज फिरिचन्दहै, फिरिसूरजफिरिचन्द ॥
सूरजकी तिथिमें चलै, जो सूरज परकास ॥
सुख देहीको करत है, लाभालाभ हुलास ॥
शुक्ल पक्ष चन्दा चलै, परिवा लेहि निकार ॥
फल आनँद मंगल करै, देहीको सुखसार ॥
शुक्लपक्ष तिथि में चलै, जो परिवाको भान ॥
होय क्लेश पीड़ा कछू, कै दुख कै कछु हान ॥
शुक्लपक्ष तिथिमें चलै, जो परिवाको चन्द ॥

कलह करै पीड़ा करै, हानि तापके द्वन्द ॥
ऊपर बायें सामने, स्वर बायेंके संग ॥
जो पूंछे शशि योगमें, तो नीको परसंग ॥
नीचे पाछे दाहिने, स्वर सूरजको राज ॥
जो कोइ पूंछे आनकरि, तो समझो शुभकाज ॥
दहिनोस्वरजबचलत है, पूंछै बायें अंग ॥
शुक्लपक्ष नहिं बार ह, तो निर्फल परसंग ॥
जो कोइ पूंछै आयकरि, बैठि दाहिनी ओर ॥
चन्द चलै सूरज नहीं, नहिं कारज वृथिकोर ॥
जो सूरजमें स्वर चलै, कहै दाहिने आय ॥
लग्नवार अरु तिथि मिलै, सुहुकारज होइ जाय ॥
जो चन्द्रामें स्वर चलै, बायें पूछै काज ॥
तिथिअरुअक्षरवार मिलि, शुभकारजको साज ॥
सात पांच नव तीनगिन, पन्द्रह अरु पच्चीश ॥
काज वचन अक्षर गिनै, भानु योगको ईश ॥
चार आठ द्वादश गिनै, चौदह सोलह मीत ॥
चन्दयोग के संग हैं, चरणदास रणजीत ॥
कर्क मेष तुला मकर, चारों चरती राश ॥
सूरज सों चारों मिलत, चरकारज परकाश ॥
मीन मिथुन कन्या कही, चौथी अरु धन सीत ॥
किन्तुभानकी सुषमना, मुरलीसुत रणजीत ॥
वृश्चिक हरिवृष कुम्भपुनि, बायें स्वरके संग ॥
चन्द्रयोगको मिलत हैं, थिरकारज परसंग ॥
चितचपलो असथिर करै, नासा आगे नैन ॥

श्वासा देखै दृष्टि सों, जब पावै स्वर बैन ॥
पांचघडी पांचौ चलैं, फिरि वा बारहि वार ॥
पांच तत्त्व चालै मिलै, स्वरबिच लेह निहार ॥
धरती अरु आकाश है, और तीसरी पौन ॥
पानी पावक पांचवों, करत श्वासमें गौन ॥
धरती तौ सोहीं चल, अरु पीरो रँग देख ॥
बारह अंगुल श्वाससें, सुरत निरतकर पेख ॥
ऊपरको पावक चलै, लाल वरण है भेप ॥
चारि सु अंगुल श्वाससें, चरणदास औ रेप ॥
नीचे को पानी चलै, श्वेत रंग है तासु ॥
सोलह अंगुल श्वाससें, चरणदास कहै भासु ॥
हरो रंग है वायुको, तिरछी चालै सोय ॥
आठहु अंगुल श्वाससें, रणजीत सीनकारि जोय ॥
स्वर दोनों पूरण चलैं, बाहर ना परकाश ॥
श्याम रंग है तासुको, सोई तत्त्व अकाश ॥
जल पृथ्वीके योगसें, जो कोइ पूँछै बात ॥
शशिपरसें जो स्वर चलै, कहु कारज ह्वैजात ॥
पावक अरु आकाशपुनि, वायु कभी जो होय ॥
जो कोइ पूंछे आयकरि शुभकारज नहिं होय ॥
जल पृथ्वी थिर काजको, चरकारजको नाहिं ॥
अग्नि वायु चरकाजको, दहिने स्वरके माहिं ॥
रोगीको पूंछे कोउ, बैठि चन्दकी ओर ॥
धरती बायें स्वर चलै, रोग नहीं तिहि ठौर ॥
रोगीको परसंग जो, बाये पूंछे आन ॥

चंद चंद सूरज चलै जौ ना वह जान ॥
बहते स्वरमें आयकरि पूछै बहते श्वास ॥
यह निश्चय करि जानिये रोगीको नहिं नास ॥
शून्य ओर सों आय कै पूछै बहते पक्ष ॥
जेते कारज जगतके, सुफल होयँ यों सच्च ॥
बहते स्वरसों आयकरि शून्य ओर जो जाय ॥
जो पूंछै परसंग वह, रोगी ना ठहराय ॥
बहते स्वरसे आयकरि, जो पूछै सुन और ॥
जेते कारज जगतके, उलटे हों विधि कोर ॥
कै बायें कै दाहिने, जो कोइ पूरण होय ॥
पूंछै पूरण होरही, कारज पूरण सोय ॥
बरस एक को फल कहै, तत मत जानै सोय ॥
काल समौ सोई लखै, बुरो भलो जग होय ॥

संक्रायत पुनि मेष विचारै। तादिन लगै सु घड़ी निहारै॥
तबहीं स्वरमें करै विचारा। चलै कौन सो तत्त्व नियारा॥
जो बायें स्वर पिरथी होई। नीको तत्त्व कहावै सोई ॥
देश वृद्धि अरु समै बतावै। परजा सुखी मेह बरसावै ॥
चारा बहुत ठौरको उपजै। नरदेहीको अन्न बहु निपजै ॥
जल चालै बायें स्वर माहीं। धरती फलै मेह बरसाहीं ॥
आनँद मंगल सों जग रहै। आपतत्त्व चन्दामें बहै ॥
जल धरती दोनों शुभ भाई। चरणदास शुकदेव बताई ॥
तीन तत्त्वका कहौं विचारा। स्वरमें जाको भेद निहारा ॥
लगै मेष संक्रायत तबहीं। लगती घडी विचारै जबहीं ॥
अग्नितत्त्व स्वरमें जब चालै। रोग दोषमें परजा हालै ॥

काल पड़ै थोड़ोसो बरसै । देश भंग जो पावक दरसै ॥
वायु तत्त्व चालै स्वर संगा । जग भयमान होय कछु दंगा॥
वायु तत्त्व चालै स्वर दोई । मेहन बरसै अन्न न होई ॥
काल पड़ै तृण उपजै नाहीं । तत अकाश जोहो स्वरमाहीं॥

दोहा—चैत महीना मध्यमें, जबहीं परिवा होय ॥
शुक्लपक्ष तादिन लगै, प्रात श्वासमें जोय ॥
सोरहि परिवाको लखै, पृथ्वी होय सुथान ॥
होय समौ परजासुखी, राजा सुखी निदान ॥
नीर चलै जो चन्द्रमें, यही समैकी जीत ॥
घन बरसैं परजा सुखी, संवत नीको सीत ॥
पृथ्वी पानी समौ जो, बहै चन्द अस्थान ॥
दहिने स्वरमें जो बहै, समौ सुमध्यम जान ॥
सोरहि जो सुषमन चलै, राज होय उतपात ॥
देखनवारो विनश है, और काल पड़िजात ॥
राज होय उत्पात पुनि, पड़ै काल विसवास ॥
मेह नहीं परजा दुखी, जो हो तत्त्व अकास ॥
श्वासामें पावक चलै, परै काल जब जान ॥
रोग होय परजा दुखी, घटै राजको मान ॥
भय कलेश हो देशमें, विग्रह फैलै अत्त ॥
परै काल परजा दुखी, चलै वायुको तत्त ॥
संक्रायत अरु चैतको, दीन्हों भेद लखाय ॥
जगतकाज अब कहतहूं, चन्द सूरको न्याय ॥

व्याहदान तीरथ जो करै । वस्तर भूषण घर पद धरै ॥
बायें स्वर में ये सब कीजै । पोथीपुस्तक जो लिखिलीजै॥

योगाभ्यासरु कीजै प्रीत । औषधि बाड़ी कीजै मीत ॥
दीक्षा मंतर बोवै नाज । चन्द्र योग थिर बैठे राज ॥
चन्द्र योगसे अस्थिर जानो । थिरकारज सबही पहिंचानौ ॥
करै हवेली छप्पर छावै । बाग बगीचा गुफा बनावै ॥
हाकिम जाय कोटमें बरै । चन्द्र योग आसन पग धरै ॥
चरणदास शुकदेव बतावै । चन्द्र योग थिरकाज कहावै ॥

दोहा—बायें स्वरके काज ये, सो मैं दिये बताय ॥
दहिने स्वरके कहतहौं, ज्ञानस्वरोदय गाय ॥

जो खांड़ो कर लीयो चाहै । जाकर बैरी ऊपर बाहै ॥
युद्ध वाद रण जीतै सोई । दहिने स्वरमें चालै कोई ॥
भोजन करै करै असनाना । मैथुन कर्म ध्यान परधाना ॥
बही लिखै कीजै व्योहारा । गज घोड़ा वाहन हथियारा ॥
विद्या पढ़ै नई जो साधै । मंतर सिद्धि ध्यान आराधै ॥
वैरीभवन गवन जो कीजै । अरु काहूको ऋण जो दीजै ॥
ऋण काहूपै जो तू मांगै । विष अरु भूत उतारन लागै ॥
चरणदास गुकदेव बिचारी । ये चर कर्म भानुकी नारी ॥

दोहा—चरकारजको भानु है, थिर कारजको चंद ॥
सुषमनचलतनचालिये, तहां होय कुछ दंद ॥
गावँ परगने खेत पुनि, ईधर ऊधर मीत ॥
सुषमनचलतनचालिये, बरजत है रणजीत ॥
क्षण बायें क्षण दाहिने, सोई सुषमन जानि ॥
ढील लगै कै ना मिलै, कै कारजकी हानि ॥
होय क्लेश पीड़ा कछू, जो कोई कहिं जाय ॥
सुषमनचलतनचालिये, दीन्हों तोहिं बताय ॥

योग करौ सुषमन चलै, कै आतमको ज्ञान ॥
और काज कोई करै, तौ कुछ आवै हान ॥
पूरब उत्तर मत चलै, बायें स्वर परकाश ॥
हानि होय बहुरै नहीं, आवनकी नहिं आश ॥
दहिने चलत न चालिये, दक्षिण पश्चिम जानि ॥
जोर जाय बहुरै नहीं, तहां होय कछु हानि ॥
दहिने स्वरमें जाइये, पूरब उत्तर राज ॥
सुख संपति आनँद करै, सभी होय सुखकाज ॥
बायें स्वरमें जाइये, दक्षिण पश्चिम देश ॥
सुख आनँद मंगल करै, जोर जाइ परदेश ॥
दहिने सेती आय करि, दहिने पूँछे धाय ॥
जो दहिनो स्वरबंध है, कारज अफल बताय॥
दहिने सेती आय करि, बायें पूँछे कोय ॥
जो बावों स्वर बंध है, सुफल काज नहिं होय॥
जब स्वर भीतरको चलै, कारज पूँछे कोय ॥
पैज बांधि वासों कहौ, मनसा पूरण होय ॥
जब स्वर बाहरको चलै, तब कोइ पूँछै तोर ॥
वाको ऐसे भाषिये, विधि नहिं काज करोर॥
बाईं करवँट सोइये, जल बाये स्वर पीव ॥
दहिने स्वर भोजन करै, तौ सुख पावै जीव ॥
बायें स्वर भोजन करै, दहिने पीवै नीर ॥
दश दिन भूलो यो करै, आवै रोग शरीर ॥
दहिने स्वर झाड़े फिरै, बायें लघुशंकाय ॥
युक्ती ऐसी साधिये, दीन्हो भेद बताय ॥

चन्द्र चलावै द्योमको, रैनि चलावै सूर ॥
नित साधन ऐसे करै, होय उमर भरपूर ॥
जितनोहीं श्वासों चलै, सोई दहिनो होय ॥
दशश्वासा सुषमन चलै, ताहि विचारो लोय ॥
आठ पहर दहिनो चलै, बदलै नहीं जु पौन ॥
तीन बरस काया रहै, जीव करै फिरिगौन ॥
सोलह पहर चलै जभी, श्वास पिंगला माहिं ॥
युगल बरस काया रहै, पीछे रहनो नाहिं ॥
तीन रात अरु तीन दिन, चलै दाहिनो श्वास ॥
संवत भर काया रहै, पाछे होवै नास ॥
सोलहदिननिशिदिनचलै, श्वास भानुकी ओर ॥
आयु जान इकमासकी, जीव जाय तन छोर ॥
नौ भृकुटी सतैं श्रवण, पांच तारका जान ॥
तीन नाक जिह्वा इकै, काल भेद पहिंचान ॥
भेद गुरू सों पाइये, गुरु विन लहै न ज्ञान ॥
चरणदास यों कहत है, गुरुपर वारौं प्रान ॥
एक मास जो रैनि दिन, भानु दाहिनो होय ॥
चरणदास यों कहत है, नर जीवै दिन दोय ॥
नाड़ी जो सुषमन चलै, पांच घड़ी ठहराय ॥
पांच घड़ी सुषमन वहै, तबहीं नर मरिजाय ॥
नहीं चन्द्र नहिं सूर है, नहीं सुषुम्ना बाल ॥
मुख मेती श्वासा चलै, घड़ी चारमें काल ॥
चारि दिनाके आठ दिन, बारह के दिन वीश ॥
ऐसे जो चंदा चलै, आंव जान वड़ ईश ॥

तीन रात अरु तीन दिन, चालै तत्त्व अकाश ॥
एक बरस काया रहै, फेर काल विसवाश ॥
दिनको तौ चन्द्रा चलै, चलै रातको सूर ॥
यह निश्चय करि जानिये, प्राण गमन बहुदूर ॥
रात चलै स्वर चन्दसें, दिनको सूरज बाल ॥
एक महीना यों चलै, छठे महीने काल ॥
जब साधू ऐसी लखै, छठे महीने काल ॥
आगेही साधन करै, बैठि गुफा तत्काल ॥
ऊपर खैंचि अपानको, प्राण अपान मिलाय ॥
उत्तम करै समाधिको, ताको काल न खाय ॥
पवन पियै ज्वाला पचै, नाभितले करि राह ॥
मेरुडंडको फोरिकै, बसै अमरपुर जाइ ॥
जहाँ काल पहुँचै नहीं, यमकी होय न त्रास ॥
नभमण्डलको जायकरि, करै उनमनी वास ॥
जहां काल नहिं ज्वालहै, छुटै सकल सन्ताप ॥
होय उनमनी लीन मन, बिसरै आपा आप ॥
तीनों बन्ध लगायकै, पञ्चवायुको साध ॥
सुषमन मारग ह्वै चलै, देखै खेल अगाध ॥
शक्ति जाय शिवमें मिलै, जहां होय मन लीन ॥
महा खेचरी जो लगै, जानै ज्ञान प्रवीन ॥
आसन पदम लगायकरि, मूलबन्धको बाँधि ॥
मेरुडण्ड सीधो करै, सुरतिगगनको साधि ॥
चन्द सूर दोउ सम करै, ठोढ़ी हिये लगाय ॥
षट चक्करको वेधिकरि, शून्य शिखरको जाय ॥

इड़ा पिंगला साधिकरि, सुषमनमें करिवास ॥
परम ज्योति झिलमिल तहां, पूजै मनविश्वास ॥
जिन साधन आगे करी, तासों सब कुछ होय ॥
जब चाहै तबहीं तभी, काल बचावै सोय ॥
तरुण अवस्था योगकरि, बैठि रहै मन जीत ॥
काल बचावै साध वह, अन[illegible] रणजीत ॥
सदा आपमें लीन रहु, करिके योगाभ्यास ॥
आवत देखे काल जब, नभमण्डलकर वास ॥
शनै शनै सो साधिकरि, राखै प्राण चढ़ाय ॥
पूरो योगी जानिये, ताको काल न खाय ॥
पहिले साधन ना कियो, नभमण्डलको जान ॥
आवत जानै काल जब, कहा करै अज्ञान ॥
बाल ध्यान कीन्हो नही, ज्वान अवस्था बीत ॥
आगम देखै कालको, काल नचै वह जीत ॥
कालजीत हरिसो मिले, शून्य महल अस्थान ॥
आगे जिन साधन करी, तरुण अवस्था जान ॥
काल अवधि बीतै तभी, जबै बीति सब जाय ॥
योगी प्राण उतारिये, लेहि समाधि लगाय ॥
काल जीति जगमें रहै, मौत न व्यापै ताहि ॥
दशौं द्वारको फोरिके, जब चाहै तब जाहि ॥
सूर्यमण्डल चीरिके, योगी त्यागे प्राण ॥
सायुज्यमुक्ति सोई लहै, पावै पद निर्वाण ॥
कृष्ण पक्षके मध्यमें, दक्षिण होय जु भान ॥
योगितनु नहिं छाँड़िये, राज होय फिरि आन ॥

राजपाथ हरि भक्तिकर, पूरबली पहिचान ॥
योग युक्ति पावै बहुरि, दूसर मुक्ति निदान ॥
उतरायण सूरज लखै, शुक्लपक्षके माहिं ॥
योगी काया त्यागिये, यामें संशय नाहिं ॥
मुक्ति होय बहुरै नहीं, जीव खोज मिटि जाय ॥
बुन्द समुन्दर मिलि रहै, दुतिया ना ठहराय ॥
दक्षिणायन सूरज रहै, रहै मास षट जानि ॥
फिर उतरायण जायकरि, रहै मास षट मानि ॥
दोनों स्वरको शुद्ध करि, श्वासामें मन राखि ॥
भेद स्वरोदय पायकरि, तब काहूसों भाखि ॥
जो रण ऊपर जाइये, दहिने स्वर परकाश ॥
जीति होय हारै नहीं, करै शत्रुको नाश ॥
दुर्जनको स्वर दाहिनो, तेरो दहिना होय ॥
जो कोई पहिले चढ़ै, खेत जीति है सोय ॥
सुषमन चलतन चाहिये, युद्ध करनको मीत ॥
शीश कटावै कै फँसै, दुर्जन होवै जीत ॥
जो बायें पृथ्वी चलै, चढ़ि आवै कोइ भूप ॥
आप बैठि जल पेलिये, बात कहत हौ चूप ॥
जल पृथ्वी स्वरमें चलै, सुनै कान दै बीर ॥
सुफलकाज दोनों करै, कै धरती कै नीर ॥
पावक अरु आकाशतत, वायु तत्त्व जो होहिं ॥
कछू काज नहिं कीजिये, इनमें बरजौ तोहिं ॥
दहिनो स्वर जब चलतहै, कहीं जाय जो कोय ॥
तीन पाँव आगे धरै, सूरजको दिन होय ॥

बायें स्वरमें जाइये, बायें पग धरि चार ॥
बायों डग पहिले धरै, होय चन्द्रको बार ॥
दहिने स्वरसें जाइये, दहिने डग धरि तीन ॥
बायें स्वरनें चारि डग, बायों कर परवीन ॥
गर्भवतीके गर्भको जो कोइ पूंछै आय ॥
बाल होय के बालकी, जीवे कै मारिजाय ॥
परिक्षा बालक होनकी, जो कोउ पूंछै तोहिं ॥
बायें रहिये छोकरी, दहिने बेटा होहिं ॥
दहिने स्वरके चलतही, जो वह पूंछै आय ॥
वाको बावो स्वर चले, बालक हो मारिजाय ॥
दहिने स्वरके चलतही, जो वह पूंछै बैन ॥
वाहूको दहिना चले, लरिका हो सुख चैन ॥
बायें स्वरके चलतही, आय कहै जो कोय ॥
बेटा है जीवै नहीं, वाको दहिनो होय ॥
बाये स्वरके चलतही, जो वह पूंछै बात ॥
वाहूको बावा चलै, पुत्रि होय कुशलात ॥
तत अकाशके चलतही, कहै गर्भकी आय ॥
होय नपुंसक हीजड़ा, कै सतवाँसो जाय ॥
लेन परीक्षा गर्भकी, जो कोइ पूंछै आय ॥
अग्नि होय जो तासमै, ओछाही गिरिजाय ॥
क्षण बायें क्षण दाहिने, दो स्वर सुषमन होय ॥
पूंछन वारे सों कहो, बालक उपजैं दोय ॥
वायु तत्त्वके चलतही, जो कोउ पूंछै आय ॥
छाया हो वाढ़ै नहीं, पेटै माहिं विलाय ॥

जो कोइ पूंछै आयकै, याको गर्भ कि नाहिं ॥
दहिनो बावों स्वर लखै, साधि श्वासके माहिं ॥
बन्ध ओर जो आयकरि, है पूंछै जो कोय ॥
बन्ध ओर तो गर्भ है, बहते स्वर नहिं होय ॥
इड़ा पिंगला सुषमना, नाड़ी कहिये तीन ॥
सूरज चन्द विचारिकै, रहै श्वास लवलीन ॥
जैसेकछुआसिमिटिकरि, आपी माहिं समाय ॥
ऐसे ज्ञानी श्वासमें, रहै सुरति लवलाय ॥
श्वास बाण बैक्रोड़की, आव जान नरलोय ॥
बीतजाय श्वासा जबै, तबहीं मृत्युके होय ॥
इकइस सहस छसै चलै, रात दिना जो श्वास ॥
बीसा सौ जीवै वरष, होय अघनको नास ॥
अकाल मृत्यु कोई मरै, होयकरि भुक्ते भूत ॥
श्वास जहां बीतै सभी, जब आवै यमदूत ॥
चारौं संयम साधिकरि, श्वासा युक्ति चलाय ॥
अकाल मृत्यु आवै नहीं, जीवै पूरी आय ॥
सूक्षम भोजन कीजिये, रहिये ना पड़ि सोय ॥
जल थोरो सो पीजिये, बहुत बोल मत खोय ॥

कुण्डलिया।

मोक्षमुक्तितुमसोचहतहौ, तजौ कामना काम ॥
मनकी इच्छा मेटिकरि, भजो निरञ्जन नाम ॥
भजो निरञ्जन नाम, तत्त्वदेहअभ्यासमिटावो॥
पञ्चनके तजि स्वाद, आप में आप समावो ॥

जब छूटै झूठी देह, जैसे के तैसे रहिया ॥
चरणदास यहि मुक्ति, गुरूने हमसों कहिया ॥

दोहा–देह मरै तू है अमर, पारब्रह्म है सोय ॥
अज्ञानी भटकत फिरे, लखै सो ज्ञानी होय ॥
देह नही तू ब्रह्म है, अविनाशी निर्वान ॥
नित न्यारो तू देहसों, देह कर्म सब जान ॥
डोलनबोलन सोवनो, भक्षण करन अहार ॥
दुखसुखमैथुनरोगसब, गरमी शीत निहार ॥
जाति वरण कुलदेहकी, मूरति सूरति नाम ॥
उपजै विनशै देहसों, पांच तत्त्व को गाम ॥
पावक पानी वायुहै, धरती और अकास ॥
पांच तत्त्वके कोटमें, आय कियो तैं वास ॥
पांच पचीसौ देह संग, गुण तीनों हैं साथ ॥
षट उपाधिसों जानिये, करत रहैं उतपात ॥
जिह्वा इन्द्री नीरकी, नभकी इन्द्री कान ॥
नासा इन्द्री धरणिकी, करि विचार पहिंचान ॥
त्वचा सुइन्द्री वायुकी, पावक इन्द्री नैन ॥
इनको साधै साधु जो, पद पावै सुख चैन ॥
निद्रा संगम आलकस, भूख प्यास जो होय ॥
चरणदास पाचौ कही, अग्नितत्त्व सों जोय ॥
रक्त बिन्दु कफ तीसरो, मेद मूत्रको जान ॥
चरणदास परकिरतिये, पानी सों पहिंचान ॥
चाम हाड़ नाड़ी कहू, रोम जान अरु मांस ॥
पृथ्वीकी परकिरति ये, अन्त सबन को नास ॥

बल करना अरु धावना, उठना अरु संकोच ॥
देह बढ़ै सो जानिये, वायु तत्त्व है शोच ॥
काम क्रोध मोह लोभ मैं, तत अकाश को भाग ॥
नभकी पांचौ जानिये, नित न्यारो जूजाग ॥
पांच पचीसौ एकही, इनके सकल स्वभाव ॥
निर्विकार तू ब्रह्म है, आप आपको पाव ॥
निराकार निर्लिप्त तू, देही जान अकार ॥
आपनि देही मान मत, यही ज्ञान ततसार ॥
शस्तर छेदिसकै नहीं, पावक सकै न जारि ॥
मरै मिटै सो तू नहीं, गुरुगम भेद निहारि ॥
जलै कटै काया यही, बनै मिटै फिरी होय ॥
जीवऽविनाशी नित्य है, जानै विरला कोय ॥
आँख नाक जिह्वा कहूं, त्वचा जान अरु कान॥
पांचों इन्द्री ज्ञान ये, जानै जान सुजान ॥
गुदा लिंग मुख तीसरो, हाथ पाँव लखि लेह ॥
पांचों इन्द्री कर्म हैं, यह भी कहिये देह ॥
पृथ्वी काल जे ठौर है, मुखै जानिये द्वार ॥
पीलो रँग पहिंचानिये, पीवन खान अहार ॥
पित्ते में पावक रहै, नैन जानिये द्वार ॥
लालरंग है अग्नि को. मोह लोभ आहार ॥
जलको वासा भाल है, लिंग जानिये द्वार ॥
मैथुन कर्म अहार है. धौलो रंग निहार ॥
पवन नाभिमें रहतहै, नासा जानि द्वार ॥
हरो रंगहै वायुको. गन्ध सुगन्ध अहार ॥

अकाश शीश में वासहै श्रवण दुआरे जान ॥
शब्द कुशब्द अहारहै, ताको श्याम पिछान ॥
कारण सूक्षम लिंगहै, अरु कहियत अस्थूल ॥
शरीर तीनमो जानिये, में रोगी जड़ मूल ॥
चितबुधिमन अहँकारजो, अन्तःकरण सुधार ॥
ज्ञान अग्निमो जारिये, करि करि मीत विचार ॥
शब्द स्पर्शरु गन्ध है, अरु कहियत रस रूप ॥
देह कर्म्म तनमात्रा, तू कहियत निहरूप ॥
निराकार अद्वै अचल, निरवासी तू जीव ॥
निरालम्ब निर्वैर सो, अज अविनाशी सीव ॥
बाएँ कोठा अग्निको, दहिने जल परकास ॥
मनहिरदय अस्थान है, पवन नाभिमें वास ॥
मूल कमलदल चारको, लाल पैंखरी रंग ॥
गौरीसुत वासो कियो, छस्यै जाप इकंग ॥
षट्दलकमलपियरेवरण, नाभी तल संभाल ॥
षट् सहस्र जपि जापले, ब्रह्म सावित्री नाल ॥
दश पैंखरी कमलहै, नील वरण सो नाभ ॥
विष्णूलक्ष्मीवास कियो, षट् सहस्र पर जाप ॥
अनहद चक्र हृदय रहै, द्वादश दल अरु श्वेत ॥
षट् सहस्रजपि जापले, शिव शक्ती तहँ हेत ॥
षोडशदलको कमल है, कण्ठ वास शशिरूप ॥
जाप सहस्र जहां जपै, भेद लहै अति गूप ॥
अग्निचक्रदोदलकमल , त्रिकुटी धाम अनूप ॥
जाप सहस्र जहां जपै, पावै ज्योति स्वरूप ॥

दल हजारको कमल है, नभमण्डल में वास ॥
जाप सहस्र जहां जपै, तेज पुंज परकास ॥
योग युक्तिकरि खोजिले, सुरत निरत करचीन ॥
दशप्रकार अनहद बजै, होय जहां लवलीन ॥

कुण्डलिया।

एक भँवर गुंजारसी, दूजै घुँघुरू होय ॥
तीजे शब्द जु शंखका, चौथे घण्टा सोय ॥
चौथे घण्टा सोय, पांचवें ताल जु बाजै ॥
छठे सुमुरली नाद, सातवें भेरि जुगाजै ॥
अठवें शब्द मृदंगका, नाद नफीरी नोय ॥
दशवें गरजनि सिंहसी, चरणदास सुनिलोय ॥

दोहा--दशप्रकार अनहद घुरै, जित योगी होयलीन ॥
इन्द्री थकि मनुआँ थकै, चरणदास कहि दीन ॥
तीन बन्ध नौनाटिका, दशवाई को जान ॥
प्राण अपान समान है, अरु कहिदेत उदान ॥
व्यान वायु अरु किरकिरा, कूरम बाई जीत ॥
नाग धनंजय देवदत, दश वाई रणजीत ॥
नवों द्वारको बन्ध करि, उत्तम नाड़ीं तीन ॥
इड़ा पिंगला सुषुमना, केलि करै परबीन ॥
करते प्राणायाम के, तरिगये पतित अनेक॥
अनहद ध्वनिके बीचमें, देखै शब्द अलेख ॥
पूरक करि कुम्भक करै, रेचक पवन उतार ॥
ऐसे प्राणायाम करि, सूक्ष्म करै आहार ॥
धरती बन्ध लगायवै, दूजा बन्ध को रोक ॥

मस्तक प्राण चढ़ायकरि, करै अमरपुर भोग ॥
पांचों मुद्रा साधि करि, पावै घट को भेद ॥
नाड़ी शक्ति चढ़ाइये, षट् चक्करको छेद ॥
योग युक्ति के कीजिये, कै अजपाको ध्यान ॥
आपा आप विचारिये, परम तत्त्वको ज्ञान ॥
शूद्ररु वैश्य शरीर है, ब्राह्मण औ रजपूत ॥
बूढ़ा बाला तू नहीं, चरणदास अवधूत ॥
काया माया जानिये, जीव ब्रह्म है मित्त ॥
काया छुटि सूरत मिटै, तू परमातम नित्त ॥
पाप पुण्य आशा तजौ, तजौ मान अरु थाप ॥
काया मोह विकार तजि, तजै सु अजपा जाप ॥
आप भुलानो आपमें, बँधो आपही आप ॥
जाको ढूँढ़त फिरत है, सो तू आपहि आप ॥
इच्छा देइ बिसारिकै, होय क्यों न निर्वास ॥
तू तौ जीवन्मुक्त है, तजो मुक्तिकी आस ॥
पवन भई आकाश सों, अग्नि वायु सों होय ॥
पावक सों पानी भयो, पानी धरती सोय ॥
धरती मीठे स्वाद है, खारी स्वाद सुनीर ॥
अग्नि चरफरो स्वाद है, खट्टो स्वाद समीर ॥
खट्टा मीठा चरफरा, खारी पर मन होय ॥
जबहीं तत्त्व विचारिये, पांच तत्त्वमें कोय ॥
स्वाद नाय अरु रंग है, और बताई चाल ॥
पांच तत्त्वकी परख यह, साधि पाव ततकाल ॥
तिरकोनी पावक चलै, धरती तौ चौकोन ॥

शून्यस्वभावअकाशको, पानी लांबो गोल ॥
अग्नितत्त्व गुण तामसी, कहो रजोगुण वाय ॥
पृथ्वी नीर सतोगुणी, नभ है अस्थिर भाय ॥
नीर चलै जब श्वाससें, रण ऊपर चढि मीत ॥
वैरीको शिर काटकारि, घर आवै रणजीत ॥
पृथ्वीके परकाससें, युद्ध करै जो कोय ॥
दोउ दल रहैं बराबरी, हारि वायुमें होय ॥
अग्नितत्त्वके बहतही, युद्ध करन मति जाव ॥
हारि होय जीतै नहीं, अरु आवै तन घाव ॥
तत अकाशसें जो चलै, तौ ह्वांई रहिजाय ॥
रणमाहीं काया छुटै, घर नहिं देखै आय ॥
जल पृथ्वीके योगसें, गर्भ रहै सो पूत ॥
वायु तत्त्वसें छोकरी, आँबर सूतक सूत ॥
पृथ्वितत्त्वसें गर्भ जो, बालक होवै भूप ॥
धनवन्ता सोइ जानिये, सुन्दर होय स्वरूप ॥
अग्नितत्त्व जब चलतहै, कभी गर्भ रहिजाय ॥
गर्भ गिरै माता दुखी, हो माता मरिजाय ॥
वायुतत्त्व स्वर दाहिने, करै पुरुष जब भोग ॥
गर्भ रहै जो तासमें, देही आवै रोग ॥
आसनसंयमसाधिकरि, दृष्टि श्वासके माहि ॥
तत्त्वभेद यों पाइये, विन साधे कुछ नाहि ॥
आसन पद्म लगायके, एक बरत नित साध ॥
बैठे लेटे डोलते, श्वासाही आराध ॥
नाभिनासिकामाहिकरि, सोहं सोहं जाप ॥

सोई अजपा जाप है, छुटै पुण्य अरु पाप ॥
भेद स्वरोदय बहुत है, सूक्षम कह्यो बनाय ॥
ताको समझि विचारिले, अपनो चित मनलाय ॥
धरणि टरै गिरिवर टरै, ध्रूव टरै सुन मीत ॥
वचन स्वरोदय ना टरै, कहै दास रणजीत ॥
शुकदेवगुरुकी दयासों, साधु दयासों जान ॥
चरणदास रणजीतने, कह्यो स्वरोदय ज्ञान ॥

छप्पै।

डहरेमें मेरो जनम नाम रणजीत पिछानो ॥
मुरली को सुत जान जात दूसरि पहिंचानो ॥
बाल अवस्था माहिं बहुरि दिल्लीमें आयो ॥
रमत मिले शुकदेव नाम चरणदास बतायो ॥
योगयुक्तिहरिभक्तिकारि ब्रह्मज्ञानदृढकरिगह्यो ॥
आतमतत्त्वविचारिकै अजपामें सनिमन रह्यो ॥

इति श्रीस्वामिचरणदासजीकृतज्ञानस्वरोदयसंपूर्ण।

पुस्तक मिलनेका पता–खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस, खेतवाडी–बंबई.

# प्रस्तावना–

धर्म रत्न प्रकरण का मूल और गुजराती भाषांतर पालीताणा विद्या प्रसारक वर्ग ने छपाया है जिसमें मार्गानुसारी के ३५ गुण और कथा, श्रावक के २१ गुण और कथा, श्रावक के १२ व्रत, साधु के और पांच महाव्रत का अच्छी तरह है उसके हिंदी भाषांतर की बहुत आवश्यकता थी तो भी, की संकीर्णता से थोड़े में अधिक लाभ हो इस तरह योजना कर संक्षिप्त गयी जो विवेचन गाथाओं के साथ मूल ग्रंथ में है उनका सार लेकर ग्रंथ तैयार किया है।

केसरीचंद जी लूणिया एक विद्या प्रेमी प्रसिद्ध पुरुष जैन में है। सुपुत्र दीपचंद जी के स्मरणार्थ श्रावक के २१ गुणों का वर्णन छापने उनका विचार होने पर भी नीचली बातें बढाई है।

श्रावकों का १२ व्रत का वर्णन सातवें व्रत के १४ नियम जिसमें लक्ष्मीचंदजी घीया की किताब का आधार लिया है और अंत में आ जैन पुस्तक प्रचारक मंडल की पंच प्रतिक्रमण की पुस्तक के अतिचार की की है जिससे श्रावकों को यह पुस्तक बहुत उपयोगी होगी।

इस ग्रंथ का सब खर्चा श्रीयुत केशरीचंदजी लूणिया ने दिया है को चाहिये वह मंगा लेवे.

पताः केशरीचंदजी लू

नया बाजार अजमेर

## वांचक वर्गसे प्रार्थना.

प्रमाद वश दृष्टि दोष और प्रेस मैन और प्रेस की गलती से व भाष अज्ञानता से जो अशुद्धिऐ रह गई हैं उनमें कितनीक का शुद्धिपत्र दि उस शुद्धि पत्रको प्रथम पढकर किताब सुधार के पढे. और जहां समझ बड़ों से पूछ कर पढे.

मुनि माणक लाखन कोटड़ी, अजमेर।

* श्री *

# ॥ धर्मरत्न प्रकरण ॥

श्रेयांसो भवतां सदाऽभिलषितं कुर्यान्स्व चित्तेधृता
मान्यो यत् शिव वांछकै निशि दिने कारुण्य राशिर्विभु
तंनत्वा सुगुरु तथा मुनिवरं पन्यास हर्ष मुदा
कुर्वे रत्न समंगुणा नुकथनं श्राद्धार्थ मां ख्यावहं १

जिस पुरुष को भली बुरी वस्तु का ज्ञान है जो संसार में जन्म मरण व्याधि के संताप से पीडित हो और जिस को कुछ अंश में कोमल भाव प्रगट हुआ हो, ऐसे भव्य जंतु को स्वर्ग मोक्ष के सुख और संपदा देने वाला रत्न समान अमूल्य जैन धर्म आराधन करने योग्य है

धर्म रत्न को प्राप्त करने में गुरु महाराज के सदोपदेश की आवश्यकता है. इसलिये परम गुरु श्रीजिनेश्वर ने गणधर भगवंतो द्वारा सिद्धान्त सागर में वाक्य रत्नो का ढेर रक्खा है उससे वर्तमान समय के अनुसार धर्म रत्न प्रकरण नाम का ग्रंथ श्रीशान्ति सूरि महाराज ने मागधी गाथा और संस्कृत मागधी टीका कथा के साथ बनाया है. और आत्मानंद जैन सभा भावनगर ने छपवाया है, उस टीका का सार लेकर सद्गुरुपन्यास हर्ष मुनिजी की कृपा से हिंदी भाषा में श्रावक के गुणों का कथा के साथ वर्णन करता हूं।

वीर प्रभु जो हमारे शासन नायक हैं इन्हीं से हमें धर्म "रत्नत्री" प्राप्ति हुई है और हमारे गुरु भी इन्हीं का ध्यान करते हैं जिनका वीर ऐसा शब्द सुनते ही पाप और विघ्न सब दूर हो जाते हैं इन्हीं का स्मरण कर भव्य प्राणियों के हितार्थ मैं इस ग्रंथ का प्रारंभ करता हूं।

८४ लाख जीव योनि में घूमते २ जीवों को महापुण्य से ही मनुष्य योनि प्राप्त होती है और मनुष्य जन्म में भी जन्म मरण का त्रास दूर करने वाला सुधर्म रत्न प्राप्त होना बहुत मुश्किल है।

जैसे पुण्य रहित जीवों को चिंतामणी रत्न, कल्प वृक्ष, काम धेनु वगैरह प्राप्त होनी मुश्किल है ऐसे ही निष्पुण्य गुण रहित जीवों को धर्म रत्न की प्राप्ति भी दुर्लभ है,

धर्म रत्न प्राप्त होने के पहिले इतने गुणों की आवश्यकता ज्ञानी भगवन्तों ने बताई है सो कहता हूं यद्यपि मुक्ति के लिये साधु का सर्व विरति धर्म श्रेष्ठ है किंतु श्रावक प्रथम सद्‌गृहस्थका देश विरति धर्म को प्राप्त करके साधु धर्म अच्छी तरह पाल सक्ता है इस लिये प्रथम श्रावक के गुणों का वर्णन करता हूं कि उनको अच्छी तरह समझ कर देश विरति और सर्व विरति धर्मपाल सिद्ध पद पाकर जन्म मरण के बंधन से मुक्त होवे।

## श्रावक के २१ गुणों के नाम.

( १ ) अक्षुद्र ( २ ) रूपवान, ३ प्रकृति सौम्य, ४ लोक प्रिय, ५ अक्रूर ६ पाप भीरु, ७ अशठ ८ सुदाक्षिण्य, ९ लज्जावान, १० दयालु, ११ मध्यस्थ सौम्य दृष्टि, १२ गुणरागी, १३ सत्कथक, १४ सुपक्ष युक्त, १५ सुदीर्घदर्शी. १६ विशेषज्ञ १७ वृद्धानुग, १८ विनीत, १९ कृतज्ञ, २० परोपकारी २१ लब्ध लक्ष्य—इन २१ गुणों का वर्णन करता हूं—

अक्षुद्र ( गंभीर, तुच्छता से रहित )

जो क्षुद्र होता है वो तुच्छता से बात बात में झगड़ा करता है, गुरु महाराज उसे कुछ हितके लिये कहवें तो वो बिना समझे ही अयोग्य उत्तर देकर गुरु का निंदक होकर हित शिक्षा प्राप्त नहीं करेगा, बच्चोंको प्रथम बुद्धिका विशेष विकाश न होने के कारण उनको मा बाप वा गुरु की आज्ञानुसार ही वर्तन करना चाहिये.

ऐसेही धर्म रहित जीवों को प्रथम निस्पृही निर्लोभी ज्ञानी पुरुषों के बचन पर विश्वास रखकर धर्म रत्न प्राप्त करना चाहिये इस लिये प्रथम गंभीरता को धारण करने की आवश्यकता है और गुरु महाराज को सम-

झाने में तकलीफ न होवे इस लिये कुछ बुद्धि विकाश की भी आवश्यकता है नहीं तो अज्ञानता से नियम करने वाले एक जड़ बुद्धि की तरह धर्म के बदले अधर्म का भागी होगा।

एक जड बुद्धि ने नियम लिया कि बीमार साधु को औषध देकर पीछे रोटी खाऊंगा, किसी समय पर बीमार साधु न आया तो वो जड़ बुद्धि पश्चात्ताप करने लगा कि मैं कैसा निर्भागी हूं कि आज कोई साधु बीमार नहीं होता! उस की आंतरिक अभिलाषा दूषित न थी तो भी अज्ञान दशा से साधुओंकी बीमारीकी उत्पत्ति की चितवना से उसकी अभिलाषा दूषित हो गई पापका भागी हुआ और जो उसे कुछ भी बुद्धि का विकाश होता तो ऐसा नियम न लेता और लेता तो ऐसी कुभावना मन मे नहीं लाता, इस लिये गंभीरता उसही में है जो कुछ बुद्धि विकाश वाला भी हो।

यहां पर छोटा दृष्टांत कहता हूं।

एक युवति छोटी उम्र में धनाढ्य के लडके को दी गई थी परंतु जब यह कन्या सुसराल को गई तब उस धनाढ्य के धन नहीं रहने से दुःख देखकर पीयर चली गई, बाप ने कुछ न कहा, थोडे वर्ष बाद उसका पति बुलाने को आया तो वो युवति बाप की शर्म की खातिर सासरे चली परंतु रास्ते में पानी लाने के बहाने पति को कूवे मे गिरा कर बाप के घर चली आई, तो भी बाप ने कुछ न कहा, न पूछा, थोडे रोज बाद पति को फिर आता देख वो घबराने लगी परंतु पति ने इशारे से समझा दी कि मैंने किसी को तेरा कर्त्तव्य नहीं कहा है, तू संतोष से मेरे साथ चल, इस समय युवति की [illegible] बडी हो जाने से और लोगों की शर्म से वह पति के साथ चली गई।

पतिके साथ घर जाकर एक दिन पति से पूछने लगी कि आप [illegible] और मेरा इतना अपराध होने पर भी आप मुझे क्यों चाहते हो ? [illegible] विश्वास कैसे करते हो ? पतिने कहा धर्म के प्रभाव से मुझे किसी का [illegible] नहीं है. वो सुनकर युवति उस दिन से पति पर सच्चा प्रेम करने वाली हो गई. लोगों में उसकी इज्जत बढी और दोनों के सच्चे प्रेम से घर में [illegible] बढने लगी लडके भी हुए बडे होने पर उनकी शादी होने से बहुएं भी आई और वे सब स्वर्ग का सुख भोगने लगे।

एक दिन बापने एकान्त में बेटों को समझाया कि तुम लोग घर में गंभी-
रता रख कर सब से मिलकर रहो बात बात में स्त्रियों के साथ मत झग-
छोटी उम्र की स्त्रियों में सुशीलता कम होती है, तुच्छता ज़्यादा होती है,
मैंने जो आज तक सुख पाया है सो झगड़ा नहीं करने का ही फल है, और
उसी से आज तुम भी आनंद से राज्य रिद्धि भोग रहे हो! लड़कों ने पूछा
के आपने पूर्व में क्या किया था सो सुनाओ? कम नसीब से बापने
वो बात कही जो कोई भी नहीं जानता था सो सब बात उसने लड़कों को
नादी उस समय छुप कर एक लड़के की बहू ने सब बात सुनली और अपनी
क्षुद्रता से मनमें विचारने लगी कि कब सासुजी को यह बात कह कर उसको मेरे
वश में लाऊं और सब में प्रधान हो जाऊं इस तरह सासू को दबाने की
खातिर रात को एकांत में उसने अपनी सासू को कहा कि आज तक आप
मुझे शिक्षा देने के समय चाहे ऐसे बोलती थी किंतु आज से खयाल
रखे कि मैं भी आप की पोल सब जानती हूं सासूने कहा कि मुझे तू कैसे
दबाती है घरमें जो सीधी न रहेगी तो तेरे हित के खातिर मुझे कहना भी
पड़ेगा बहू बोली ठीक है बोलना सुसराजी की बात मैं भी प्रकट कर दूंगी
इतना सुनते ही सासू चुप हो कर निकल गई और रात में ही आत्म हत्या
कर अपनी बात छिपी रखी किंतु सासू के मरने से लोगों में बहू को कलंक
लगा और सर्वत्र सासू हत्यारी प्रसिद्ध हुई इस दृष्टांत से प्रत्येक पुरुष या
स्त्री को शिक्षा लेने की है कि मार्मिक बात किसी को न कहनी चाहिये.

पतिने गंभीरता से सुख पाया और तुच्छ बहूने मार्मिक वचन कह कर
सासू की हत्या कराई इस लिये सब के साथ गंभीरता रख कर दीर्घ दृष्टि
पहुंचा कर बोलना चाहिये।

## लोकोत्तर दृष्टांत.

चेदि देश में श्रोति मति पुरी में क्षीरकदंवक नाम का वेदपाठी एक
सुशील ब्राह्मण लड़कों को पढ़ाता था, राज पुत्र वसु तथा उस ब्राह्मण का
पुत्र पर्वत और नारद तीनों सब विद्यार्थिओं में बड़े और उपाध्याय को प्रि
थे, मुनिओं ने पंडित के घर पर गोचरी आने के समय परस्पर वार्ता क
कि इन तीन विद्यार्थिओं में दो नरक गामी हैं, एक सद्गति में जाने वा

है साधुओं के वचन सुनकर और विश्वास करके परीक्षा की खातिर क्षीरकदंबक ने उनको कृत्रिम बकरा बना कर दिया और कोई न देखे वहां जाकर मारने को कहा, जो नारद दीर्घ दृष्टिवाला था उसने एकांत में जाकर उसे मारने का विचार किया, किंतु विचार करने लगा कि ज्ञानी, तारे वा देवता सबको सर्वत्र देखते है. मै भी देखता हूं इससे तो गुरुका अभिप्राय बकरे को नहीं मारने का है, गुरु के पास जाकर उसने सब बात सुनाई गुरु ने विचारा कि यह सुगति मे जावेगा राज पुत्र का तो नरक मे जानेका संभव है किंतु मेरा पुत्र नरक मे कैसे जावेगा ?

ऐसा विचार कर अपने पुत्र को बुलाकर वैसाही बकरा मारने को कहा वो विचारा कम अक्ल था. जाकर मार आया पिता ने पूछा. कैसे मार आया ? क्या वहां देव नहीं देखतेथे अथवा तू नहीं देखता था ? तब बोला, मेरी ऐसी बुद्धि कहां से होवे, गुरु ने सोचा कि अज्ञानता से यह अर्थ का अनर्थ कर नर्क मे जावेगा ऐसा ही वसु का मालूम हुआ, उपाध्याय को संसार से खेद हुआ दीक्षा लेकर सद्गति को प्राप्त हुआ

पर्वत पीछे उपाध्याय हुआ तो भी अर्थ का अनर्थ करने लगा, नारद जो पढकर चला गया था वो एक दिन पर्वत मित्र से मिलने को आया और जिस समय पर्वत ने छात्रों को पाठ दिया उस समय अजका अर्थ यज्ञ मे पुराणी व्रीहि अनाज के बदले बकरे का अर्थ किया, तब नारद ने समझाया परंतु वो मंद बुद्धि था और अधिक गुस्से वाला भी था जिससे अपना अपमान समझ झगडा करने लगा, और दोनो ने निश्चय किया कि वसु राजा जो अपने साथ पढ़ता था और सत्यवादी होने से अधर बैठता है उसके वचन पर विश्वास करना, पर्वत की मा ने सुना तब उसको सच्चा अर्थ मालूम होने से पर्वत को उसने कहा कि ऐसी आपस मे हठ क्यों करते हो ? मित्र भाव से जो मित्र मिलने आया है उससे झगडा नहीं करना चाहिये, पर्वत बोला. मेरा इसने अपमान किया है इसलिये मैने इसके साथ प्रण किया है कि जो झूठा होवे उसकी जीभ काटी जावे. मा सुनकर चमक गई एकांत में बेटे को बुलाकर कहा मंद भाग्य पुत्र ? इतना झूठा घमंड कर अपना व

नाश करता है मुझे भी याद है कि एक समय तेरे पिता ने अज का अ
पुराणे व्रीहि अनाज ही किया था, इसलिये नारद के पास क्षमा मांग
परंतु हठी पर्वत नहीं मानता था जिससे पुत्र की रक्षा की खातिर माता
एकांत मे जाकर वसु राजा को समझाया और गुरु पुत्र की जीभ रक्
को कहा वसु वचनमें आगया राज्य सभामें पर्वत और नारदने आकर अपनी बा
सुनाकर न्याय चाहा तब वसुने झूठाही कहदिया कि अजका अर्थ बकरा करना
नजदीक मे जो रहे हुए देव थे उनको यह बात अच्छी न लगने से उन्होंने
उस वसु राजा को जमीन पर गिरा कर मार डाला, नारद की जय हुई।
पर्वतका लोगो ने बहुत तिरस्कार किया वहां से निकल कर वो मांस भक्षण
के स्वादु ब्राह्मणों को मिलकर पवित्र वेदों मे हिंसामय स्मृतियें बढ़ाकर हजारों
जीवों की हिंसा का रास्ता बताकर नर्क में गया.

इस दृष्टांत से यह हित शिक्षा दी है कि जो मंद बुद्धि हैं वे आप स
बात जो गभीर आशय की है वो नही समझ सके और अपनी अज्ञान
से अर्थ का अनर्थ कर भोले जीवो को फंसाकर दुर्गति मे जाते हैं, इसलि
धर्म योग्य पुरुष गंभीर और तीक्ष्ण बुद्धि वाला समयज्ञ होना चाहिये, य
श्रावक का प्रथम गुण है

## श्रावक का दूसरा गुण.

पुरुष वा स्त्री रूपवान् होना चाहिये अर्थात् शरीर के अंग उपांग सं
र्ण होना चाहिये, पांच इंद्रिय पूरी होना चाहिये शरीर बंधारण यथा यो
सुंदर होना चाहिये ऐसा पुरुष धर्म पाकर अनेक जीवों का तारने वा
प्रभाविक हो सक्ता है। यदि कदापि कोई कुरूप हो वो विकल
वा विकल इंद्रिय वाला हो तो भी धर्म तो पा सके किंतु सा
पना नहीं पा सके अथवा कुरूप होवे तो उन्नति नहीं कर सक्ता, लोगों
प्रभाव नही पड़ता, अथवा शठ पुरुष उसकी हांसी कर धर्म की निंदा करे
अथवा खुद साधु गुस्से होकर टंटा करके जैन धर्म की हीलना करावेगा औ
वज्र ऋषभ नाराच संघयण बिना मुक्ति भी नहीं हो सक्ती।

यहां पर कुरूप संबंधी हरि केशी मुनि का दृष्टांत देकर कोई शंका क
गा कि वे रूपवान् नही थे तो भी वे पूजनीक क्यों हुए ? उसका समाध

ह है कि सर्वत्र देवता सहायक नहीं होता, और उनकी चारित्र वृत्ति क्षमा
ण अति प्रशंसनीय था, इस लिये ऐसे गुणवाले तो विना रूप भी स्व
र को तार सक्ते है और ज्ञानी गुरु कुरूप को भी धर्म देते हैं परंतु विकलांग
गड़ा, अंधा, रोगी, अशक्त चाहे तो भी संपूर्ण धर्म नही पा सक्ता, जैसे उ-
म फल का पेड़ चाहिये तो बीज उत्तम जमीन मे ही बोना चाहिये

तीर्थंकर चक्रवर्ती बलदेव वासुदेव वगैरह माननीय पुरुष जन्म से ही
धिक रूपवान् ही होते, हैं. ऐसे ही धर्म प्रभावक पुरुष आचार्य वा साधु वा
वक भी जन्म से ही सुंदर होते है गुरुके पास जाते ही वे अपनी मुख मुद्रा से
रु को प्रसन्न कर देते है।

## यथा रूपं तथा गुणाः

रूप भी एक पुण्य प्रकृति है और पुण्यवान् ही धर्म पा सक्ता है किसी
पूर्व भव मे रूप का मद किया हो और पीछे पश्चत्ताप किया हो वो ही
रूप मे दूसरे भव मे धर्म पा सक्ता है इसलिये रूप का मद नही करना
किंतु रूप भी धर्म साधन में सहायक होवे तो अति प्रशंसनीय है।

## वज्र स्वामी का चरित्र.

वज्र स्वमी वड़े रूपवान् थे उन्हो ने दीक्षा ली और जहां विहार करके
जाते थे वहां ही उनकी महिमा होती थी एक कन्या तो साध्वीयो के पास
उनके गुणो की प्रशंसा सुनकर प्रतिज्ञा कर बैठी कि उनके साथ ही विवाह
करूंगी वो लड़की वड़ी हो जाने से और वज्र स्वामी का पता न लगने से
बाप ने उसे समझाया कि वेटी ऐसी हठ करना तुझे योग्य नही युवति के
युवावस्था में बाप के घर रहने से इज्जत घटती है किसीके साथ शादी
करले! पुत्री ने कहा हे तात! ऐसा नहीं हो सक्ता कि मै वज्र स्वामी को छोड
दूसरे से शादी करूं कर्म संबंध से वज्र स्वामी आगये बाप ने कन्या और
करोड़ों का द्रव्य ले जाकर उनसे कहा हे वज्र स्वामी! जगत मे पुण्य वृक्ष के
फल उसी भव मे खाने वाले आप ही जगत पूज्य अद्वितीय पुरुष हैं कि देव
कन्या और लक्ष्मी देने को मै आया हूं आप शीघ्र स्वीकार करे वज्र स्वामी
ने स्थिर चित्त से कन्या और उनके पिता को संसार की असारता समझा

कर कहा कि हे महा भाग ! जो संसार की असारता और भोगों की तु-
की क्षण भंगुरता नहीं समझते वही देवांगना या स्वर्ग की वांछा करते
किंतु जिसे ज्ञान है वे ऐसे फंदा में नहीं पड़ते उनके अथाग रूप और ते-
जस्वी कांति देख कर प्रथम में ही ज्ञान हो गया था और जब ऐसे शांति मि-
मधुर वचन सुने तब तात और कन्या दोनों ने कहा तब हमारे क्या कहना
वज्र स्वामी ने कन्या को दीक्षा देकर उसी वन में उसका दीक्षा महोत्सव
कराया !

ऐसे ही अनाथी मुनि से श्रेणिक राजा ने बोध पाया और समय सुंदर
जी महाराज ने जो सज्झाय बनाई है वो ही यहां पर लिख देते हैं।

श्रेणिक रयवाडी चड्यो, पेखीयो मुनिएकान्त: वरकांत रूप मोहियो, रायपूछे
कहीने वृतान्त. श्रेणिक राय हूं रे अनाथी निर्ग्रंथ । तिणमें लीधोरे साधुजी
को पंथ श्रे० १

वसंत ऋतुमे जिसवक्त राजा श्रेणिक राज ग्रही नगरी के उद्यान में फिरने
को गया था उस समय युवतियों के मन के मनोरथ पूर्ण करने वाला एक
अतीव रूपवान देव कुमार जैसा युवक को देख कर राजा को अत्यंत आ-
श्चर्य हुआ कि अहो कैसा सौभाग्यवान् सुंदर कुमार है परंतु वो इतना
सुंदर होने पर भी साधु क्यों हो गया है । साधु तो वह ही होता है जो सब बात
से दुखी हो ! ऐसा विचार कर राजा वहां जाकर बोला कि आप कौन हैं और
साधु क्यों हो गये है ! ऐसी युवावस्था मे ऐसे वन मे तो युवतियों के साथ
युवक ही क्रीड़ा करने को वसंत ऋतु मे आते है

मुनि ने कहा—मै अनाथ हूं मेरा कोई रक्षक नहीं है इस लिये
साधु हुआ हूं ।

राजा—यदि आप को ऐसा ही दुःख से साधु होना पड़ा है तो मैं आप
का नाथ होकर आश्रय देने को तैयार हूं ।

मुनि—आप स्वयं अनाथ हैं, मेरे नाथ कैसे होंगे ।

राजा को गुस्सा आया कि वो मुझे अनाथ कहकर क्यों अपमान करता
है ? मैं कैसे अनाथ हूं ? और प्रकट बोला कि-हे मुने ! साधुको ऐसा उचित नहीं

है कि असत्य वचन बोल कर दूसरो का अपमान करे ? मुनि ने कहा, हे नरेन्द्र । जरा धैर्य रखो, आप उस वचन का परमार्थ नही समझे ?

जिसको पर लोक का ज्ञान नही पुण्य पाप मालूम नही वो अनाथ है क्योंकि इस भव मे पूर्व के पुण्य से सुख भोग कर जन्म हार जाता है और दुर्गति के दु:ख अनाथ होकर भोगेगा परंतु यहा पर भी पूर्व के पापो के उदय से कष्ट भोगना पडता है ।

श्रेणिक आप को भी कष्ट पडा है ?

मुनि—मेरा चरित्र थोडा सा सुनो—

इस कोसंबी नगरी वसे, मुझ पिता परिगलधन, पुरिवार पुरे परिवर्यो हू छूं तेहनो पुत्र रतन ! श्रे—२

एक दिन मुझ वेदना, उपजी ते न खमाय ।
मात पिता झूरी मरे, पण किणे समाधिन थाय, ३ श्रे ॥
वहु राज्य वैद्य वोलाविया, किधा कोडी उपाय ।
वावना चंदन चर्चीया, पण किणे समाधिन थाय श्रे, ४ ॥
गोरडी गुणमणी ओरडी, चोरडी अवला नार ।
कोरडी पीडा मे सही, कोने कीधी न मोरडी सार श्रे, ५ ॥

मैं कोसंबी नगरी मे रहने वाला नगर श्रेष्टि का पुत्र हू. और राज्य रिद्धि और परिवार से स्वर्ग का सुख वहां भोग रहा था, और रात दिन किस तरह जाते हैं वो भी मालूम न था ।

एक दिन शरीर मे शूल का रोग हुआ अग्नि ज्वाला की तरह शरीर भीतर मे जलने लगा, तव मैंने पुकार करना शुरु किया. मात पिता भी रोने लगे. वडे वडे राज्य वैद्य आकर वावना चंदन से लेप करने लगे मेरी औरत जो रूप सुंदरी थी वो भी रोने लगी किंतु मेरी पीडा किसीने न ली. न कोई सहायक हुए न मुझे समाधि हुई इसलिये मै अनाथ होगया था और मेरा नाम मैंने अनाथी रक्खा ।

जग मेंको केनो नही, तेभणी हूं अनाथ ।
वीत रागना धर्म सारीखो, नही कोई बीजो गुक्तिनो साथ ६ श्रे—॥

वेदना जो मुझ उपशमे, तो लेउं संजम भार ।
एम कहेता वेदन गई, मे [illegible] अणगार श्रे. ७ ॥

हे भूपते ! आप भी समझ गये कि मै अनाथ कैसे होगया. और रोग से वा दुःख से बचाने वाला कौन है ? इसलिये मैंने मन मे धर्म का शरण लिया कि यदि जो रोग मिटे तो साधु हो जाऊं । इतना विचार से ही शांति होने लगी। और मै साधु हुआ हूं ।

कर जोडी राजा गुणस्तवे, धन धन मुनि अणगार ।
श्रेणिक समकीत पामीयो वांदी पहोतो नगर मझार श्रे. ८ ॥
मुनि अनाथी गावता, तूटे कर्मनी कोड ।
गणि समय सुंदर एहना, पाय वांदे बेकर जोड ॥ श्रे ९ ॥

मुनिकी बात सुनकर धर्म बोध पाकर हाथजोड राजा श्रेणिक शहरमे आया।

समय सुंदर कहते है कि ऐसे मुनि के गुण गाने से करोड़ों कष्ट दूर होते है, मै भी उनके दोनो चरण मे नमस्कार करता हूं ।

इसलिये साधु रूपवान् स्वपर का अधिक उपकारक है

## श्रावक का तीसरा गुण ।

### प्रकृति से सौम्य दृष्टि ( शांति प्रकृति )

जो पुण्यात्मा इस लोक में जन्म से ही शांत मुद्रा वाला होता है वो अपने आत्मा को वार वार क्रोध से नही जलाता न दूसरो को सताने की इच्छा करता, इस लिये वो जहां जाता है वहां दूसरो को शांति देकर आप भी अंत मे प्रशंसनीय हो जाता है ।

## अंगर्षि का दृष्टांत ।

चंपा नगरी में अंगर्षि और रुद्रक दोनों विद्यार्थी कौशिक आचार्य के पास विद्या पढते थे रुद्रक स्वभाव से क्रोधी कपटी प्रमादी था. और अंगर्षि सरल शांत सर्वदा अप्रमादी था. जिससे गुरु दोनों के गुणानुसार उनकी इज्जत करता था। अंगर्षि की प्रशंसा सुनकर रोज रुद्रक जलता था, और रोज उसके छिद्र ढूंढ़ता था, एक दिन दोनो लकड़ी लेने को जंगल मे गये,

परंतु रुद्रक तो रास्तेमे खेलनेको लग गया. और अपना कर्त्तव्य भी भूल गया दूसरा लकड़ी लेकर दुपहर को उसी रास्ते आया जहां रुद्रक खेल रहा था

रुद्रक उसको दूर से देख कर घबराया, और लकडी लाने को चला रास्ते मे एक बुड्ढी स्त्री को देखी जो अपने छोटे बच्चे को नदी के किनारे पर शीतल हवा मे बैठा कर रोटी खिला रही थी, पास मे एक लकडी की भारी भी पड़ी थी जिस को वो बिचारी प्रातःकाल से अटवी ( जंगल ) में जाकर बडे परिश्रम से ले आई थी. पडा हुवा मुफ्त का माल देख कर रुद्रक वहां शीघ्र जाकर, और वहां किसी को न देख कर, उस बिचारी बुड्डिया को मार डाली, और उस के बच्चे को रोते हुये वहीं छोड़ लकडी का भारा उठा कर तेजी से चला, और दूसरे रास्ते से निकल कर गुरु के पास जाकर बोला हे गुरुजी ! आपके माननीय छात्रके कर्त्तव्य सुनो, जिसकी आप रोज प्रशंसा करते हो ! मैं तो प्रभात मे ही वन में जाकर इतना श्रम करके लकड़ी ले आया हूं; आप का प्रिय छात्र दोपहर तक तो खेलता रहा और जब मुझे लकड़ी का बोझा लाते देखा तब वो घबराया, और तब वो अटवी ( जंगल ) में जाने लगा, रास्ते मे एक रंक ( गरीब ) वृद्ध स्त्री को मार उस की लकड़ी का बोझा उठा कर अब धीरे धीरे चला आ रहा है, और कम नसीब बुड्डिया का लड़का वहीं रो रहा है। इन की बातें हो ही रही थी कि अंगर्षि आ पहुंचा। उपाध्याय ने क्रोधित हो कर उस से कहा, हे दुष्ट ! तेरा काला मुंह कर यहां से चला जा। बिना कारण ऐसा कठोर वचन गुरु के मुह से सुन कर वो रोने लगा क्योंकि गुरु के सिवाय वहां पर उस का कोई भी रक्षक न था, वह दूर देश से पढने को आया था, तो भी गुरु को दया नहीं आई, और वह अंगर्षि रोता २ चला, उस की प्रकृति सौम्य होने से उस ने किसी का दोष नहीं निकाला परन्तु गांव के बाहिर दरवाजे से थोडी दूर जाकर वृक्ष की छायां में बैठ कर विचारने लगा। अहा ! चन्द्र की किरणों से अग्नि निकले ऐसे शांत गुरु के मुख से कठोर वचन निकले हैं, मेरा कुछ भी अपराध हुवा होवेगा. जिसे मैं नहीं जानता हूं; अरा ! ऐसे शांत गुरु को क्रोधी बनाने वाले मुझ को धिक्कार है। धन्य है ! ऐसे शिष्यों को कि जिन्हों ने अच्छे कर्त्तव्य से अपने गुरु को प्रसन्न किये हैं। धन्य है उन्हों को ! .

विरुद्ध है, ऐसे कृत्य श्रावक को छोड कर  दूसरो  को सुख देने वाले कार्य करना चाहिये किन्तु ये सात व्यसन  तो दोनो लोक विरुद्ध होने  से छोड़ने ही चाहिये।

द्युतचमांसंच  सुराच  वेश्या। पापर्द्धि चौर्य पर दार सेवा॥
एतानि सप्तव्यसनानि  लोके। पापाधि के पुंसि सदा भवन्ति॥ १॥

जुआ, मांस, मदिरा, वेश्या गमन, शिकार, चोरी, और पर स्त्री गमन ये सात बातें अधिकतर  पापी पुरुष  मे होती हैं ऐसे पाप छोड़ लोक प्रियता  के कारण दान, विनय शील मे दृढ होना चाहिये।

दानेन सत्वानि वशी भवंति। दानेन वैराण्यपि यान्तिनाशम्॥
परोपि बंधुत्व मुपैति दानात्। तस्माद्धि दानं सततं प्रदेयम्॥

दान से प्राणी वश  होते है, दान से  वैर नाश होता  है दान से दूसरे जनभी बन्धुओ की तरह कर्त्तव्य करते है  इसलिये योग्यतानुसार दान जीवोंको अवश्य देना चाहिये, जिससे, आप  धर्म  पाकर दूसरे  जीवो को  भी  धर्म का भागी बनाता है।

## ॥ सुजात कुमार की कथा ॥

चंपा नगरी मे एक मित्र प्रभ नामका राजा था, और वहां एक धन मित्र नगर सेठ था, और उसकी  भार्या धनाश्री थी इनके एक बडा  तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुवा, लोगो ने वा स्त्रियो ने  उसे जन्म से ही प्रसन्न होकर 'सुजात' सुजात कह कर बुलाते थे  इसलिये उसके मा बापो ने  भी उसका सुजात ही नाम रक्खा सुजात कुमार शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा  की तरह  बढ़ने लगा जब ज-वान हुवा तब भी कुचाल न चलकर अच्छे भले समान  वय के लडको  को साथ लेकर परोपकार करने लगा, भगवान् के मंदिर मे सब के साथ जाकर वीतराग के गुण गाने लगा और अपने अंगसे, कंठ से, धनसे पूजा सेवा करके आत्मा को पवित्र करने लगा, कभी  २ धर्माचार्य के  पास जाकर तत्त्व ज्ञान की धर्म कथाये  सुनना कभी २ एकांत मे बैठ कर धर्म चितवना करना, बाप से खर्च के लिये [illegible] पैसे लेता उससेभी वह सुजात कुमार अनेक गरीबों का कष्ट निवारण करता था इससे सर्वत्र उसकी महिमा होने लगी [illegible]

यही कहा करता था कि यहसब जैन धर्मका प्रताप है! इससे उसके
होकर अनेक पुरुष जैन धर्म मे राजी होकर देव मंदिर में जाना, गुरू
करना, परोपकार करना, वगैरे उत्तम कार्य्यों में तत्पर हुये, सर्वत्र उसी
प्रशंसा लोगों के मुंह से निकलने लगी, उस नगर मे धर्म घोष मंत्री की
प्रियंगु नाम की थी उसने दासियों के द्वारा उसकी प्रशंसा सुनकर
कह दिया कि जिस समय सुजात को रास्ते में देखो. उस समय मुझे
देना एक समयपर सुजात के उधरसे आने पर दासीओं ने उस सुजातको
को बताया, उसने और परिवार ने सुजात को देख कर और उस की रहनी करनी
सन्तुष्ट होकर सब परिवार सुजातकी प्रशंसा करने लगा जब मंत्री घरमें आ
तब सब के मुख से सुजात की बातें सुनकर मंत्री ने मन में सोचा कि
दुष्ट सुजात ने आकर मेरे घर में भी कुचाल की है! तो उसका उपाय
करना चाहिये यह सोचकर मंत्री ने राजा को एक अजान मनुष्य के
एक ऐसी चिट्ठी भिजवाई जिसके पढ़ने से राजा के मन में ऐसा खयाल
या कि सुजात राजद्रोही है, परन्तु अपने शहर मे उसको मारने से तो
साद पैदा होवेगा ऐसा विचार करके उसने विदेश का कार्य्य प्रसंग निका
कर सुजात को भेज दिया और साथ में पत्र दिया जिसमें लिख दिया
कि अवसर आने पर मार डालना सुजात उस पत्र को लेकर विदेश च
गया और वहां जाकर राजा को पत्र दिया; परन्तु वहां जो हाकिम था
बड़ा दयालु था उसने एकांत में सुजात को ले जाकर कहा कि तेरी मृत्यु
मीप है परन्तु मैं एक शर्त पर तुझे बचाऊं यदि तू मेरी भगनी के साथ
दी करे, कर्म के फल बिना भोगे नहीं छूटते यह कर्मफल मान सुजात ने मं
किया और शादी होगई, उसकी पत्नी के कोढ का रोग था तो भी सुज
ने पति धर्म पाल कर उसपत्नी की सेवा अच्छी तरह से कर समाधि से उस
धर्म रक्त बनादी, इसकी पत्नी ने मरने के समय तक शुभ कामना का
रक्खी जिससे स्त्री मर कर स्वर्ग में देव हुई और स्वर्ग से आकर अ
उपगारी जो सुजात था उसे हाथ जोड़ कर कहने लगा।

हे नाथ! आप की इच्छा क्या है सोही मैं करू! सुजातने कहा कि
कलंक मिट जावे और मैं इज्जत से बाप से मिलूं तो फिर दीक्षा लेऊं
देवता ने मित्र प्रभ राजा के नगर में जाकर उसके शहर का नाश क

ो आकाश मे एक बडी शिला तैयार की राजा ने उपद्रव देख हाथ जोड
र प्रार्थना की कि नगर का नाश न होवे, देवता ने कहा कि जो सुजात
निर्दोष है और तूने झूंठा कलंक देकर निकाला है अगर तू उसे पीछा बुला
र उसकी इज्जत करेगा तो सब बचेगे, राजा ने शीघ्र बुलाने का प्रबन्ध
किया सुजात को देवता ने उद्यान मे लाकर रक्खा, और राजा ने उसे
ड़ी इज्जत से घर को पहुचाया, माता पिता का दर्शन करके थोड़े रोज
ाद ही सुजात ने जैन धर्म की महिमा बढ़ा कर दीक्षा ली, और सुगति मे
या इस लिये लोक प्रिय होना प्रत्येक श्रावक श्राविका का धर्म पाने मे
अनमोल गुण है।

## ( ५ ) अक्रूरता पंचम गुण।

क्रूर पुरुषको क्रोध ज्यादा होता है मानभी अधिक होता है, दूसरो के छिद्र
शोधकर गुणीको भी दोषी बनाकर अपने आप धर्म प्राप्ति नही कर सक्ता है: इस
लिये सुगुरुभी उसे धर्म नही बताते है, और गुरु महाराज दयासागर होकर बतावेतो
वो अच्छी तरहसे नही समझसक्ता और समझे तोभी अपनी अशांतिसे उसका
अनुष्ठान विधि अनुसार नही करता है कदाचित धर्मका अनुष्ठान विधि पूर्वक करभी
लेवे तोभी अपनी अभ्यन्तर शांति बिना उसे समाधि नही मिलती और बिना
समाधि के वह मोक्ष प्राप्त नही कर सक्ता इस लिये श्रावक धर्म पालने वालो
मे अक्रूरता का गुण होना चाहिये।

दृष्टांत:—एक ब्राह्मण कार्य प्रसंगात् गाडी लेकर माल लेने को दूसरे
गांव मे गया, रास्ते मे रेतीली नदियें आती थी ब्राह्मण ने देखी दी शक्ति
बिना विचारे ही एक दम बहुत सा माल भर लिया और लौटा, रास्ते मे
थोडी रेती वाली नदी में तो बैल पार कर गये परंतु बहुत रेती वाली नदी
में बैल थक गये, ब्राह्मण ने बैलोको मारना शुरू किया, बहुत मारने से भी बैल
न चले, और मारने से उनके शरीर में लोहू की धाराएं चलने लगी, और
वह ब्राह्मण भी थक गया, लेकिन प्राण बैलो के निकले वहां तक उसने
मारे पीछे घर को गया तब घर वालो ने उसे पूछा कि आज इतनी देरी
क्यों हुई? वो क्रोध में बोला कि बैलो ने मुझे बहुत सताया है। मेरा माल नहीं

कर मुझे ही दगा दिया है, घर वालों से सब बात सुनाई और पीछे लगा कि अब कसाइयों को ले जाकर इनकी चमडी उतराऊंगा, घर वाले ने उसका ऐसा दुष्ट स्वभाव जान कर घर वाले सब समझ गये और ने विचारा कि कोई दिन हमारी भी ऐसी ही दशा करेगा, इस लिये जाति के लोगोंको बुला कर सब बात जाहिर करदी, जाति वालों ने की जगह चांडाल समझ कर जाति से बाहिर कर दिया । इस लिये और क्रूर पुरुष को धर्म की प्राप्ति होनी दुर्लभ है कितने ही जन घर में दूसरों को घात ही बातमें सताते रहते हैं और घरवाले उसकी मृत्यु चाहते हैं कि कब पापी से हमारी मुक्ति होवे ऐसा विचारा पामर कहां से धर्म पा सके? कितने ही साधु पणे में भी अत्यंत क्रोधी होकर झगडे करते फिरते हैं और गुरु पश्चात्ताप करते हैं कि ऐसे दुष्ट को दीक्षा देकर सिर्फ कर्म बंधन ही सिर पर लिया है इस लिये प्रत्येक पुरुष को क्रूरता छोडनी चाहिये । अभ्यास से ही आदत सुधर सक्ती है ।

## ( ६ ) पाप भीरुता श्रावक का छठा गुण है ।

इस लोक में राज्य दंड और लोकापवाद को प्रत्यक्ष देख कर परलोक में पापों की शिक्षा अवश्य होवेगी ऐसा विचार ने वाला, श्रद्धालु पापभीरु पुरुषही धर्म पा सक्ता है और विवेक से विचार कर प्रत्येक कार्य करता है जिस से वह धर्म की अच्छी तरह से आराधना का और सुगति का भागी हो सक्ता है।

राजा श्रेणिक मगध देश में राज्य करता था उस समय राज ग्रही नगरी में काल सुरीक नाम का एक कसाई हजारों जीवों की हत्या कर धन बढ़ाता था किन्तु साथ साथ सातवी नार की में जाने के लिये पाप पुंज की गठड़ी बांध रहाथा, मरने के थोड़े समय पहिले उसके अनेक रोग हुये, और अग्नी में जलने की तरह उसके शरीर में पीड़ा होने लगी, उस कसाई का लड़का सुलस पूर्व पुण्य से सुशील और दयालु था, जिससे बाप के दुष्ट कृत्यों से घृणा करता था तो भी उस बाप की अंतिम अवस्था में समाधी होवे इस लिये सुलस ने अनेक शांति के उपाय किये किन्तु बाप के पाप के उदय से उन उपायों से अधिक से अधिक पीड़ा हुई जिससे लड़का घबराया और

और उसने अपना मित्र जो अभय कुमार नाम का राज पुत्र था और बड़ा मंत्री था उससे पूछा कि अब मैं क्या करूं ? लड़के की बात सुनकर अभय कुमार ने कहा कि तेरे बाप ने जो पाप किये हैं उसका कुछ फल यहां भोग रहा है उसे चंदन के लेप से शान्ति नहीं होवेगी, किन्तु जो दुर्गंधि का लेप करे तो शान्ति होवे, बेटे ने बाप की बिना इच्छा के ही शांति के लिये अशुचि पदार्थ का लेप कराया, इससे बाप को कुछ शांति हुई, तब वो शांति से मरा, और अपने कृत्यों का फल भोगने को नर्क मे गया. सुलस कुमार ने बाप का धन्धा छोड दिया और दूसरा धन्धा करने लगा, रिश्तेदारों ने उसे समझाया कि बाप का धन्धा मत छोड उसने कहा कि पाप का फल कौन भोगेगा ? लोगों ने कहा अपन सब बांट लेवेंगे। यह सुनकर सुलस ने अपने पैर पर कुहाड़ा मार कर घाव कर लिया और जोर से बोला आके भाइयो मेरा दुःख बटालो ! किसी ने दुःख नहीं लिया और बोले कि हम चाहते हैं कि बांटले परन्तु लेने का कोई उपाय नहीं है, तब सुलस ने कहा कि यहां देखते हुये भी दुःख नहीं ले सके तो परलोक में लेने को कैसे आवोगे ! ऐसा कह कर उस सुलस कुमार ने वीर प्रभु के पास जाकर जैन धर्म पाकर श्रावक के व्रतों को लेकर निर्दोष जीवन वृत्ति को निर्वाह करके वो स्वर्ग का भागी बना। बाप बेटों और रिश्तेदारों के दृष्टांत से आप लोगों को ध्यान रहे कि धर्म पालने से पहिले इस पाप भीरुता गुण को प्राप्त करो।

## ॥ सातवां अशठता ॥

अशठ पुरुष निर्मल स्वभाव का होता है वो किसी को [illegible] नहीं इसि-लिये लोग उसकी प्रशंसा करते हैं और उसके वचन पर विश्वास करते हैं, और जो कपटी शठ होता है वो कोई दिन अपराध न करे तो भी उसका रोज की बुरी आदत से लोग उससे डर कर उसका विश्वास नहीं करते जैसे कोई को सर्प न काटे तो भी सर्प के काटने के स्वभाव से ही उससे डरते हैं, कपटी ऊपर से मीठा भी बोले तो भी सब डर कर उससे दूर भागते हैं [illegible] ठग्गा समझ कर उसका विश्वास नहीं करते, [illegible] भी उसके मन पश्चात्ताप होने लगे है, इस लिये ऊपर से भी [illegible] [illegible] होवे [illegible]

भीतर भी जो निष्कपटी होवे वो तो धर्म रत्न का भागी हो सक्ता है क्यों कि दूसरों को मीठी बातों से रंजन कर, ऐसा सीधे चलने वाले विरले मिलेंगे।

एक प्रधान और राजा सच्चे गुरु की शोध में फिरते २ एक उद्यान पहुंचे वहां एक मौन धारी दिगम्बर परि व्राजक बैठा था जिसके समीप रत्ना के ढेर के सिवाय कुछ भी नहीं था और उसकी आसन की स्थिरता देख दोनों प्रसन्न होकर नमस्कार कर धर्म सुनने की इच्छा से बैठ गये परन्तु त्यागी ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया न बात की, तब राजा को अति भाव हुवा और प्रधान से पूछा कि इन्हें क्या देवे वा ऐसे महात्माओं की किस प्रकार सेवा करें ' प्रधान को उस परिव्राजक की स्थिति कुछ मालूम हो जाने से उत्तर दिया कि हे भूपते ! आपका कहना सच है कि ऐसे उत्तम पुरुषों की योग्य पर्युपासना करनी ही चाहिये ! परन्तु वे मुंह से नहीं बोलते न कुछ वस्त्रादि रखते, न उन्हें उनके शरीर की भी परवाह है, यदि उनके ध्यान बाद वे कुछ लेवें ऐसी राह देख कर बैठें तो भी निश्चय नहीं, कि उनकी समाधि पूरी होगी ! अथवा वस्त्र होता तो रत्न बांध कर जाते, ' अगर योंही छोड़ जावें तो कोई बदमास उठाकर चला जावे ! इसलिये मैं भी विचार में पड़ा हू ! राजाने कहा तब चलो ! समय व्यर्थ क्यों बरबाद करना इतना कह कर चलने लगे कि परिव्राजक ने मुंह फाड़ा ! और इशारा से सूचना दी कि आप इसमें डालो ! मंत्री ने थोड़ी रत्ना लेकर उसके मुंह में डाल कर बोला कि हे ठग शिरोमणी ' आपकी पर्युपासन रत्ना से अच्छी होगी, त्यागी को रत्नों के फन्दे में पड़ने की आवश्यकता नहीं है। मंत्री ने राजा को समझाया कि यह कोई पूरा ठग है जो त्यागी का वेष करके भोले लोगों को ठगता है, नहीं तो रत्नों की क्या आवश्यक्ता थी यदि जो रत्नों की जो आवश्यकता थी तो फिर वस्त्रादि त्यागने की क्या जरूरत थी ! इस दृष्टांत से आजसे बदमास वेष धारियों से न ठगाना, न बदमास वृत्ति से मनुष्य जन्म हार जाना किन्तु अशठता धारण कर धर्म रत्न को प्राप्त करना लौकिक कथा भी है कि:—

एक लड़का बात ही बात में हंसी कर करके आनन्द मानता था, तो भी लोग उसे बच्चा जानकर उसकी बातों पर ख्याल नहीं करते थे, लेकिन बड़े होने पर भी उसकी बुरी आदत न छूट सकी, एक दिन नौकर होकर जंगल मे भेड बकरीयें चराने लगा और दोपहर को जोर से बूम पाड़ २ कर बोला, शेर आया २ ! चोतरफ से लोग दौड कर आये और पूछने लगे कि शेर कहां है ! वो हंसकर बोला ! यह तो मेरी आदत है ! लोगों ने उसे पागल समझ विना कहे ही चले गये, परन्तु एक रोज जब सच्चा शेर आया उस दिन लडके ने कई बूमें पाडी तोभी लोगों ने उसकी हंसी की आदत समझ कर उसकी मदद कोई भी नही आये कमनसीब लडके की बकरी भेडीयों का नाश हुवा और उनको बचाने को खुद गया तब शेर ने उसे भी मार डाला इसलिये बच्चों की हंसी की आदत भी छुड़ानी चाहिये ।

## ( ८ ) सुदाक्षिण्य.

जो बडे लोग अच्छी बातो के करने की कहे उसकी करने को आदत रखनी और अपना स्वार्थ बिगडे तो भी दूसरों का भला करना ।

## ॥ क्षुल्लक कुमार की कथा ॥

अयोध्या नगरी में राजा पुंडरीक राज करता था, और उसका छोटा भाई कुंडरीक था, यशोभद्रा नाम की उसकी देवांगना जैसी भार्या थी, राजा ने उसको देखकर प्रसन्न होकर उससे कुमार्ग मे वर्तन करने की इच्छा से दासी के साथ बुलाई. छोटे भाई की वहु ने इस बात की उपेक्षा की तो भी राजा ने दुष्टता से उसके पति को मरवा दिया, अपने पति का मृत्यु जानकर छोटे भाई की वहु सतीत्व की रक्षा करने को देशांतर में भाग गई वहां जाकर रास्ते में साध्वीओ को देखकर उनके पास जाकर अपना दुःख सुनाया साध्वीओं ने संसार की असारता पर कुछ समझाया जिससे यशोभद्रा ने दीक्षा की प्रार्थना की परन्तु यशोभद्रा के उदर में थोडे दिन का गर्भ था उसकी सूचना उनको नही दी, थोडे दिन बाद जब गर्भ के चिन्ह प्रगट दीखे तब साध्वीओं ने पूछा कि ऐसा कपट तैंने क्यों किया है ! यशोभद्रा ने कहा मेरा

गुना क्षमा करेंगे, आप दीक्षा नहीं देते और मेरे पीछे यदि दुष्ट राजा के आदमी आते तो मेरे सतीत्व का नाश होता इस हेतु से मैंने इस बात को गुप्त रक्खी थी साध्वीओं ने एक दयालु पुण्यात्मा श्रावक ने उनको ठहरने के लिये घर दिया था उसे बुलाकर समझाया उसने सब इतजाम करके उसके गर्भ की रक्षा की और कुछ दिन बाद पुत्र का जन्म हुआ पुत्र के जन्म के होने पर साध्वी ने फिर प्रायश्चित ले करके साध्वी के भेष में रही और लडका श्रावक के पास ही रह कर बडा हुवा, और फिर वो क्षुल्लक नामसे प्रसिद्ध हुवा आठ वर्ष का होने पर साधुओं ने उसे समझाकर साधु बनाया, वो पीछे १२ वर्ष बाद युवावस्था की दुर्दशा से पतित होनेको तैयार हुआ तब माता ने समझा कर दाक्षिण्यता से साधु भेष में ही रक्खा दूसरे वक्त माता की गुरुणी ने तीसरी वक्त आचार्य ने समझाकर रक्खा, तो भी संसार की वासना दूर न हुई और वो अपने घर को जाने को तैयार हुवा तब माता ने उसको समझाने के लिये रत्न कंबल और राज्य चिन्ह की मुद्रिका जो श्रावक के घर में रक्खी थी वो दिलवा कर बेटे को कहा कि तुझे जो राज्य की इच्छा हो तो सुख से इन दोनो वस्तुओं को ले कर जा, अयोध्या में तेरे बाप का बडाभाई तुझे राज्य देगा. वो कुमार चला और कोई दिन श्याम के वक्त अयोध्या में राज्य मैदान मे आया जहां पर नटणी नाटक कर रही थी और राजा वगैरा सब देखने को आये थे नटणी की सुन्दरता से और हाव भाव से मन तृप्त नहीं होने से राजा इनाम नहीं देता था और रात्रि अधिक जाने से लडकी थक कर समाप्त करना चाहती थी और पग की आवाज भी धीमी होने लगी उसकी माता ने देखा कि सब किये हुये खेल का नाश होगा इस लिये मधुर स्वर मे एक गाथा बोली जिसका अर्थ यह था कि इतनी देर श्रम उठा कर जो लाभ का मोका प्राप्त किया है और इस समय जो तू ढीलेगी तो वो व्यर्थ जायगा और फिर जिन्दगी तक रखडना पड़ेगा. फिर ऐसा आने का मोका कचित् होता है। इस लिये प्रमाद छोड़ कर चालु रख, नटणी ने नृत्य चालु रक्खा उस समय जो राज कुमार आया था उसको उस गाथा से इतना आनंद होगया था कि राज्य मर्यादा छोड़ कर

( पृष्ट २१ वें में आठवा गुण का वर्णन पूरा कर उसे पढ़ो। )

## ॥ श्रावक का नवमा गुण लज्जालुता ॥

जो लज्जालु होता है वो थोड़ा भी अकार्य नहीं करेगा, सदा चार का आदर कर उसे अच्छी तरह पालन करता है, और प्राणांत कष्ट आने पर भी उसे छोड़ता नही है।

एक नगर मे चंड रुद्र नाम के आचार्य आये वे चारित्र में दृढ़ होने पर भी क्रोधी अधिक होने से निरंतर एकांत में बैठ सूत्र पठन और स्मरण में रहते थे एक दिन एक शेठ का पुत्र रात को मित्रों के साथ साधुओं के पास आया उस वक्त नव विवाहित युवक के मित्रों ने बाल चेष्टा से कहा साधुजी महाराज ! हमारा यह मित्र वैरागी होकर आपके पास दीक्षा लेने को आया है आप उसे साधु बनादो। चेले समझ गये कि ये ठट्ठा करते हैं उत्तर नहीं दिया वारंवार मित्रों ने चेलों को सताये अतएव शिष्यों ने कहा कि आप हमारे गुरु महाराज के पास ले जाओ ऐसा सुन वे भीतर कमरे में जाकर गुरु जी से भी वही कहने लगे, गुरु जी चुप रहे किंतु मित्रों ने परणे हुए लडकेको आगे कर लीजिये महाराज! इसे चेला बनाइए! तो भी गुरुजी न बोले तब उन्होंने धक्का देकर उस युवक को गुरु के पास भेजा गुरु ने लड़के को पूछा क्यों तू दीक्षा लेना चाहता है ? उसने कहा हां, तब ठीक है ऐसा कह कर एक दम गुरु ने क्रोधित हो उसे पास बैठा कर लोच करना शुरू किया मित्र घबराये और भागे जाते जाते बोले कि हम तो हांसी करते थे आप उसे छोड़दो गुरुजी ने लोच करके कहा यदि हांसी की है तो उसका यह दंड है अब जैसी तेरी इच्छा, नव युवक विचार ने लगा कि अब घर को किस तरह जाऊं? मा बाप भी क्रोधी होंगे मैंने साधुओं को व्यर्थ सताये तो अब घर को क्यों जाऊं? मुंड होकर लोगों को मुंह कैसे दिखाऊं ? और जो गुरु के सामने दीक्षा लेनी स्वीकार किया है तो उसे पार उतारना ही चाहिये।

सज्जन पुरुषों के वचन पत्थर में खुदे हुए लेख की तरह अमिट होते हैं ऐसा निश्चय कर वो बोला कि हे गुरो ! आप उन लड़कों के कहने पर ख्याल न कीजिये मैं तो सच्चा ही आपका शिष्य हुआ हूं और वो

उतारूंगा आप अब यहां से विहार करें क्योंकि आपने मुझे चक्रवर्ती पद से भी अधिक उत्तम पद पर स्थापन किया है किंतु संसार में रहने से बाप और सासु ससुरे को यह बात नहीं रुचेगी वे विघ्न कर मुझे घर ले जावेंगे और जैन धर्म की हीलना करेंगे गुरुने कहा अंधेरे में दीखता नहीं है वो बोला मैं उठा लेता हूं दोनों उप करण लेकर रास्ते में गड्ढे आने पर चेला ठोकर खाने लगा तब पीडा होने से गुरु ने के माथे पर मारना शुरू किया तो भी लडका हिम्मत रख चलने लगा ठोकर खाने पर गुरु ने उसे अधिक पीट कर कहा हे दुष्ट ! ऐसा टेढ़ा क्यों लेता है ! तो भी चेला मन में विचारने लगा ? कि मैं कैसा अधम गुरु की सेवा के बदले ऐसे दुख देने को टेढे रास्ते में ले जाता हूं ? इस पवित्र भावना में चलते हुये और ठोकरें खाने से पग में लोहू नीकल ने से और किये हुये मस्तक में मार पड़ने से बहुत पीड़ित होने पर भी क्रोध न करने के उसने थोडी देर में क्षपक श्रेणिक प्राप्त की और केवल ज्ञानी हुआ सब प्रत्यक्ष दीखने से वह सीधा चलने लगा गुरु बोले अब कैसे सीधा है ! उसने कहा आपकी कृपा से मुझे दीखता है गुरु बोले मुझे क्यों नहीं खता वो बोला कि आपके प्रताप से, ज्ञान हुआ है गुरु ने पूछा कि केवल हुआ है उसने कहा हां गुरु नीचे उतर कर पश्चात्ताप करने लगे कि मैंने अधम कृत्य किया है ऐसे उत्तम पुरुष को व्यर्थ दंड दिया है। क्या साधुता थी कि ऐसे कोमल लोच किये हुए सिर पर मैं ने पीटा? ऐसा विचार करने से उनको भी केवल ज्ञान हुआ दोनों जगत्पूज्य हो आठ कर्म नाश कर क्रम से मुक्ति को गये इस दृष्टांत से यह बताया है कि लघु पुरुष अनर्थ नहीं करना, और कदाच भूल से दूसरों को पीडक होना भी पीछे इस सुशिष्य की समान अनेक कष्ट आने पर भी अपना दोष भविष्य में दूसरों को पीडक नहीं होता व्यवहार में भी जो जो वचन निकले वो पूर्णतया विचार कर निकाले और निकले बाद उसे बराबर क्योंकि उसके वचन से दूसरे पुरुष विश्वास कर दूसरों से व्य है उस वक्त जो वो कह देवे कि मैंने तो हांसी में कहा था तो सुकर बांध में फंस जाते हैं।

ई दिया उसने जहां रत्न कंबल फेका कि फिर औरो ने भी दान दिया तब राजा को बिना इच्छा ही दान देना पड़ा और नटणी का भाग्योदय खुल गया राजा ने दान देकर उसी समय मर्यादा उलघन करने वाले कुमार को पकड़ कर प्रभात मे लाने की आज्ञा दी. आते ही राजा ने पूछा कि तू कौन है ! और हमारे पहिले दान देकर मर्यादा भग क्यो की थी ! वो बोला कि मै आपका भतीजा हूं और मेरी माता जो साध्वी हुई है उसने मुझे यहां भेजा है । और प्रथम दान देने का सबब यह है कि वर्षो तक चारित्र मैने पाला और अब थोड़ी अवस्था बाकी रही है ऐसे समय मे उसे छोड़ चारित्र भ्रष्ट करने के लिये राज्य के लोभ मे आया था अब इस गाथा से मुझे शिक्षा मिली है कि थोड़े में चारित्र का लाभ क्यों हारना जो चारित्र मुक्ति तक पहुचाने वाला है । राजा बोला कि तू आया है तो अब राज्य ले. आग्रह करने पर भी उसको स्पृहा न हुई तब राजा चुपरहा दूसरो को पूछा कि आपने क्यो दिया ! एक बोला कि मै दुष्टो से मिल आप का द्रोह करना चाहता था किन्तु उस गाथा से मुझे बोध हुवा कि आज तक राजा का निमक खाकर अब आखिर अवस्था मे यह क्या करता हू, औरदूसरे दोनो ने ही अपने दुष्ट कृत्योकी समालोचना की. और तीनोने क्षुलक कुमार के पास से दीक्षा लेने को राजा से आज्ञा मांगी और आज्ञा मिलने पर दीक्षा लेकर सुगति के भागी हुये इस दृष्टांत से यह बोध लेना चाहिये कि जो कोई बडो के दाक्षिण्यता से भी धर्म मे रक्त रहता है और विना इच्छा भी धर्म पालता है वो कोई दिन सीधा मार्ग पर आ सकेगा और दूसरो को भी तार सकेगा ।

## (१०) दयालुता.

धर्म का मूल दया है उस दया के लिये ही सब महाव्रत हैं जिनेश्वर के सिद्धांतों का रहस्य यही है कि और जीवों को मन, वचन, काया से अपनी तरफ से शांति उपजानी. और दयावान् मनुष्य ही धर्म पाकर उस की रक्षा करेगा इसलिये धर्म रुचि का दृष्टांत करते हैं एक जागीरदार का पुत्र गृहवास मे जीवो को दुःख देना देखकर दयालुता से वैरागी होगया था. ताप—

होने से अपने निर्वाह के लिये वन मे जाकर जमीनमें से कंद खोदकर ला पडता था, जमीन बोना पडता था, बगीचे में पानी डालना पड़ता था ... को काटने पडते थे वो देखकर उन हरी वनस्पति में जीव जानकर उन्हें दुःख होता देखकर वहां से भी घबगाया और विचारने लगा कि कब मैं जीवों को शांति देने वाला होजाऊं ! चतुर्दशी के दिन सबने उपवास ... और वनस्पति हरी को दुःख नहीं देने की सब को आज्ञा हुई उसको आनन्द हुवा कि ऐसा सदा ही होवे तो बहुत अच्छा, फिर और साधुओं को ... रास्ते से देख कर बोला कि आप आज वन में क्यों जाते हो ! आपने ... सब जीवों को अभयदान दिया है और आप वनमे क्यों जाते हो ! एक साधु ... कहा हे भद्रक ! हम साधु है हम वन में जाकर हरीयाली वगैरह ... दुःख नही देने ऐसा सुननेसे उसको बहुत ही आनन्द प्राप्त हुआ फिर ... को कह कर उनके पास साधु धर्म स्वीकार किया, साधूओ ने उसे कहा, साधु ... की तरह फल नहीं खाते है वे तो ग्रहस्थी की दी हुई रोटी ऊपर ही सन्तोष ... दिन गुजारते है. ऐसा प्रत्यक्ष देख कर निरतर साधुधर्म की प्रशंसा कर सद्... का भागी हुआ इसलिये श्रावक को प्रथम दयालुता स्वीकार करनी चाहिये ... श्रावक के व्रत लेने चाहिये जिससे अर्थ दंड और अनर्थ दंड का विवेक ... सकेगा, एक पत्ते की जरूरत हो तो दूसरा कदापिन तोड़ना चाहिये क्यों कि इसमें भी जीव हैं और जीवों को दुःख नहीं देना यही धर्म है. कितनेक ... दंभी जान बूझकर बिना समझे हरीपर चलते है, पानी में कूदते हैं; आग ... जाते है, काड़ी देकर घास फूस को जलाते हैं उनकी जरा गमत में ... छोटे जीवों का नाश होता है. ।

## श्रावक का ११ वा गुण मध्यस्थ सौम्य दृष्टि।

जिसे कोई भी दर्शन धर्म का आग्रह नहीं है वो पुरुष सत्य ... जान सक्ता है, और विवेक चक्षु से अनेक मतों का रहस्य जान उस में से ... खेंच सक्ता है, और सार खेंच कर गुणों का अनुरागी और दोष का त्यागी हो सक्ता है । और सत्य पक्ष को स्वीकार करके भी दूसरे मत वालो पर

छोड़ कर के उन पर भी सोम दृष्टि रख उनको शांति देता है आज के समय में जगत में अपने मंतव्य को सच्चा मान दूसरो के खंडन के आक्षेप के ट्रेक्ट निकाल कर परस्पर द्वेष वढाते है वो वहुत बुरा है सरकार उन्हें दंड करती है, कितावो को रद्द कर दी जाती ~~जाती~~ है, समय और धन का नाश होता है, बुद्धि का दुरुपयोग होता है, इस लिये भव्यात्माओं को ऐसे झगड़ों से हमेंशा दूर रह कर आत्महित करना चाहिये इस गुण ऊपर।

## सोमवसु ब्राह्मण की कथा ॥

सोमवसु ब्राह्मण को परिवार के गुजारा के लिये दुकाल में एक शुद्र का धन लेना पड़ा उससे उसे भी वड़ा पश्चाताप हुवा और उसका प्रायश्चित लेने को गुरू शोधने को चला रास्ते में एक वावा मिला उसे पूछा कि आप क्या तत्व मानते है वो मठवासी वावा वोला कि गुरू महाराज जव मरगये तब उन के पास हम दो शिष्य थे, उस समय गुरूजीने हमें कहाथा कि मीठा खाना, सुख से सोना और लोक प्रिय होना, किन्तु हम दोनों उनसे अधिक पूछना चाहते थे किन्तु इनका देहान्त होगया जिससे हम दोनो अलग हो गये, मै तो यहां रहता हूं और दूसरा शिष्य दूसरी जगह है, मै यहां रह कर मत्र, औषध से लोगों का चित प्रसन्न करता हूं, जिससे वे मीठे भोजन देते है, और मैं खाकर सुख से सोता हूं, सोमवसू को वो वात अच्छी न लगी जिसके गुरू के वचन में क्या परमार्थ है वो ढूंढने को उसके गुरू भाई का पता पूछा उसने वताया और वहां से सोमवसु चला, वहां जाकर उससे पूछा उस समय कोई गृहस्थी उसे नोता देकर जीमने को बुलाने को आया था तो वो वोला कि आज हमारे यहां एक अतिथि आया है गृहस्थी वोला उसे भी ले चलो, दोनों साथ गये मिष्टान्न खाकर आए और रात को शास्त्र पढ़ कर आनन्द से सो गये प्रभात मे सोमवसु को समझाया कि मै एक दिन मीठा भोजन खाता हू और दूसरे दिन उपवास करता हू गुरू के वचनानुसार मीठा खाना हूं और उपवास से भूख भी दूसरे दिन अच्छी लगती है जिससे सादा भोजन भी मीठा लगता है और किसी के पास कुछ लेता नहीं जिससे लोग प्रिय हो गया हूं सोमवसु को उससे पूरा संतोष नहीं मिला जिससे पाटली पुत्र ( पट-

और उनके वचनों का परमार्थ पूछा उसी समय एक छात्रने पंडित जीसे पूछा के मैंने अपने गुरुजी की स्त्री का स्पर्श किया उसका क्या प्रायश्चित है? पंडित जीने कहा कि गरम लोहेकी पुतली से स्पर्श ( आलिंगन ) करो। गरम पुतली लगाकर जहां लडका स्पर्श करने लगा कि तुर्त पंडितजीने रोका कि बस। हो गया प्रायश्चित। लडके की धैर्यता की सब प्रशंसा करने लगे।

सोमवसु भी पूछने लगा कि मेरा यह दोष है उसका मुझे प्रायश्चित दो, और पूर्व के तीन वचनों का परमार्थ समझावो कि मीठा खाना, सुख से सोना लोगप्रिय होना वो क्या है।

पंडितने उत्तर दिया कि देखो यह मट्टी के दो गोले है उनमें भीतको कोन लगता है? सूखा वा गीला? सोमवसु बोला कि गीला! पंडितने कहा कि ख्याल रखो कि इस तरह संसार में ममत्व से पाप होता है इसलिये राग छोड़ सोमवसु बोला ठीक, चारित्र लूंगा अब तीन वचनों का परमार्थ समझावो, पंडित बोला कि। जो सर्वथा त्यागी है, उसके पास दीक्षा लो वो समझावेगा. तो भी सोमवसुने पूछा तब पंडित बोला कि जो राग द्वेष रहित आरंभ पाप के त्यागी शुभ ध्यान में रक्त होकर सोता है वो सुख से सोता है, और भवराकी तरह गोचरी लाकर निर्दोष वृत्ति से जीवन गुजारने से परभवमें सद्गति के सुख भोगता है, और जडीबूटी मंत्र चमत्कार विना ही परलोकके हितार्थ रक्त रहता है वो सब उत्तम लोगोंको माननीय वंदनीय और प्रिय होता है न किसी के धन मालकी वांछा करता है! ऐसे गुरुकी शोध मे सोमवसु पंडितकी रजा लेकर चला, रास्ते मे एक उद्यान मे सुघोष गुरु मिले. उनसे मिल बात चित की गुरु ने समझाया रातको उनके पास ही सोगया मधरात के समय वैश्रमण (कुबेर) लोगपाल आया और सुघोष आचार्य को वंदन कर बोला कि आपने जो सूत्र पढा उससे मेरा चित्त प्रसन्न हुआ है; इसलिये आज्ञा करो कि मेरा क्या प्रयोजन था! क्या चाहते हैं, आचार्यने कहा कि प्रयोजन नहीं है. सिर्फ सूत्रोंको याद करना और उसमें रात्रिका निर्वाह करना इसलिये सूत्र पढा था आपको धर्म लाभ हो, कुबेर वंदन कर अदृश्य हुआ. आचार्य की निस्पृहता देख सोमवसु को स्थिरता होगई और परिचय से मालूम भी होगया कि जैसे बोलते हैं वैसा पालन करने वाले भी हैं. उसने वहां ही दीक्षा ली और सद्गतिका भागी हु-

आ, इस दृष्टांत में यह बताया है कि प्रथम अच्छे गुरुका शोध करनेमें म
ध्यस्थता गुण चाहिये कदाग्रही प्रथम मे ही आग्रह रखकर रागी होकर दो
ष नही देखता है और पीछे गुरु के दोप शिष्य को दुःख दायी होते हैं इस
लिये निर्दोष ज्ञानी गुरु के चरणकी सेवा करने पहले मध्यस्थ सौम्य दृष्टि ह
ना आवश्यक है. किंतु अच्छा धर्म पानेबाद दूसरोंको कटाक्ष वचन नहीं क
संतोष से समझाया न समझे तो भी आप क्रोध न करें।

## ( १२ ) गुणानुरागी होना

श्रावक धर्म पाने पहले गुणानुरागी होना चाहिये. जिससे वो गुणी का
पक्ष कर गुण रहित की उपेक्षा करे. और पीछे गुणों को लेकर उसकी र
करके दिन प्रतिदिन गुणों की वृद्धि करे।

कोई ऐसा भी कहते हैं कि—

शत्रोरपिगुणा ग्राह्या, दोषा वाच्या गुरोरपि।

अर्थात् शत्रु से भी गुण लेना, और गुरु के भी दोष को प्रगट करना इस
वचनानुसार दूसरोंकी निन्दा करनाभी ठीक है उनको यह उत्तर हैकि निन्दा करने
वाला जितना समय व्यर्थ करेगा उतने समयमे निन्दा न करनेवाला अधिक गुण
प्राप्त कर लेवगा और निन्दकको पीछे व्यर्थ क्लेश भी बढता है इसलिये समाधि
वांछक पुरुषो को दूसरो के दोषोंको देख उसकी उपेक्षा करनी चाहिये, जैसे कि कर्म
वशात् किसी ने दुराचरण किया उसे समझाना ठीक है न समझे तो जगह
उसकी निन्दा न करनी न उसका संग वा प्रशंसा करनी उसे उपेक्षा कहते हैं
वो उपेक्षा धारण करनी क्योंकि-

सन्तोप्य सन्तोपि परस्प दोषा, नोक्ताः श्रुता वा गुणमात्र हन्ति।
वैराणि वक्तुः परिवर्धयान्ति, श्रोतुश्च तन्वान्ति परां कुबुद्धिं॥

और भी अधिक दोषी जनों को देखकर मन में चिंतवना करे कि "अ
नादि काल से जीव दोषों से भरा है, किन्तु जो गुण पाना वोही दुर्लभ है
इसलिये किसी में गुण देखने में आये वोही आश्चर्य है ! दोष तो हैं ही ! उस
में निन्दा क्या करनी ! बालक में मंद बुद्धि होना आश्चर्य नहीं है किंतु उसमें

तीक्ष्ण बुद्धि होनाही आश्चर्य जनक है। कुबुद्धि होना मुश्किल नहीं है, सुबुद्धि प्राप्त होनी ही मुश्किल है ऐसा समझ दोषों की उपेक्षा कर गुणानुरागी होना, लौकिक में गुण ये हैं कि दूसरों का विनय करना और दूसरों का भला करना है वे ही लोकोत्तर गुण, होते है और त्याग वृत्ति, तथा सम्यक् दर्शन प्राप्त कर और निरीह होकर मोक्षार्थ के लिये ज्ञान पढ चारित्र लेना इसलिये लौकिक लोकोत्तर गुण जिसमें अधिक हो उसका संग कर आत्महित करना चाहिये ऋषभदेव प्रभु का जीव जो धनासार्थवाह था उसने मुनिराजों की सेवा करके दान देकर गुणानुराग कर सम्यक्त्व प्राप्त किया, बाद में तीर्थंकर पद पाकर अनेक जीवों को बोध देकर इस अवसर्पिणी काल मे प्रथम धर्मोपदेशक होकर मोक्ष में गये जिनको जैन वा जैनेतर ऋषभदेव नाम से स्मरण करते है. हेमचंद्राचार्य भी लिखते है कि—

> आदिमं पृथिवीनाथ, मादिमं निष्परिग्रहं ।
> आदिम तीर्थनाथं च ऋषभ स्वामिनं स्तुमः ॥ १ ॥

## ( १३ ) सत्कथक.

जो आदमी अशुभ कथा करेगा उसका विवेक रत्न नष्ट होगा [illegible] मे मलिनता होगी इसलिये स्त्री, भोजन, देश और राज कथा छोड़नी चाहिये।

स्त्रीयों की कथा करने से दुराचार की वृद्धि होती है, भोजन की कथा से घर के भोजन में संतोष नहीं होता, देश कथा से सर्वत्र घूमने की [illegible] होती है राज्य कथा से राज द्रोह का प्रसंग आता है, इस लिये ऐसी कथाओं को छोड़ कर महात्माओं की धर्म कथा मे राग धरना जैसे कि [illegible] परोपकार के लिये राज्य वैभव को भी छोड़ दीक्षा [illegible] और दुष्टों ने अनेक दुःख दिये तो भी उन पर क्रोध नहीं किया [illegible] ज्ञान पाकर मोक्ष मे गये आज तक उनका ध्यान [illegible] करता है, मंदिरोंमे लाखों रुपये खर्च कर [illegible] स्थापन कर उनका पूजन करते है [illegible] पवित्र करते है [illegible] में २० तीर्थंकर [illegible]

है। देवता इन्द्र बहुमान करते है उनका च्यवन ( गर्भ में आना ) जन्म, दीक्षा केवल ज्ञान और निर्वाण (मोक्ष गमन) कल्याण रूप होने से पांच कल्याणक माने जाते है उन दिनों मे गुणार्थी, तपश्चर्या कर जाप करते हैं चैत्र सुदी १३ के दिन महावीर प्रभु का जन्म होने से जगह जगह महावीर जयंती होती। पोष वदी १० को पार्श्वनाथ प्रभु का जन्म होने से बहुत से लोग एकासना वा आंबील का तप करते है. श्रावण सुदी ५ के दिन नेमिनाथ प्रभु का जन्म होने से लोग उपवास करते है. उन जिनेश्वरों के कल्याणककी तिथिएं पढ़ रहे इस लिये कल्याणक तिथिओं की टीप छपाकर मंदिर वगैरह में लगाते है वा घर में रखते है, जिससे ख्याल रहता है कि अहो ! आज उन जिनेश्वर का अमुक कल्याणक है ! धन्य है मेरामनुष्य जन्म ! कि मै आज उन पवित्र पुरुषों का स्मरण कर रहा हू। ( कल्प सूत्र का हिंदी भाषान्तर पढो )

जैन में तीर्थ दो प्रकार के है एक स्थावर तीर्थ, और दूसरे जंगम तीर्थ साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका, धर्म के अग होने से और उनमें रह कर तिरना होता है इस लिये उसे तीर्थ कहते है ऐसे ही जहां तीर्थकर का कल्याणक हुआ हो, वा जहां पर उन्हों ने ध्यान किया हो उपदेश दिया हो वहां पर मंदिर बनाते है वहा जाकर भव्यात्मा अपने आत्मा को पवित्र करते हैं उससे भ्रातृ प्रेम बढता है तीर्थो की यात्रा मे आने वाले मुनिराजों का दर्शन और धर्म श्रवण भी होता है घर से निवृति होती है पाप व्योपार छूट जाता है, इससे वहां जा कर भव्यात्मा तिरते है ।

इस लिये उसे स्थावर तीर्थ कहते है. ऐसे तीर्थ लौकिक में भी हैं परंतु जैन में वैराग्य दशा अधिक होने से वीतराग की जहां मूर्त्ति वा चरण हो वहां ही जाकर ध्यान करने का गुण होने से उनके तीर्थ लोकोत्तर कहे जाते हैं जैसे कि

आबु अष्टा पद गिरनार, संमेत शीखर शत्रुंजय सार ।
पंचे तीरथ उत्तम ठाम, सिद्ध थया तेने करुं प्रणाम ॥

इसके सिवाय और भी तीर्थ महात्म्य की कितावों में उनका वर्णन है शास्त्रों मे भी लिखा है कि ऐसे तीर्थों में जाने से भव्यात्माओं का दर्शन मिलता है होता है अर्थात धर्म श्रद्धा अधिक होती है।

श्रावकों को सत्कथा निरंतर श्रवण करने को मिले इस लिये गणधर भगवंतों ने प्रभु के पास जो जो वचन सुनेथे उनमें महान पुरुष के चरित्रों को भी सूत्रों में लिखे हैं ज्ञातासूत्र कथाओं से विभूषित है साथ साथ इस दृष्टांत का सार लेना भी बताया है विपाक सूत्र में धर्मी और पापियों के १०-१० दृष्टांत बता कर पुण्य पाप के यहां पर वा दूसरे भव में क्या फल भोगने पडते है वो अच्छी तरह बताये हैं रायपसेणी सूत्र में सूर्याभ देव का दृष्टांत बता कर उसका तीन भव का वर्णन बताया है धर्मोपदेश के मुख्य अधिकारी साधु होने से वे साधु गाव २ शहर २ फिर कर धर्म सुनाते हैं।

इनकी गेरहाजरी में उत्तम श्रावक भी धर्मोपदेश के ग्रंथ सुना सके इस लिये अनेक चरित्र वा रास भी बनाए है आंबिल की ओली में श्रीपाल चरित्र सुनाते है जिसमें मयणा सुंदरी ने कोढिया पति का भी सन्मान कर सतित्व पाल कर धर्म के प्रताप से पति को निरोगी बनाकर पति को धर्म में जोड़ कर उसका बापका राज्य पुनः दिला दिया है, और जिसने अपने बापको भी अपने उत्तम वर्ताव से चकित किया है उन बातों से चाहे ऐसा कठोर हृदय वाला पुरुष वा स्त्री भी धर्मी हो जाते हैं इस लिये ऐसे उत्तम कथा के ग्रंथ रत्न रूप होने से उनकी बहु मान्यता कर जो पढते हैं वा सुनते हैं वे भी धर्मभागी हो सक्ते है क्योंकि उनके विवेक चक्षु खुल जाते है।

## ( १४ ) सुपक्षयुक्त

धर्म रक्त सदाचारी परिवार वाला पुरुष विना विघ्न धर्मपाल सक्ता है और उसे धर्म कार्यमें उसका परिवार सहायक होने से अच्छी तरह आराधना होने से मुक्ति तक पहुंच सक्ता है।

अर्थात् घर में नोकर भी सदाचारी होना चाहिये और अपने लडके लडकी का संबंध भी सदाचारी धर्मात्मा गृहस्थीओं के लडकी लडके से संबंध करना चाहिये कि पीछे पश्चात्ताप करना न पडे।

पुर वर्धन नगर में [illegible] सेठ रहता था इसकी [illegible] से प्रभाकर पुत्र हुआ इसका [illegible]

महाधन नामका एक सेठ राजग्रही नगरीमें रहता था उसकी भार्या सुभद्रा नाम की थी उसके चार सुशील पुत्र धनपाल, धनदेव, धनगोपं, धनरक्षित नाम के थे. वे सभी ७२ कला युक्त होने पर भी अपनी सौजन्यता से लोगों को प्रसन्न करने वाले थे तोभी बूढा सेठ बिचारने लगा कि भविष्य में उनकी भार्या उनका धनका दुरुपयोग न करे और सब मिलकर घर में शांति मे रहे इसलिये उनकी परीक्षा कर उनके घर का भार देना चाहिये ऐसा निश्चय कर अपने रिस्तेदारों को एक दिन नोता देकर जिमने बुलाया वे सभी आये तब जिमा कर उनके सामने पुत्र बधूओ को बुलाकर मूठी मूठि अनाज दिया कि उनको रखो जब कार्य पडेगा तब मै तुम्हारे से पीछा लूंगा जो "उज्झिता" थी वो बिचारने लगी कि ऐसा अनाज घर में बहुत भरा है, क्यों रखना, उसी समय घर में जाकर अनाज को फेंक दिया दूसरी "भक्षिका' नाम की थी वो बिचारने लगी कि अनाज को व्यर्थ क्यो फेकना ! घर में जाकर खा गई, तीसरी रक्षिका थी उसने बिचार कर सदूक में संभाल कर रख दिया चौथी जो रोहिणी थी उसने बिचार कर अपने बाप के वहां बोने को भेज दिया।

थोड़े वर्ष जाने बाद इसी तरह रिस्तेदारों को जिमा कर सब के सामने बहूओं के पास वोही अनाज मांगा चार बहूओ ने पास आकर अनाज देने के समय तीनोने एक एक मूठी पीछा दिया किन्तु चोथी बहू बोली यदि आप को अनाज पीछा चाहिये तो मेरे बाप के वहां से मंगालो किन्तु गाडे भेजकर मंगाना सेठने चारों को सत्य २ बात कहने को कहा उनका उत्तर सुनकर उनके योग्य घर में कार्य दिया और कहा कि जो आप उसे उलंघन करोगे तो मेरे धन का मालिक नहीं हो सकोगे ! उज्झिता को घर का कूडा निकाल फेकने को दिया, भक्षिका को रसोई बनाने का, और रक्षिकाको घरको घेना हीरामाणिक वगैरह दिया और रोहिणी को घर की स्वामिनी बनाकर उसे सब अधिकार दिया इस दृष्टांत से मालुम होगा कि दीर्घदर्शीपना जिसमें ज्यादा था उस बधू को सब का स्वामित्व मिला ऐसे ही दीर्घदर्शी पुरुष इस लोक मे धर्म पाकर कीर्ति बढाता है परलोक मे मुक्ति का अधिकारी होता है !

## ( १६ ) विशेषज्ञ गुण का वर्णन

विशेषज्ञ प्राणीयों का वा जड़ पदार्थों का गुण दोष जान कर विचार पूर्वक उनका उपयोग करता है. जिससे वो धर्म पा सक्ता है, और अनर्थ दंड से बच सक्ता है. और पक्ष पाती कदाग्र ही के जाल में नहीं फँसता, न भ्रष्ट होता है, न दूसरों को फंसाता है ।

एक चोर का दृष्टांत ।

एक पुरुष पाप के उदय से चोरी करने लगा, और जहां तहां द्रव्य ढूंढने लगा एक समय पर तीन विदेशी पुरुष धन कमा कर स्वदेश जाते थे उनके पीछे पीछे वो चला और उनके समान व्योपारी बनकर होगया, थोडे दूर जाने के बाद व्योपारी विचारने लगे कि लूटारों का में गये विना नही चलेगा और वे लूट लेंगे तो प्रथम उपाय करना ठीक है द्रव्य व माल को वेच रत्न लिये, और तीनों ने अपनी जांघ में चीरा कर उनमे रत्न रखकर संरोहिणी औषधि से घाव अच्छा कर लिया. व्योपारी के पास इतना द्रव्य नही था जिससे वो उनका रक्षक हुआ व्योपारियों ने भी कहा कि तुझे हम देश में जाकर कुछ हिस्सा देंगे विचार ने लगा कि मुझे तो सभी के रत्न लेने है अब अच्छा हुआ कि सब मेरा विश्वास भी करने लेग है ।

रास्ते में लूटारों के स्थान में एक तोता आश्चर्य कारी था उसने कि हे लूटारे ! आओ ! धन आ रहा है ! लूटारों ने व्योपारिओं को और कहा धन दे दो, और सुख से चले जाओ ! उन्होंने इंकार किया कहा कि हमारे पास कुछ नहीं है तब उनकी तपास कर छोड़ दिये तो तोता पुकार ने लगा कि मत जाने दो ! उनके पास धन है, तब उनको मारने का विचार किया तब चोर ने विचार किया कि यदि वे उनको पहिले मारेंगे और रत्न निकाल लेंगे तो मैं विना रत्न का भी मरुंगा, मृत्यु तो आया है। मरने के समय भी कुछ धर्म करूं। ऐसा विचार बोला कि हे लुटारे ! यदि जो आपको तोते का ही कहना सच्चा लगता तो ये मेरे बड़े भाइयों को पीछे मारना मुझे ही पहिले मारदो !

आपकी खात्री हो जावे । पीछे उनको भी मारना. लूटेरो ने उसी समय उसकी जांघ चीरी, धन नहीं मिला, दूसरी जांघ चीरी, तो भी धन नहीं मिला. हाथ भी काटे तब भी कुछ नहीं मिला तब लूटेरो ने उसकी दुर्दशा देख दया आई. तोतेकी गरदन पकड़ मारकर फेंक दिया और अपने स्थान में उदासीन होकर बैठे। तीन व्योपारी छोड़ दिये वे चले गये किन्तु चोरके हृदय में उनके पर क्रोध नहीं आया जिससे समीप मे रही हुई क्षेत्र देवता ने उसी वक्त चोर की सहाय कर उसे अच्छा बना कर कहा कि जगत मे तेरे समान दया क्या उपकार करूं? चाहे सो मांग ले? वो बोला कि तोते को अच्छा बनादो? जो इस समय तडफ रहा था. उसे अच्छा बनाया, फिर देवी बोली कि और क्या करु? वो बोला! साधुओ का मिलाप करादो अब धर्म पाकर पूर्व पापो का प्रायश्चित लेकर पवित्र होकर कर्म के फंदे से छूट जाउ? देवी ने वैसा ही किया वो विशेषज्ञ होने से सब को बचा कर लूटेरों को भी सुधारने वाला होकर साधुओ के पास जाकर मुक्ति का भाजन हुआ, इस लिये जो विशेषज्ञ होता है वोही धर्म पा सक्ता है।

## श्रावक का वृद्धा नुग ( १७ ) वा गुण

जो पुरुष बड़ो के मार्गमे चलता है वो ही इस लोक मे सुखी होता है अथवा छोटी उम्र मे लडको की बुद्धि विशाल न होने से दुष्ट लोग उनको फसाते है इस लिये प्रत्येक कार्य करने में मा बाप बड़े भाई वगैरह को पूछ कर कार्य करने से अधिक लाभ होता है वैसे ही धर्म कार्य में भी जो वड़ो के पीछे जाते है. वे धर्म पा सक्ते है क्योकि वडो को ज्ञान है कि पाप का फल दुःख और पुण्य का फल सुख है और अनुभव से भी वे जानते है कि इस तरह से वड़ो के कहेने मे रहने से इतना लाभ हुआ है इस लिये वड़ों के पीछे चलना ठीक है।

## दृष्टांत

एक राजा को जवान और बूढे मत्री थे राजा को एक दिन जवान ने कहा कि आप काम नहीं करने वाले वृढो को तनखा क्यों व्यर्थ देते हो। राजा ने कहा, ठीक है? कल परीक्षा कर योग्य करूंगा. दूसरे दिन सभा मे

# ( १६ ) विशेषज्ञ गुण का वर्णन

विशेषज्ञ प्राणियों का या जड़ पदार्थों का गुण दोष जान कर विचार पूर्वक उनका उपयोग करता है. जिससे वो धर्म पा सक्ता है, और अनर्थ दंडव्यापार से बच सक्ता है. और पक्ष पाती कदाग्रही के जाल में नहीं फँसता, न भ्रष्ट होता है, न दूसरों को फंसाता है।

एक चोर का दृष्टांत।

एक पुरुष पाप के उदय से चोरी करने लगा, और जहां तहां द्रव्य ढूंढने लगा एक समय पर तीन विदेशी पुरुष धन कमा कर स्वदेश जाते थे उनके पीछे पीछे वो चला और उनके समान व्योपारी बनकर साथ होगया, थोडे दूर जाने के बाद व्योपारी विचारने लगे कि लूटारों का स्थान में गये बिना नहीं चलेगा और वे लूट लेंगे तो प्रथम उपाय करना ठीक है सब द्रव्य व माल को बेच रत्न लिये, और तीनो ने अपनी जांघ में चीरा कर उनमें रत्न रखकर संरोहिणी औषधि से घाव अच्छा कर लिया. चौथे व्योपारी के पास इतना द्रव्य नहीं था जिससे वो उनका रक्षक हुआ और व्योपारियों ने भी कहा कि तुझे हम देश में जाकर कुछ हिस्सा देंगे चोर विचार ने लगा कि मुझे तो सभी के रत्न लेने है अब अच्छा हुआ कि सब मेरा विश्वास भी करने लगे है।

रास्ते में लूटारों के स्थान में एक तोता आश्चर्य कारी था उसने कहा कि हे लूटारे! आओ! धन आ रहा है! लूटारों ने व्योपारिओं को पकडे और कहा धन दे दो, और सुख से चले जाओ! उन्होंने इंकार किया और कहा कि हमारे पास कुछ नहीं है तब उनकी तपास कर छोड़ दिये तो भी तोता पुकार ने लगा कि मत जाने दो! उनके पास धन है, तब उनको मारने का विचार किया तब चोर ने विचार किया कि यदि वे उनको पहिले मारेंगे और रत्न निकाल लेंगे तो मैं बिना रत्न का भी मरूंगा, मृत्यु तो आया है। मरने के समय भी कुछ धर्म करूं। ऐसा विचार कर बोला कि हे लुटारे! यदि जो आपको तोते का ही कहना सच्चा लगता है तो ये मेरे बड़े भाइयों को पीछे मारना मुझे ही पहिले मारदो!

आपकी खात्री हो जावे । पीछे उनको भी मारना लूटेरो ने उसी मय उसकी जांघ चीरी, धन नही मिला, दूसरी जांघ चीरी, तो भी धन ही मिला. हाथ भी काटे तब भी कुछ नहीं मिला तब लूटेरा ने उसकी दशा देख दया आई. तोतेकी गरदन पकड़ मारकर फेंक दिया और अपने स्थान उंदासीन होकर बैठे। तीन व्योपारी छोड़ दिये वे चलेगये किन्तु चोरके हृदय उनके पर क्रोध नही आया जिससे समीप मे रही हुई क्षेत्र देवता ने उसी क्त चोर की सहाय कर उसे अच्छा बना कर कहा कि जगत मे तेरे समान या क्या उपकार करू ? चाहे सो मांग ले ? वो बोला कि तोते को अच्छा नादो? जो इस समय तडफ रहा था. उसे अच्छा बनाया, फिर देवी बोली कि ौर क्या करु ? वो बोला ! साधुओं का मिलाप करादो अब धर्म पाकर र पापो का प्रायश्चित लेकर पवित्र होकर कर्म के फंदे से छूट जाउ ? देवी वैसा ही किया वो विशेषज्ञ होने से सब को बचा कर लूटेरा वो भी धारने वाला होकर साधुओ के पास जाकर मुक्ति का भाजन हुआ, इस लेये जो विशेषज्ञ होता है वोही धर्म पा सक्ता है ।

## श्रावक का वृद्धा नुग ( १७ ) वा गुण

जो पुरुष बड़ो के मार्गमें चलता है वो ही इस लोक मे सुखी होता है थवा छोटी उम्र मे लडको की बुद्धि विशाल न होने से दुष्ट लोग उनको साते हैं. इस लिये प्रत्येक कार्य करने में मा बाप बडे भाई वगैरह को पूछ र कार्य करने से अधिक लाभ होता है वैसे ही धर्म कार्य में भी जो बडो पीछे जाते हैं. वे धर्म पा सके हैं क्योंकि बडो को ज्ञान है कि पाप का फल दुःख और पुण्य का फल सुख है और अनुभव से भी वे जानते हैं कि स तरह से बडो के कहने मे रहने से इतना लाभ हुआ है इस लिये बड़ों पीछे चलना ठीक है ।

## दृष्टांत

एक राजा को जवान और वृद्ध मत्री थे राजा को एक दिन जवान ने हा कि आप काम नही करने वाले वृद्धो को तनखा क्यों व्यर्थ देते हो। राजा ने कहा. ठीक है ! कल परीक्षा कर नोकरी करूंगा. दूसरे दिन सभा मे

राजानेकहा कि मेरे शिर पर पैर देने वाले को क्या करना । एक युवान शीघ्र बोला के हे राजन ! उस दुष्ट को इसी समय जान लेकर प्रलय बताना चाहिए कि राजा के शिर मे पेर लगाने से क्या फल मिलता है राजा ने बूढे मन्त्रीओं से पूछा कि आप की क्या राय है ? वे बोले विचार कर उत्तर देंगे. राजा की रजा लेकर वे सभी एकांत में जाकर परस्पर विचार कर राजा को कहा महाराज ! उसकी योग्य वस्तुओं से पूजा सत्कार होना चाहिये. राजा ने युवानों को बुलाये और पूछा कि क्यों आप समझे! वे बोले नहीं. तब राजा की आज्ञा से एक वृद्ध मंत्री ने उन्हें समझाया कि राजा का प्रबल प्रताप से कौन उसके शिर पर पैर लगा सकता है । विचारो कि एक तो राजा जी अपनी मा के चरण मे शिर झुकाते है उस माता का पेर लगने से आप उस को मार सकते हो ? वे चुप होगये ! एकही बात मेंयुवक शांत होकर बृद्धो के चरणों मे पडे और अपनी तुच्छता छोड़ प्रत्येक कार्य में उनकी राय लेने लगे उत्तम जन की संगति मे जैसे पारस पत्थर से लोहा भी सोना हो जाता है वैसे ही निर्गुणी भी गुणवान हो जाता है इस लिये गुण में भी जो बड़े है उनकी भी अधिक संगति करना और पाप से बचना ।

## श्रावक का १८ वा विनय गुण ।

सर्व गुणों का मूल विनय है, और सम्यक् दर्शन ज्ञान, चारित्र, जो लोकोत्तर प्रधान गुण है उनका भी मूल है, इस लिये मोक्ष का मूल विनय है इस लिये विनीत पुरुष सर्वत्र प्रशंसा करने योग्य है ।

एक छोटे गांव में एक जमीदार का लड़का कोमल स्वभाव का और बाप की आज्ञा में रहनें वाला था. प्रभात में उठते ही उसके चरणों मे शिर झुकाता था और हर समय "जीकार" से वडी इज्जत से काम पडने पर बाप को बुलाता था. एक दिन उसके बाप ने गांव के जागीरदार को आते देखकर उसे नमस्कार किया. लडका ने भी उसे शिर झुकाया जागीरदार ने छोटी उम्र में विनीत देख अपने पास रखा. एक समय जागीरदार उसे राज नगरी में ले जाकर राजा श्रेणिक की सभा में खडा किया राजा को जागीरदार ने नमस्कार किया तब लडके ने भी नमस्कार किया. और

राजा भी प्रसन्न होगया और अपने पास उस लडके को रखा. एक समय राजा महावीर प्रभु को वंदन करने को गया, और जब महावीर प्रभु को श्रेणिक राजा ने नमस्कार किया उसी समय लडके ने भी नमस्कार किया. उसकी विनीत प्रकृति से प्रभु ने उसे धर्म समझाया उसने कहा मैं आज से आप की सेवा करूंगा और शस्त्र लेकर हाजर रहूंगा. प्रभु ने कहा कि कर्म शत्रु को जीतने में और शस्त्र की आवश्यकता नहीं है. रजोहरण मुहपति से ही कार्य सिद्धि होती है, मात पिता की आज्ञा लेकर उसने प्रभु के पास दीक्षा ली इस लिये विनय गुण वाला ही धर्म भागी हो सक्ता है।

## श्रावक का १६ वां कृतज्ञता गुण ।

जो कृतज्ञ होता है वो तत्व बुद्धि से परमार्थ समझकर धर्मोपदेशक गुरु का बहुमान करता है और प्रति दिन गुरु महाराज उसे नयी २ हित शिक्षा देते हैं, इससे उसमें गुणों की वृद्धि होती है इस लिये धर्मका अधिकारी कृतज्ञ हो सक्ता है।

तगरा नगरी में रतिसार नाम का राजा जैन धर्म पालने वाला था, उस का पुत्र भीमकुमार था. उसने सब कलाओं का समूह सीख कर विविध क्रीडाओं में रक्त होकर समय बिताने लगा जिससे राजा ने पुत्र को कहा बेटा ! अभी तुझे कला सीखनी बाकी है तो क्यों समय खेलने में खो रहा है ! उसने कहा कौनसी कला सीखने की है । बाप बोला धर्म कला, उस कला बिना सब कला व्यर्थ है कुमार ने उसी समय धर्म कला सीखने को पिता की आज्ञा मागी, बाप ने साधु के पास ले जाकर साधुजी से सौंप कर लडके को कहा उनकी सेवा कर पढ. लडके ने उस दिन से विनय पूर्वक धर्म शास्त्र पढना शुरू किया जिन मंदिर में जाकर चैत्य वंदन नमुत्थुणं जावंती चेइ आइं, जावंत केविसाहु उवसग्ग हर जयवीयराय स्तुति स्तोत्र पढ कर निरंतर द्रव्य पूजा भाव पूजा में रक्त रह कर विधि अनुसार सब क्रिया करने लगा और सामायिक प्रतिक्रमण जीव विचार नव तत्व श्रावक के योग्य पढने के जितने छूटे छूटे प्रकरण है वे पढ कर आनंद मानने लगा. और अपने

राजाने कहा कि मेरे शिर पर पैर देने वाले को क्या करना। एक युवान क्रोध
बोला के हे राजन! उस दुष्ट को इसी समय जान लेकर मरवाना
बताना चाहिए कि राजा के शिर मे पैर लगाने से क्या फल मिलता है।
राजा ने बूढे मन्त्रीओं से पूछा कि आप की क्या राय है? वे बोले विचार
कर उत्तर देंगे. राजा की रजा लेकर वे सभी एकांत में जाकर परस्पर वि
चार कर राजा को कहा महाराज! उसकी योग्य वस्तुओं से पूजा सत्कार
होना चाहिये. राजा ने युवानों को बुलाये और पूछा कि क्यों आप समझे?
वे बोले नहीं. तब राजा की आज्ञा से एक वृद्ध मंत्री ने उन्हें समझाया कि
राजा का प्रबल प्रताप से कौन उसके शिर पर पैर लगा सकता है। विचारो
कि एक तो राजा जी अपनी मा के चरण मे शिर झुकाते है उस माता का
पैर लगनेसे आप उस को मार सकते हो? वे चुप होगये! एकही बात में युवक शांत
होकर वृद्धो के चरणों में पडे और अपनी तुच्छता छोड़ प्रत्येक कार्य में उनकी राय
लेने लगे उत्तम जन की संगति मे जैसे पारस पत्थर से लोहा भी सोना हो
जाता है वेसे ही निर्गुणी भी गुणवान हो जाता है इस लिये गुण में भी जो
वड़े हैं उनकी भी अधिक संगति करना और पाप से बचना।

## श्रावक का १८ वा विनय गुण।

सर्व गुणों का मूल विनय है, और सम्यक् दर्शन ज्ञान, चारित्र, जो
लोकोत्तर प्रधान गुण है उनका भी मूल है, इस लिये मोक्ष का मूल भी
विनय है इस लिये विनीत पुरुष सर्वत्र प्रशंसा करने योग्य है।

एक छोटे गांव में एक जमीदार का लड़का कोमल स्वभाव का और
बाप की आज्ञा मे रहनें वाला था. प्रभात में उठते ही उसके चरणों मे शिर
झुकाता था और हर समय "जीकार" से वडी इज्जत से काम पडने पर
बाप को बुलाता था. एक दिन उसके बाप ने गांव के जागीरदार को आता
देखकर उसे नमस्कार किया. लडका ने भी उसे शिर झुकाया जागीरदार ने छोटी
उम्र में विनीत देख अपने पास रखा. एक समय जागीरदार उसे राज ग्रही
नगरी में ले जाकर राजा श्रेणिक की सभा में खडा किया राजा को उस
जागीरदार ने नमस्कार किया तब लडके ने भी नमस्कार किया. श्रेणिक

राजा भी प्रसन्न होगया और अपने पास उस लडके को रखा एक समय राजा महावीर प्रभु को वंदन करने को गया, और जब महावीर प्रभु को श्रेणिक राजा ने नमस्कार किया उसी समय लडके ने भी नमस्कार किया. उसकी विनीत प्रकृति से प्रभु ने उसे धर्म समझाया उसने कहा मैं आज से आप की सेवा करूंगा और शस्त्र लेकर हाजर रहूंगा. प्रभु ने कहा कि कर्म शत्रु को जितने में और शस्त्र की आवश्यकता नही है. रजोहरण मुहपति से ही कार्य सिद्धि होती है, मात पिता की आज्ञा लेकर उसने प्रभु के पास दीक्षा ली इस लिये विनय गुण वाला ही धर्म भागी हो सक्ता है।

## श्रावक का १६ वां कृतज्ञता गुण ।

जो कृतज्ञ होतो है वो तत्व बुद्धि से परमार्थ समझकर धर्मोपदेशक गुरु का बहुमान करता है और प्रति दिन गुरु महाराज उसे नयी २ हित शिक्षा देते है, इससे उसमें गुणों की वृद्धि होती है इस लिये धर्मका अधिकारी कृतज्ञ हो सक्ता है ।

तगरा नगरी में रतिसार नाम का राजा जैन धर्म पालने वाला था, उस का पुत्र भीमकुमार था. उसने सब कलाओं का सबूर सीख कर विविध क्रीडाओं में रक्त होकर समय बिताने लगा जिससे राजा ने पुत्र को कहा बेटा ! अभी तुझे कला सीखनी बाकी है तो क्यों समय खेलने में खो रहा है ! उसने कहा कौनसी कला सीखने की है । बाप बोला धर्म कला. उस कला बिना सब कला व्यर्थ है कुमार ने उसी समय धर्म कला सीखने को पिता की आज्ञा मागी, बाप ने साधु के पास ले जाकर साधुजी को सोंप कर लडके को कहा उनकी सेवा कर पढ. लडके ने उस दिन से विनय पूर्वक धर्म शास्त्र पढना शुरू किया जिन मंदिर में जाकर चैत्य वंदन नमुत्थुणं जावंती चेइ आइं, जावंत केविसाहु उवसग्ग हर जयवीयराय स्तुति स्तोत्र पढ कर निरंतर द्रव्य पूजा भाव पूजा में रक्त रह कर विधि अनुसार तप किया करने लगा और सामायिक प्रतिक्रमण जीव विचार नव तत्व श्रावक के योग्य पढने के जितने छोटे छोटे प्रकरण है वे पढ कर आनंद मानने लगा. और उसके

वाप ने ऐसे साधु की संगति कराई इस लिये निरंतर वाप का भी अंत
उपकार मानने लगा, श्रावक के बारह व्रत लेकर ग्रहस्थी धर्म पालने लगा।

एक समय उसके वापने एक सेठ की लडकी खुबसुरत देख मोहित होकर
उस कन्या के वाप से मांगी कन्या के पिता ने ना कही, राजा ने कारण पूछा
तब उत्तर मिला कि मेरे दोहिते को भीमकुमार के सामने राज्य नहीं मिलेगा
जिससे वाप चुप होगया भीम कुमार ने वो वात सुनकर ब्रह्मचर्य की जीवनपर्यंत
की प्रतिज्ञा लेकर सेठ को समझाकर राजा को कन्या दिलवाई वो रानी से पुत्र
भी हुआ और भीम ने उसे बंधु जान कर सब विद्या पढाकर राज्य के योग्य
बनाया. और उसे राज्य भी समय पर दिलाया और भीम प्रतिज्ञा पूरी होने
से निर्भय होकर श्रावक धर्म और ब्रह्मचर्य को पालन करने लगा एक दिन इंद्र ने
सभा में उसकी प्रशंसा की वह एक द्वेषी देव को सहन नहुई जिससे परीक्षा
करने को आया भीमकुमार के सामने एक वृद्ध स्त्री आकर बोली हे भीम!
तू दयालु शिरोमणि है जगत् माननीय है, तेरे गुण सुन कर मेरी यह लड़की
जो गुणिकापुत्री है और सब कला में चतुर है वो तेरे गुण पर प्रसन्न
होकर प्रतिज्ञा कर आई है इस लिये तू उसे अपनी स्त्री बनाले ! जो तू मंजूर
नहीं करेगा तो तेरे सामने यह कन्या जीती जलेगी ! जिससे स्त्री हत्या का
निरर्थक महा पाप लगेगा। भीम चुप रहा तब वुढिया बोली जगत् जीव हितकारी कु
मार, यदि जो तुझे ब्रह्मचर्य या स्त्री संग का नियम हो तो उसे दो मधुरवचनों से संतुष्ट
कर कि जिससे शृंगाररस के वचन सुनकर वो भी कामाग्नि शांत करे। भीम
मौन रहा वुढिया फिर बोली हे नरेन्द्र कुल दीपक । एक समय उस तरफ
स्नेह दृष्टि से तो देख कि विचारी मरती समय भी कन्या शांत होकर दुर्गति
में न जावे। भीम ने उत्तर दिया कि हे भद्रे। विपसे संजीवन डोरी बढती नहीं
इस लिये धर्म प्रिय मुक्ति का मार्ग शोध ! यहां पर रोंम में भी संसार वा-
सना नहीं है ! वुढिया ने अनेक उपाय किये तो भी वो व्रत भंग नहीं करता
देख देव रूप में होकर भीम को कहा जैसी इंद्र ने तेरी प्रशंसा की थी, वैसा
ही तू है इस लिये तुझे धन्य है, तेरे धर्म में मैने विघ्न किया है उसकी क्षमा
चाहता हूं, देव गया वाद भीम ने व्रत पाल सद्गति प्राप्त की इस लिये कृतज्ञ
होता है वोही धर्म पाकर उसे अच्छी तरह पाल सक्ता है।

# श्रावक का २० वां गुण परहितार्थ कारी ।

पर हितकारी होता है वो धर्म अच्छी तरह समझ निरीह चित्त वाला हो कर लोगों में धन्यवाद पाता है और महा सत्यवान् होने से दूसरे को भी धर्म मे लगा सकता है ।

परोपकारैक रतिर्निरीहता, विनीतता सत्यम तुच्छ चित्तता ।
विद्या विनोदोऽनुदिन न दीनता, गुणा इमे सत्ववतां भवन्ति ॥

परोपकार में ही आनंद, निरीहपना, विनय, सत्य, गंभीरता, रोज विद्या के विनोद और अदीनता इतने गुण सत्यवान पुरुष मे होते है ।

## उसपर दृष्टांत.

विजय वर्धन नगर मे विशाल सेठ का पुत्र विजय नाम का था जिसने गुरु के पास सुना था कि परहित मे तत्पर रहना और जगा तो [illegible] घड़ा होने पर भी उसने वह बात याद रक्खी. एक दिन को ससुराल मे [illegible] वहू को लेकर आता था रास्ते मे पानी निकालने के समय पति को [illegible] पत्नी ने गिराया और पीयर चली गई तो भी पति ने गुरु के वचन [illegible] नहीं किया. दूसरी वक्त भी वो स्वजन के खातिर लेने को गया [illegible] पर इशारे से पत्नी को समझा कर शांत कर घर को ले आया [illegible] हुए और उन लड़कों की उम्र बड़ी होने पर एक लड़के ने बाप से [illegible] आप सब जगह क्यों करते फिरते हो कि क्षमा करना [illegible] उसे उसकी माता की बात कही. लड़का ने [illegible] माता ने उसी समय लज्जा के मारे प्राण [illegible] दुःख हुआ [illegible] के पास जाकर प्रायश्चित मांगा गुरु ने [illegible] चाहिये [illegible] परहित [illegible] से नहीं होता. [illegible]

[illegible]

रह ऐसी जगह पर डाले कि जिसमे कोई भी जीव को पीडा न हो इसलिये कहा है कि जो मास मास में एक हजार गायों को दान देवे उससे भी अधिक पुन्य जो साधु कुछ भी नहीं देता है उसे साधु व्रत पालन से ही होता है क्यों कि साधुओं में कोई भी जाति की स्पृहा नहीं होने से वे हितोपदेश ही करते है और सभी जीव की रक्षा कर उनको सुमार्ग में ले जाते हैं इतना सुनकर विजय सेठ साधु हो गया इस लिये परहित गुण धारण करने वाला ही धर्म पा सक्ता है।

## श्रावक का २१ वा गुण लब्ध लक्ष्य

धर्मकृत्यों को अच्छी तरह समझ करके पालने में लब्ध लक्ष्य पुरुष योग्य होता है क्योंकि वो चतुर होता है, जिससे गुरू महाराज की थोड़ी भी वात उसे अधिक लाभदायी होती है, और गुरू महाराज के थोड़े प्रयास से और थोडे समय में वो अधिकाधिक शास्त्रज्ञ होता है।

## आर्य रक्षक मुनि की कथा.

दशपुर नगर में सोमदेव ब्राह्मण की स्त्री रुद्र सोमा से आर्य रक्षित पुत्र हुआ वो पाटलि पुत्र में और दूसरी जगह पढ कर १४ विद्या का पारंगामी होकर आया राजा ने और नगरवासियों ने उसका वहुत आदर किया घर में आने पर सब परिवार ने भी उसे मान दिया किंतु माता तो कुछ भी बिना बोले चुप रही तो भी माता के पास जाकर उसके चरणों में सिर झुकाकर वंदन किया, तब माता ने आशीर्वाद दिया किंतु विद्या का सत्कार का कुछ भी लक्षण न बताया, जिससे माता से पूछा कि मेरे पढने पर और लोग इतना गौरव करते है और तू माता होने पर भी खुश नहीं होती उसका क्या कारण है, माताने कहा, हे वत्स! तूं जो विद्या पढा है उससे तूं यज्ञ कराकर निर्दोष पशूओंकी धर्म के नाम पर हिंसा करावेगा और पाप बढावेगा और भविष्य में दुर्गति में जावेगा इसलिये मुझे आनंद नहीं होता, पुत्रने कहा, अब में क्या करुं? माता बोली, स्वपर हित चिंतक जैन धर्मका और दूसरे धर्मोंका तत्व स्वरूप बताने वाला दृष्टि वाद अंग पढ जिससे सुगतिका भागी हो-

वे तो मुझे आनंद होवे, माताको पूछा, कि उसे कौन पढावेगा? माताने कहा तोशलिपुत्र नामके आचार्य तेरे इक्षुका गुड बनाने का घर में ठहरे है वहां जा, माताको कहा, मै प्रभात में वहां जाकर पढ तेरे चित्तको प्रसन्न करुं गा सूर्योदय के पहले ही उठ कर माताका आशीर्वाद लेकर चला रास्ते मे शकुन भी अच्छे हुए, और उसका आगमन सुन एक मित्र इक्षुके सांठे लेकर दूसरे गांव से देने को आयाथा वो सामने मिला लडके ने लेलिये गिने तो साठे नवथे माताकी शांति के कारण उसने मित्रको वेही सांठे अपनी माताको देने के लिये पीछेदिये और उस मित्र के साथ कहलाया कि मै शुभ शकुन से जाता हुं जिससे मुझे दृष्टिवाद अंग पढने को मिलेगा. माताने भी इक्षु गिन कर निश्चय कियाकि पुत्र साडेनव पूर्व की विद्या पढेगा. आचार्य के पास जाने पर आर्य रक्षितने विचारा कि जैन साधु के पास मे कभी नहीं गया तो वहां जाकर किस तरह वंदन करुं और क्या बोलुं? इतने मे एक श्रावक वांदने को आया उसी के पीछे जाकर उसकी तरह उसके शब्द सुन कर वंदन किया किन्तु बडे श्रावक को वंदन करना वो दूसरा श्रावक न होनेसे नवधम के श्रावकने नहीं किया इतनी त्रुटी आर्य रक्षित में देख कर गुरुने इसे व्यवहार से अजान किंतु तीक्ष्ण बुद्धि वाला जान पूछा हे भद्र! धर्म प्राप्ति तुझे कहां से प्राप्त हुई है वो बोला, इस श्रावक से. गुरु-कब? वो बोला अभी ही. इस समय एक शिष्य जो गत दिन की बात जानता था उसने सब बात गुरु को कह सुनाई, गुरुने अधिक प्रसन्न होकर कहा हे भद्र! तुं नगर मान्य पात्र का है, अब तेरा विशेष सत्कार क्या करें? वो बोला. मुझे आप दृष्टिवाद अंग पढावे।

गुरु ने कहा कि संसार के जो विषय लोलुप ( स्वादु ) [illegible] है [illegible] वो नहीं पढा जाता इसलिये तू साधु होकर पढ वो बोला दीक्षा लेने मे [illegible] होता हुं आचार्य ने कहा राजादि की आज्ञा चाहिये [illegible] [illegible] पढने मे विलंब होवे सो अच्छा नहीं लगता मेरी माता ने मुझे पढने को भेजा है उसके [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] आचार्य ने दीक्षा दी [illegible] विशेष [illegible] [illegible] [illegible]

इस दृष्टांत से ज्ञान होगा कि उस आर्य रक्षितमें लब्ध लक्ष्य गुण था तो माताके आचरण की बात समझ विद्वान और धर्म प्रेमी होगया इस तरह श्रावक धर्म पाने वाले मे यह गुण होगा तो प्रत्येक कार्य थोडे कष्ट में पार उतारेगा।

ऊपर कहे हुये २१ गुणों का वर्णन सूत्रानुसार कह बताया है और जिसमे ये गुण है वो ही धर्म रत्न सुख से प्राप्त करेगा अर्थात् २१ गुण धारक पुरुष शीघ्र धर्म पासक्ते है।

२१ गुणों को वर्णन समाप्त

यदि किसी में जो २१ गुण न हो तो वो धर्म पासके वा नहीं इस बारे में कहते है कि यदि जो २१ गुण पुरे न हो तो जितने कम, इतने अंश में उसे कम लाभ मिलेगा १।४ चोथा हिस्सा कम हो तो मध्यम, और आधा होतो जघन्य, और उससे भी कम गुण होतो वो पुरुष कंगाल की गिनती में है, अर्थात् जैसे निर्धन रंक पुरुष इच्छा करे तो भी उसे लोकमे कोई रत्न नहीं देता अथवा वो खरीद नहीं कर सक्ता ऐसे ही गुण रहित पुरुष धर्म प्राप्ति नहीं कर सक्ता

इसलिये धर्म रत्न के आर्थिओको प्रथम उपरोक्त २१ गुण प्राप्त करने का उद्यम करना चाहिये जैसे कि उत्तम जमीन मे बोया हुआ बीज अधिक उत्तम फल उत्पन्न करता है तथा स्वच्छ भूमी मे खेचा हुआ चित्र अच्छी शोभा देता है।

## द्रष्टांत.

साकेत ( अयोध्या ) मे महाबल राजा था उसने एक दूत से पूछा कि मेरे राज्य मे सब वस्तु है या नहीं दूत ने कहा कि एक चित्र सभा सिवाय सब वस्तु है, राजाने उसी समय मंत्री को कह कर एक बड़ा विशाल मकान चित्र सभा के लिये तैयार कराया और विमल और प्रभास नाम के दो चितारों को बुलाये दोनों चितारे आने पर दोनों मंडप में भिन्न भिन्न दोनों को बैठायें और परस्पर विना देखे अपनी बुद्धि अनुसार उत्तमोत्तम चित्र बनाने को कहा, उन्होंने

छे मास तक कार्य किया बाद राजा देखनेको आया विमलके कियेहुए चित्रको प्रथम देखकर राजा प्रसन्न हुआ पीछे प्रभास के खंड मे गया वहां पर कुछ भी चित्र न देखा तब राजा ने पूछा आपने इतने दिन क्या किया ! वो बोला हे नरेन्द्र मैंने प्रथम छे मास तक चित्र के लिये जमीन तैयार की है आप कृपा कर उसके पास जाकर देखो भीत मे आप स्वयं अपना रूप विना चितरे भी देखोगे. राजा ने वहां समीप जाकर देखा तो अपना प्रति बिंब अच्छी तरह पडा देख आश्चर्य होगया क्योंकि राजा को सपूर्ण आभूषण वस्त्र के साथ संपूर्ण शरीर जैसे आयना मे दीखता था वैसाही इस भीत में दीखता था चितारे की ऐसी सफाई देख विना चित्र भी राजाने प्रसन्नता प्रकट कर इनाम दिया और कहा तेरे कृत्य की अधिक क्या तारीफ करु ! चितारा बोला कि महाराज ! अभी जमीन तैयार की है उसमे जो चित्र होगे उसकी प्रभा अधिक होगी, और चिरकाल तक चित्र रहेगे राजा बोला ठीकहै जैसा योग्य लगे वैसा करो इस दृष्टांत से यह सूचित किया है कि श्रावक धर्म पाने वाले पुरुषो के हृदय मे ऊपर के २१ गुण आ जावेगे तो गुरु का उपदेश विना भी गुरु के दर्शन से धर्म का स्वरूप जान जावेगा और थोडा बताने पर भी अधिक अधिक ज्ञान होता जावगा ।

## धर्म का स्वरूप ।

धर्म दो प्रकार का है ( १ ) श्रावक धर्म ( २ ) साधु धर्म ।

श्रावक धर्म के भी दो भेद है देशविरति, अविरति. श्रावक के और लक्षण भी शास्त्र मे बताये है ।

अमूल्य मनुष्य जन्म पाकर सद्गुरु की शोध मे रहकर धर्म स्वरूप अच्छी तरह समझकर यथा शक्ति व्रत पच्चक्खाण कर मन सम्बन्धि कार्य भी कोमल भाव से करे, और जीव अजीव का स्वरूप समझकर जीवो को व्यर्थ दुःख न होवे इस लिये अनर्थ दंड छोडे और अर्थ दंड में भी यतना से वर्त्तन करे जैसे अपनी रक्षा करे ऐसे और जीवो को भी पीडा न होवे इस तरह संभाल से चले ।

साथ साधु धर्म के लक्षण भी बताये है कि—

जो साधु होने वाला हो उसके मनमे निरंतर यह ख्याल रहे कि मनुष्य जन्म जैन धर्म, धर्म पर श्रद्धा और धर्ममे शक्ति (वीर्य) का उपयोग करना ये चारबाते बहुत दुर्लभ है. उन चारों ही प्राप्त होने पर भी जो मैं प्रमाद करूंगा तो फिर इस दुनिया मे अनेक जन्म मरण करने पर भी चारों बात एक साथ मिलना मुश्किल हो जावेगी इस लिये इंद्रियों के विषयो की सुंदरता कदापि मे देर नहीं लगेगी और शरीर मे अब शक्ति बुढापा आ जाने पर धर्म पालना मुश्किल होगा इंद्र भी स्थिर न रहे तो मनुष्य आयु का क्या भरोसा है? हीरा को छोड कांच के टुकडे मे कौन बुद्धिमान पुरुष राचेगा! ऐसी वैराग्य भावना से बारबार गुरुके चरणो मे शिर झुकाकर बोलता है हे गुरो! हे तारक? हे कृपा सिंधो! भव भयसे डरा हुआ यह रंक अनाथ को चारित्र धर्म की शरण देकर जन्म जरा मरण रोगादि के भयो से बचाओ हे प्रभो! सच्चे माता पिता नरेन्द्र रक्षक पालक पोषक तारक के सभी गुण आप में विद्यमान है। आप संसार दुःख सागर से मेरा उद्धार करो? हे प्रभो! चिंता मणि रत्न कल्प वृक्ष काम धेनु काम कुंभ जैसे चमत्कारी पदार्थो से भी मोक्ष नहीं मिलता न जन्म मरण रोग के दुःख मिटते किंतु एक ही दुनियां के सब रोगो के भयो का और पीडाओ का मूल यह मेरा शरीर है जिसके भरोसे मै आज तक बैठा रहा हूं उसीका प्रथम मोह छोड वीत राग भाषित तत्व ज्ञान संपादन कर उसी उदारिक शरीर के जरिये सब कर्म बंधन तोडने का प्रयास करूंगा इस लिये हे नाथ! जहां तक जरा नाम की राक्षसी आकर मेरे बाल श्वेत न बनावे, शरीर की इंद्रियों की शक्ति की क्षीणता न करे वहां तक मुझे आपका साधु भेष शीघ्र दो! अहाहा! वो क्षण कब आवेगी कि मै जीवों को अभय दान देने वाला, सब जीवों पर मैत्री भाव रखने वाला और मुझे दुःख देने वाले जंतुओं पर भी सम भाव रखने वाला आत्म हित चिंतक लोह सुवर्ण मे चंदन बांसी पर सम दृष्टि वाला राग द्वेष छोड वीत राग दशा में सकाम निर्जरा करने वाला होऊंगा! इत्यादि कोमल भावना से आंख में आर्द्रता प्रकट करने वाला, पुनः पुनः चारित्र की प्रार्थना करने

वाला ही साधु धर्म के योग्य प्राणी बताया है, पीछे गुरु महाराज उसकी यथा योग्य परीक्षा कर साधु धर्म वा श्रावकधर्म देते हैं चाहे अणुव्रत देवे वा महा व्रत देवे ।

## श्रावक और साधुका संबंध.

जैन धर्म मे स्याद्वाद् मार्गका वर्णन है, अर्थात् जितनी अपेक्षाऐं जहां घटे वहां उतनी घटानी चाहिये. उसे स्याद्वाद कहते है. इस स्याद्वाद रीतिसे श्रावकके भिन्न भिन्न गुण बताये है यहां पर साधु धर्मोपदेशक है और श्रावक उस धर्म के ग्राहक ( लेने वाले ) है उनका पर स्पर क्या संबंध है वो बताते है

स्थानांग सूत्र मे लिखा है. कि–

( १ ) मात पिता समान, भाई समान, मित्र समान, शोक ( ) समान–चार प्रकार के श्रावक होते है.

( २ ) साधुओ का चारित्र निर्मल रहेगा तो वे सिद्धांत को अच्छी तरह पढ कर हमे लाभ देगे इसलिये जैसे मात पिता रात दिन बेटे की प्रतिपालना करते है. उसी तरह साधुओं की रात दिन यथो चित भक्ति करे. वे मात पिता समान श्रावक हैं.

( ३ ) भाई समय समय पर भाई की चिन्ता करे और उसे सहाय दे इस तरह समय मिलने पर साधु की खबर लेकर उसकी यथो चित सेवा करे वे भाई जैसे श्रावक है.

( ४ ) पर्व दिन मे मित्र पर स्पर मिल कर खबर पूछते है. ऐसे ही पर्व के दिनों मे साधुओ की सेवा करे वे मित्र जैसे श्रावक है

( ५ ) सोक जैसे पर स्पर छिद्रो को शोध और गुणो को छिपा कर उसको अपमान से खुश होता है वैसे ही साधुओ के गुणों को छुपा कर जरा भी भूल होने पर लोक मे निंदा करे और साधु का अपमान करे वो सोक जैसा श्रावक है, यथा योग्य भक्ति कर अपनी शक्ति अनुसार वे गुरु के पास धर्म सुन और आदरे वो उत्तम श्रावक है.

समय मिलने पर सेवा करे, धर्म सुने गौण करे वो मध्यम श्रावक है। नै दिन मे जो सेवा करे, धर्म सुने और करे वो जघन्य श्रावक है. साधु वारंवार जरा भी प्रमाद से दोष देख कर, उसका अपमान कर आप न धर्म कथा सुने, न सुनने देवे, बीच मे विघ्न करे वो अधर्मी श्रावक है.

यहां पर कहने का यह है कि साधुमें दोष देखनेमें आवे तो विनयपूर्वक एकांत मे कह कर सुधारना वो तो अच्छा है और गुणज्ञ साधु ऐसी बातें सुन कर सुधर जाता है और न सुधरे तो मिष्ट वचनो से पीछे श्रावक प्रकट भी कह सक्ता है और इतने से भी न सुधरे और अनाचार से दूसरों को पतित करे जैन धर्म की हीलना करावे तो ऐसे साधु को श्री संघ ( श्रावक श्राविका साधु साध्वी ) मिल कर उसे दूर भी कर सक्ते हैं किंतु अल्प दोष से वारंवार साधु का जाहिर अपमान करना अनुचित है-

साधु के उपदेश सुने इस अपेक्षा से चार प्रकार के श्रावक बताते हैं-

( १ ) गुरुने कहा वो सपूर्ण सुन कर हृदय में धार लेवे. वो आयना समान श्रावक है क्यो कि आयना मे पूर्ण रूप पड़ता है. ऐसे ही वो श्रावक में धर्मोपदेश का पूर्ण असर होता है

( २ ) साधु के पास सुन फिर भूल जावे वो पताका समान, पताका ( ध्वजा ) पवन से वार वार हलिता है ऐसे ही वो श्रावक धर्म पा कर फिर फिर मिथ्यात्व में मूढ हो कर धर्म को छोड़ देता है

( ३ ) विनय न करे किंतु निंदा भीन करे और धर्म सूने किंतु करे नहीं वो स्थाणु (पेडका सूखा लकड ) माफक है.

( ४ ) खरट्टक समान श्रावक उसे कहते हैं कि स्वयंशिथील ( ढीला ) होने पर भी अशुचि द्रव्य जरा ठोकर लगते उछल कर कपड़ा बिगाड़ता है. ऐसे ही वो श्रावक को जरा भी साधु उपदेश देवे कि दश वीस अनुचित शब्द सुनाकर साधु का अपमान कर धर्म नहीं पा सक्ता।

ऐसे और भी दृष्टांतों से समझ श्रावक को प्रथम कुछ भी गुण प्राप्त करना चाहिये।

-

## भाव श्रावकके और लक्षण।

व्रतकी मन मे अभिलाषा रखे, सदाचारी होवे, गुणवान् होवे, निष्कपटी व्यापार करने वाला हो, गुरु भक्त हो, प्रवचन ( शास्त्र ) श्रवण मे कुशल हो ये भाव श्रावक के लक्षण है।

प्रथम गुरु की बात सुने, उसे समझे यथा शक्ति लेवे, उसे पाले, जो गुरुका विनय बहुमान कर सुने तो उसे अधिक ज्ञान हो सक्ता है जिससे श्रावक व्रत के वीभाग ( भांगे ) समजाते है।

## श्रावक व्रत के भांगे।

मन वचन काया इन तीनो को जोग कहते हैं, न करुं, न करावुं वन अनुमोदुं इन तीनो को करण कहते है।

जैसे कोई आदमी गुरु के पास धर्म समज कर नियम करे कि मै मन से जीव को न मारुं

( १ ) ( अर्थात् मारने की मन मे अभिलाषा न करुं.

( २ ) वचन से ( अर्थात् वचन से मारुं ऐसा शब्द न बोले.

( ३ ) काया से (अर्थात् हाथ वा शस्त्र से जीव के प्राण न लउं,

इस तरह

३ मन वचन काया से न मरावुं.

इस तरह

३ मन वचन काया से मारने वाले को भला न जानुं

इस तरह कोई मन वचन का भी लेवे वचन काया का भी लेवे अथवा एक काया का भी नियम लेवे।

| अथवा - | करण | जोग | उत्तर गुण का भंगा |
|---|---|---|---|
| ( १ ) | २- | ३ - | सातवां होता है। |
| ( २ ) | २-- | २-- | और अविरति का आठवां होता है। |
| ( ३ ) | २-- | १-- | और प्रत्येक के ६.६. भंग होते है। |
| ( ४ ) | १-- | ३-- | |

[illegible] भंग इस प्रकार है।

तीन जोग तीन करण से नव भांगे होवे, दो करण तीन जोग से छः भांगे होवे, एक करण तीन जोग से तीन भांगे होवे, इत्यादि अनेक भांगे होते है सिवाय सूक्ष्म बादर त्रस स्थावर, संकल्प, आरंभ, सापराधी निरपराधी के भेद भी समझने चाहिये।

## जीवो का किंचित् स्वरूप

जीव के दो भेद, संसारी और मुक्ति के - संसारी के दो भेद त्रस स्थाव
स्थावर के दो भेद है (१) सूक्ष्म (२) बादर, इन दोना में पांच भेद
(१) पृथ्वी सुक्ष्म और बादर, (२) पानी सुक्ष्म और बादर (३) अ
सुक्ष्म और बादर (४) वायु सुक्ष्म और बादर (५) वनस्पति सुक्ष्म औ
बादर किंतु वनस्पति में और भी दो भेद है जैसे कि (१) प्रत्येक वनस्प
काय जिसमे गिन्ती के जीव हो, (२) साधारण वनस्पति काय जिसमें ए
शरीर मे अनंत जीव हो-- उनका विशेष स्वरूप "जीव विचार" किता
से जुओ ये सब उपयोग मे आते है किंतु सुक्ष्म हाथ मे न आने से बादर
ही उपयोग होता है।

और जीवो का स्वरुप समज ग्रहस्थ उसे विना कारण उपयोग में न
लेते जैसे कि पेड के एक पत्ते से काम चलता हो तो दो नही तोडना,
तोडे और उपयोग में ले तो वो अर्थ दंड है और दूसरा विना कारण त
फेंक देवे तो अनर्थ दंड होवे गृहस्थ को अनर्थ दंड अवश्य छोड़ना चाहिये

## त्रसकाय का स्वरूप ॥

त्रयकाय उसे कहते हैं कि जिनका शरीर मुंह हीलता दीखे और
आने पर दूर भागे जिसका त्रास अपने देखने में आवे और अपने हृदय
कोमल भाव होवें कि उसे दुःख नहीं देना उसे त्रसकाय कहते है।

( १ ) दो इंद्रीवाले शरीर और मुंह वाले शख, पेट के कमी ( जोख )
( २ ) तीन इंद्री, शरीर मुंह, नाक वाले, कीडी चेटे, अनाज के कीडो
( ३ ) चौइंद्री ,, ,, ,, और आंख वाले डांस मच्छर पतंग वगेरह
( ४ ) पचेंद्री ,, ,, ,, ,, और कानवाले मनुष्य तिर्यं च ( पशु पक्षी ) देवता नारकी जीव है।

उन सब को बचाना अपना कर्त्तव्य है तो भी राज्याधीश कुनबा के अधिकारी वा ग्रहस्थी को स्वरक्षा के लिये दूसरे जीव को शिक्षा करनी पड़े तो भी जहां तक बने वहां तक उसे निध्वंस ( दुष्ट ) परिणाम से न मारे यदि राजा जो प्रजा के रक्षा के लिये दुष्टों को दंड न देवे तो अत्याचार और बदमाशों का जोर बढ जावे तो धर्म का नाश हो जावे तो भीतर से उसके दयालु होने पर भी उस के कृत्य से धर्म का नाश हो जाने से राजा महान पापी हो जावे इस लिये प्रजा के रक्षणार्थ उसे बदमाशों को दंड देना ही चाहिये किन्तु शत्रु शरण मे आने बाद उसके पूर्वक वैर को याद कर उसे दंड नहीं देना चाहिये

यहां पर इतना लिखना आवश्यक है कि जैन धर्म से प्रजा निर्माल्य होती है अथवा जैन धर्म का अधिक प्रचार से प्रजा की अवनति होगी ऐसा विचार कितनेक अन्य बंधुओका है अथवा कितनेक जैनी भी अज्ञान दशा मे ऐसा समझते है कि कीडी की दया पालने वाला शत्रु पर कैसे हाथ उठा सक्ता है उनको यहां पर सूचना है कि सर्व जीवो पर क्षमा करने वाले साधु भी दुष्ट राजा को समझाने पर भी न समझे तो योग्य कारण मिलने पर दंड देने का मोका आ जावे तो उसे साधु दंड देते है जैसे कि कालकाचार्य की भगिनी जो साध्वी थी उसे गर्दभिल्ल राजा ने अपने महल मे दुराचारार्थ रक्ख ली थी उसको समझाने पर भी न मानने से कालकाचार्य ने उसे राज्य पर से दूर करा

काल का चार्य की कथा राजेन्द्र अभिधान कोश प्रथम भाग ५८३ पृष्ठ मे देखो—कोड गद्द भिल्लो, केवा कालग जो धम्मि पात्त साहितो भगिनि [illegible] णास सायरी, तत्थय गद्द भिल्लो णाम राया तस्य पालगक्तासन [illegible] [illegible] णिमित्त कालिना इत्यादि –नि–चू–१० उद्देशा

कर साध्वी की शील की रक्षा की तो ग्रहस्थों को कोमल भाव रखने पर भी दुष्टों को दंड देना पडता है इस धर्म को व्यवहार धर्म कहते हैं और शरीर की भी परवाह न करे ऐसे निस्पृही साधुओं को योगी कहते हैं सिर्फ कर्मों को ही शत्रु मानते है उनको व्यवहार धर्म नहीं होने से वे निश्चय धर्म वाले है उनको शिष्य परिवार भी नहीं होता न वे उपदेश देवे न वंदे न शेर से डरे न चदन बिछू के डंश मे भेद माने उनको छोड़ बाकी सब को अपना यथोचित व्यवहार धर्म मानना चाहिये जिसमे जैन राजा रक्षा कर सक्ता है और साधुओं का धर्मात्माओं का रक्षण कर उनके धर्म का भागी होता है जिससे दुष्टों के दंड मे जो पाप लगता है वो दूर हो जाता है किंतु उसे भी अपने प्रमाद की आलोचना करनी पडती है अनेक राजा पूर्व मे हो गये है परंतु कुमार पाल को अधिक वर्ष नहीं हुए है उसका हिंदी चरित्र अवश्य पढना चाहिये.

जैसे एक डाक्टर रोगीके हितार्थ उसका पैरमें घावकरे उसे दुःख देवे तोभी वो गुनहगार नही होसक्ता ऐसे राजाओंकाभी अधिकार है किन्तु डाक्टरको सांजवा प्रभातमें अपने दरदीओंका विचार करना पडता है कि मेरे प्रमादसे वा कम ज्ञानसे उसे अधिक दुःख तो नहीं दिया वा सोचकर उसका उपाय लेना ऐसेही राजा को भी प्रभात और शाम को अपने कर्त्तव्यों का ख्याल कर जो भूल होगई हो तो उसकी क्षमा लेना चाहिये.

इस लिये चाहे राजा हो, वा रंक हो, पुरुष हो वा स्त्री हो ग्रहस्थ हो वा साधु हो उसे निरंतर प्रति क्रमण करना चाहिये प्रति क्रमण का अर्थ यह है कि अपने कर्त्तव्यों में जो भूल हो गई हो उसे याद कर उसका पश्चत्ताप कर दंड लेना और उसी से राजा भी अपने गुरु रखते थे कुमार पाल और गुरु हेम चन्द्रका चरित्र वांचने से मालुम होगा किस तरह उसे गुरु महाराज ने पाप से बचाया है।

राजा सदाचारी साधु अनाथ रंक का रक्षक और दुष्टोंका दंडक होता है वो राजा धर्म राजा कहलाता है जैसे युधिष्ठिर और राम है और जो राजा आप दुष्टता करे विना कारण लड़ाई करे वो दुर्योधन का प्रत्यक्ष दृष्टांत है.

राजाओं की राज्य नीति जैनाचार्यों ने बनाई थी वो प्रचलित नहीं है जिससे अज्ञान दशा में चाहे ऐसा मूर्ख बोले किंतु अर्हन नीति पढकर विद्वान ऐसा विचार कभी न करेगा कि जैन धर्म से निर्बलता आती है। किंतु इतना समझेंगे कि यदि जैन धर्म बढा तो आज युद्ध मे जो अधम रीति से बंम गोलो का निर्दोष औरत और बच्चों का प्राण घातक अत्याचार हो रहा है वो मिट जावेगा क्योंकि जैन धर्म से कर्म फल को याद रख कर राजा को भी पीछे उस सब कृत्य का यथोचित फल भोगना पडेगा वो भूल नहीं जावेगा।

## श्रावकों के बारह व्रत का वर्णन।

जैन धर्म मे तीन रत्न मुख्य है, वे ( १ ) सम्यग् दर्शन ( २ ) ज्ञान और ( ३ ) चारित्र है।

सम्यग् दर्शन दो प्रकार का है व्यवहार और निश्चय।

व्यवहार दर्शन दूसरा भी जान सक्ता है, निश्चय सम्यक्त्व को केवल ज्ञानी जानते है कुछ अंश में अवधि ज्ञानी मन पर्यव ज्ञानी भी जानते है व्यवहार सम्यक्त्व देव गुरु धर्म को अंगीकार करने से होता है।

( १ ) देव वीतराग निस्पृह केवल ज्ञानी है जिनको अर्हन् जिनेश्वर, तीर्थंकर नाम से कहते है ( २४ तीर्थ करके नाम लोगस मे बोलते है उनका चरित्र पढ उनके गुण जान लेने ) वीतराग सिवाय देव को कुदेव कहते है यदि कुदेव मे देवपणा माने तो संसार मे भ्रमण होना है।

( २ ) गुरु साधु मुनि श्रमण को कहते है वो भी त्यागी निस्पृही होते है यदि जो रागी को गुरु माने तो वो तार नहीं सक्ता।

( ३ ) धर्म, दया, विवेक, और संवर, रूप है जो इन तीन गुण रहित हो तो वो धर्म के नाम से अधर्म है।

जैसे अशक्त पुरुष को वैद उपकारक है ऐसेही ऊपर के तीन रत्न सामान्य पुरुष को हितकारक है इनके जरिये कम बुद्धि वाला भी सुबुद्धि वाला होकर आत्मा का और कर्म का संबंध जान सक्ता है पीछे आत्मा मे दृढ [illegible]

वाला होने से उसे निश्चय चारित्र होता है जैसे नदी में तिरने वाला मनु
की सहाय से तिरना सीख पीछे आप भी तैरू हो सक्ता है, इस लिये प्रथम
व्यवहार सम्यक्त्व प्राप्त करने को ज्ञान पढना चाहिये।

## ज्ञान के दो भेद ॥

जो ज्ञान पाठशाला में पढाते हैं वो ज्ञान भी कहलाता है और अज्ञान भी कहलाताहै जो ज्ञान का उपयोग दूसरों के भले के लिये ही तो वो ज्ञान है और जो दूसरों का नुकसान करे तो वो अज्ञान है इस लिये ज्ञान पढ कर परमार्थ और परोपकार करना चाहिये।

कोई पैसा गौ रोटी घर वगैरह देवे तो दान हो सक्ता है अथवा मीठे प्रि के वचन बोले तो भी दान हो सक्ता है किंतु ज्ञान पूर्वक जो समझ के दिया जावे तो सब से अधिक अभय दान है स्थावर त्रस जीवों को जो सदा बचा वे तो संपूर्ण अभय दान होता है उसे साधु धर्म कहते हैं ऐसे ही चारित्र, महाव्रत, यम, संयम भी कहते है जो साधु न होवे अथवा उसे गुरु साधु न बनावे तो वो गृहस्थ धर्म ले सक्ता है. उसे देश विरति कहते हैं।

उसमें बारह व्रत है।

( १ ) जीवा सुहुमा थूला, संकप्पारंभा भवे दुविहा।
सावराह निर व राहा, साविक्खा चेव निरविक्खा ॥

श्रावक से त्रस जीव की दया पले परंतु स्थावर की दया न पले क्योंकि चूल्हा जलावे, पानी उपयोग में आवे वनस्पति खावे मट्टी चूना के घर बनावे इस लिये पृथ्वी पानी अग्नि वायु वनस्पति को विना कारण दुःख न देवे विवेक से काम करे तो भी उनकी हिंसा होवे इस लिये २० हिस्सा दया हो तो त्रस का बचाव होवे स्थावर के १० हिस्से न पले।

त्रस में भी अपराधी पर दया न रहे घर में चोरी, खुन वा बदमाशी करे तो कोई आवे तो उसपर शस्त्र चलाना पड़े अथवा राजा को प्रजा के रक्षार्थ युद्ध करना पड़े तो निरपराधी की दया पले जिससे सिर्फ पांच हिस्से दया के रहे।

## सापेक्ष ॥

निरपराधी जीव भी जरूर पड़े तो मारना पड़े जैसे बच्चे के अंग में वा बैल को कीडे पडे हो तो दवा लगाने से वो मर जावे अथवा वाहन घोड़ा आदमी वगैरह को लड़ाई में ले जाना पड़े तो वे मरते हैं तो वे मरते हैं इस लिये इसकी दया न पली २॥ विस्से रहे ।

## आरंभ ।

खेती करने में बगीचा घर बनाने में बिना इच्छा भी कितने ही जीव मनुष्य के हाथ से मरे इस लिये सिर्फ १। विस्वा की गृहस्थी को दया है ।

जिससे ऐसी प्रतिज्ञा कर सके कि त्रस जीव जो निरपराधी हो तो बिना कारण संकल्प करके न मारे ।

## श्रावक का दूसरा व्रत झूठ न बोलना ।

वर वा कन्या के झूठे दोष वा झूठे गुण बताकर किसी का विवाह [illegible] मारना वा पक्का देना ऐसा ही पशु बैल वगैरह के झूठ [illegible] जमीन की बिक्री में झूठ बोलना. किसी की थांपण में झूठ बोलना [illegible] झूठी साक्षी पूरनी ये पांच बड़े झूठ अवश्य त्यागने. [illegible] भी खास कारण बिना न बोले. मार्मिक वचन न बोले ।

## ( ३ ) चोरी न करना ।

मालिक की बिना रजा चीज लेनी. इसे चोरी [illegible] रुपया या रत्न तक हो तो भी वो बिना [illegible] मिले तो भी इस नहीं लेनी तो [illegible] इसे खराब देख तो भी चोरी [illegible] करना [illegible] रखना श्रावक को [illegible]

## ( ४ ) स्वदारा संतोष मैथुन त्याग वृत्ति।

अपनी स्त्री छोड़ कर और स्त्रियों का संग न करना चाहे कन्या रंडी, विरक्त हो तो भी जहां तक नैतिक रीति से व्यापारी न हो वहां तक संबंध करना न चाहिये अपनी स्त्री भी छोटी या गर्भ के चिन्ह वाली, बीमार वो पुरुष स्वयं बीमार हो तो संग न करे. पर्व तिथि को अपनी स्त्री से भी ब्रह्मचर्य पाले।

## ( ५ ) परिग्रह परिमाण व्रत।

घर का निर्वाह अच्छी तरह इज्जत पूर्वक चले उससे अधिक की तृष्णा न करे किंतु पूर्व के पुण्य से यदि आ जावे तो दान मे लगा देवे इतना संतोष न रहे तो नियम करे कि इतने से ज्यादह हो तो व्योपार बंद करूं वा धर्म मे लगा दूं अथवा रोज की कमाई से इतना हिस्सा धर्म मे लगा दूं और इन नव चीज का परिणाम करना।

( १ ) धन, ( २ ) धान, ( ३ ) जमीन, ( ४ ) मकान, ( ५ ) चांदी, ( ६ ) सुवर्ण ( ७ ) और सब धातु, उसे कुपद की संज्ञा है, ( ८ ) नोकर ( ९ ) पशु बैल वगैरह.

## श्रावक का छठा व्रत दिशि परिमाण

उत्तर दक्षिण पूर्व पश्चिम उंचे और नीचे इन ६ दिशा और चार कोण मिल कर १० होते है. उन दिशाओं में घर व्योपारार्थ जाने का नियम करना और श्रावक को वर्षा रुतु में इतनी जगह में भी विना कारण न जाना. इस से पूर्व के पांच व्रतों को गुण होता है. अर्थात् हिंसा वगैरे मिट जाती है, इस लिये जो नियम लेवे वो नोंध कर लेवे कि भूल से भी अधिक न जावे.

## श्रावक का सातवां व्रत भोगोपभोग विरमण व्रत

२२ अभक्ष्य का त्याग भोजन भोग और व्योपार का परिमाण करना ३२ अनंत काय छोड़ना, और सचित वस्तु का परिमाण करना, रोज १४ नियम धारना, पंदरह कर्मा दान छोड़ना वा कम करना,

दूसरी विज्ञप्ति यह है कि जिन चीजो मे ज्ञानि महाराज ने ज्ञान सेदेख बहुत ज्यादा दोष बताये है उन चीजो को छोड़ना उचित है.

विद्ल जिस अन्न की दो दाल ( द्विदल ) हो जाय, और जिसमें से तेल नहीं निकले, उस अन्न को कच्चे दूध, दही, छाश के साथ अलग अथवा मिलाय के खाना बडा दोष कहा हैं. दही वगैरह खूब गरम करके साथ खाने में विद्ल का दोष नहीं है ।

आचार ( आथाना ) सब तरह का ( सधान ) ३ रोज बाद अभक्ष्य हो जाता है और शरवत व मुरब्बे का भी दिनों का प्रमाण करना चाहिये. कंद मूल ३२ अनन्तकाय, यह सबसे ज्यादे दोष की चीज होनेसे बिल कुल छोडने लायक है ।

२२ अभक्ष्य के नाम

१ वडके, २ पीपलके, ३ पिलखणके, ४ काठंवरके, ५ गूलरके फल, मदिरा, ७ मास, ८ मधु, ९ मक्खन, १० वरफ, ११ नशा, १२ ओले १३ ट्टि, १४ रात्री भोजन, २ वहु वीजा फल, १६ संधान ( आचार ) १७ द्विदल, ८ वेगण, १९ तुच्छ फल, २० अजान फल, २१ चलित रस, २२ वत्तीस नंतकाय ।

३२ अनंतकाय के नाम

सूरनकन्द १ वज्रकन्द २ हरीहलदी ३ सितावरी ४ हरा नरकचूर ५ अद्रक ६ ारयालीकन्द ७ कुवारी–गुंवारपाठा ८ थोर ९ हरि गिलोय १० लस्सन ११ वास रेला १२ गाजर १३-१४ लुनिया और लुढियां की भाजी १५ गिरिकर्णिका १६ पत्तेके- ्पल १७ खरसुआ १८ थेगी १९ हरामोथा २० लोणसुखवली २१ विलहुडा २२ अमृत- ेलि २३ कांदा–मुला २४ छत्र टोप २५ विदलके अकूर २६ वथवे की भाजी २७ वाल २८ पालक २९ कुली आमली ३० आलू कन्द ३१ पिडालू ३२

* रात्रि भोजन सर्वथा न छूट सके तो दुविहारतिविहार पच्चक्खाण करना आवश्यक है

२२* अभक्ष्य श्रावक को जरूर ही छोडना चाहिये न छूटे तो जितना छूटे उतना छोडिये. थोडे से जिन्हा के स्वाद के वास्ते जीव पाप से भारी होकर भव भव मे वहुत दुख पावे ऐसा नहीं करना चाहिये इनसें ज्यादे स्वादकी और चीजें वहुत हैं ।

सात वा व्रत विचार कर के हमेश के लिये भी लेना और रोज के लिये १४ नियम यथा शक्ति लेना।

## चौदह नियम धारने की विधि

दिनके चार प्रहर के नियम सबेरे मुंह धोने के पहिले विचार के शाम पार लीजिये. रात्रि के चार प्रहरके फिर शामको विचारके सुबह पार लीजिये नियम तीन नवकारगिन के लीजिये, और तीन नवकार गिन के पारिये पारने के वख्त ज्यो ज्यो रक्खा था उसको याद करके संभाल लीजिये कमती लगा उसका लाभ हुआ, भूल से जास्ती लगा उसका " मिच्छामि दुक्कडं " दीजिये चाहे तो आठ प्रहर के भी धार सक्ते हैं परंतु चार प्रहर के धारने से पारने के वख्त ( कितना नियम धारते वख्त रक्खा है और कितना भोग मे आया है उसकी, ) विधि मिलाने में सुगमता रहती है।

कोई व्रतधारी श्रावक जन्म भर के निर्वाह के वास्ते जादे जादे रखते है तो १४ नियम धारने से उनका भी आश्रव संक्षेप हो जाता है इस वास्ते व्रतधारी को और अविरति को अवश्य १४ नियम धारने चाहिये।

### चोदह नियमों की गाथा।

सचित्त[1] दव्व[2] विग्गई[3]। वाणह[4] तंबोल[5] वत्थ[6] कुसुमेसु[7] ॥
वाहण[8] सयण[9] विलेवण[10] बंभ[11] दिसि[12] न्हाण[13] भत्तेसु[14] ॥ १ ॥

### गाथा का संक्षिप्त अर्थ।

१ सचित्त (जिस्मेजीव सत्ता हो, बोने से ऊगे बीजादि) कच्चा पानी, हरी शाक फल, पान, हरा दातन, निमक आदि।

२ द्रव्य—जितनी चीज मुंह में जावे उतने द्रव्य—जल, मंजन, दातन, रोटी, दाल, चावल, कढी, साग, मिठाई, पूरी, घी, पापड पान, सुपारी, चूरन, मसाला आदि।

३ विगय—१०. जिनोंमें से मधु मांस, माखन, और मदिरा ये ४ महा विगय अभक्ष्य होने से, श्रावक को अवश्य त्याग करने चाहिये और (६

श्रावक के खाने योग्य, है, घी, तेल, दूध, दही, गुड खांड अथवा मीठा पक्वान्न और कडाई मे भर घी मे तला जाय वह।

४ उपानह्-जूता, बूट, स्लीपर, मोजा आदि ( जो पांव में पहने जाय )।

५ तंबोल-पान, सुपारी, इलायची, लौंग, पान का मसाला आदि।

६ *वत्थ ( वस्त्र ) पगडी, टोपी, शाफा अंगरखा, चुगा, कुरता, धोती, पायजामा, दुपट्टा, चद्दर अंगोछा, रूमाल आदि मरदाना और जनाना कपडा ( जो ओढने पहरने मे आवे )।

७ कुसुमेसु-फूल, फूलकी चीज जैसे सिहरा, पखा, सहरा तुर्रा, हार, गजरा अतर ( जो चीज सूंघने मे आवे )।

८ वाहन ( सवारी )-गाडी फेटीन, मिगराम, हाथी, घोडा, रथ, पालकी डोली, मोटर, साईकल, रेल, ट्राम्वे नाव जहाज, स्टीमर, बलून आदि याने चरता, फिरता, तरता और उडता।

९ शयन-खुरशी, टेवल पट्टा, पलग, गादी तकिया, बिछोना, तख्त, मेज, सुखासन आदि ( सोने वा बैठने की चीजे )।

१० विलेपन-तेल, केसर, चंदन, तिलक सुरमा, काजल, उबटना [illegible], ब्रुरश, कंगा, काच देखना दवाई आदि ( जो चीज शरीर मे लगाई जावे।

११ बंभ ( ब्रह्मचर्य ) स्त्री, पुरुष ने, सुद टोरे के न्याय से तथा [illegible] विनोद की संख्या कर लेनी श्रावक परदारा त्याग और स्वदारा ने [illegible] रखें, उसका भी प्रमाण कर इसी प्रकार स्त्रीओ को भी समझना चाहिये

१२ दिसि ( १० दिशा )-शरीर से इतने कोस ( [illegible] ) जाना आना, चिट्ठी तार इतने कोस भेजना, माल [illegible] इतने कोस भेजना, तथा मंगाना।

१३ न्हाण ( स्नान ) शरीर में मोटा स्नान इतनी वेर करना। [illegible] इतनी वेर धोना।

१४ भत्तेसु-[illegible] पान, खादिम, स्वादिम [illegible] जितनी चीज [illegible]।

सात वा व्रत विचार कर के हमेश के लिये भी लेना और रोज के
१४ नियम यथा सक्ति लेना।

## चौदह नियम धारने की विधि

दिनके चार महर के नियम सवेरे मुंह धोने के पहिले विचार के
पार लीजिये. रात्रि के चार महरके फिर शामको विचारके सुबह पार
नियम तीन नवकारागिन के लीजिये, और तीन नवकार गिन के
पारने के वख्त ज्यो ज्यो रक्खा था उसको याद करके संभाल
कमती लगा उसका लाभ हुआ, भूल से जास्ती लगा उसका "मिच्छा
क्कडं" दीजिये. चाहे तो आठ महर के भी धार सक्ते हैं परंतु चार
धारने से पारने के वख्त ( कितना नियम धारते वख्त रक्खा है और
भोग में आया है उसकी, ) विधि मिलाने में सुगमता रहती है।

कोई व्रतधारी श्रावक जन्म भर के निर्वाह के वास्ते जादे आगे
रखते हैं तो १४ नियम धारने से उनका भी आश्रव संक्षेप हो जाता है
स्वाते व्रतधारी को और अविरति को अवश्य १४ नियम धारने चाहिये।

चोदह नियमों की गाथा।

सचित्त दव्व विगई। वाणह तंबोल वत्थ कुसुमेसु॥
वाहण सयण विलेवण बंभ दिसि न्हाण भत्तेसु॥ १॥

गाथा का संक्षिप्त अर्थ।

१ सचित्त (जिस्मेजीव सत्ता हो, बोने से ऊगे बीजादि) कच्चा पानी,
शाक फल, पान, हरा दातन, निमक आदि।

२ द्रव्य—जितनी चीज मुंह में जावे उतने द्रव्य—जल, मंजन, दातन,
दाल, चावल, कढी, साग, मिठाई, पूरी, घी, पापड पान,
चूरन, मसाला आदि।

३ विगय—१०. जिनोंमें से मधु मांस, माखन, और मदिरा ये ४
व अभक्ष्य होने से, श्रावक को अवश्य त्याग करने

सात वा व्रत विचार कर के हमेश के लिये भी लेना और रोज के लिये भी १४ नियम यथा शक्ति लेना।

## चोदह नियम धारने की विधि

दिनके चार प्रहर के नियम सवेरे मुंह धोने के पहिले विचार के शामको पार लीजिये. रात्रि के चार प्रहरके फिर शामको विचारके सुबह पार लीजिये, नियम तीन नवकारागिन के लीजिये, और तीन नवकार गिन के पारिये, पारने के वख्त ज्यो ज्यो रक्खा था उसको याद करके संभाल लीजिये, कमती लगा उसका लाभ हुआ, भूल से जास्ती लगा उसका " मिच्छामिदुक्कडं " दीजिये. चाहे तो आठ प्रहर के भी धार सक्ते हैं परंतु चार प्रहर के धारने से पारने के वख्त ( कितना नियम धारते वख्त रक्खा है और कितना भोग में आया है उसकी, ) विधि मिलाने में सुगमता रहती है।

कोई व्रतधारी श्रावक जन्म भर के निर्वाह के वास्ते जादे जादे वस्तु रखते हैं तो १४ नियम धारने से उनका भी आश्रव संक्षेप हो जाता है इस स्वाले व्रतधारी को और अविरति को अवश्य १४ नियम धारने चाहिये।

चोदह नियमों की गाथा।

**सचित्त[1] दव्व[2] विग्गइ[3]। वाणह[4] तंबोल[5] वत्थ[6] कुसुमेसु[7]॥**
**वाहण[8] सयण[9] विलेवण[10] बंभ[11] दिसि[12] न्हाण[13] भत्तेसु[14]॥ १॥**

गाथा का संक्षिप्त अर्थ।

१ सचित्त ( जिसमेंजीव सत्ता हो, बोने से ऊगे
शाक फल, पान, हरा दातन, निमक -
२ द्रव्य—जितनी चीज मुंह में जावे उतने
दाल, चावल, कढी, साग, मिठाई,
चूरन,मसाला आदि।
विगय—१०. जिनोंमें से मधु मांस,
अभक्ष्य होने से, श्रावक को अवश्य

श्रावक के खाने योग्य, है, घी, तेल, दूध, दही, गुड खांड अथवा मीठा पक्वान्न और कडाई में भर घी मे तला जाय वह।

२ उपानह्-जूता, बूट, स्लीपर, मोजा आदि ( जो पांव में पहने जाय )।

३ तंबोल-पान, सुपारी, इलायची, लौंग, पान का मसाला आदि।

६ वस्त्र ( वस्त्र ) पगडी, टोपी, साफा अंगरखा, चुगा, कुरता, धोती, पायजामा, दुपट्टा, चद्दर अंगोछा, रूमाल आदि मरदाना और जनाना कपड़ा ( जो ओढने पहरने मे आवे )।

७ कुसुमेषु-फूल, फूलकी चीज जैसे सिज्या, पंखा, सहरा, तुर्रा, हार, गजरा अतर ( जो चीज सूंघने में आवे )।

८ वाहन ( सवारी )-गाडी, फेटीन सिगराम, हाथी, घोडा, रथ, पालखी, डोली, मोटर, साइकल, रेल, ट्राम्वे नाव जहाज, स्टीमर, बलून आदि याने चलता, फिरता, चरता और उडता।

९ शयन-कुरसी, टेबल पट्टा, पलंग, गादी तकिया, बिछौना, तखत, मेज, सुखासन आदि ( सोने वा बैठने की चीजें )।

१० विलेपन तेल केसर, चंदन, तिलक सुरमा, काजल, उबटना, हजामत, [illegible] देखना दवाई आदि ( जो चीज शरीर में लगाई जाय )।

११ [illegible] ( ब्रह्मचर्य ) स्त्री, पुरुष ने, सुद डोरे के न्याय से तथा बाह्य विनोद [illegible] श्रावक परदारा त्याग और स्वदारों से ही संतोष [illegible] प्रमाण कर इसी प्रकार स्त्रीओं को भी समझना चाहिये

१२ दिशा ( १० दिशा ) शरीर से इतने कोस ( लंबा, चोडा, ऊंचे नीचे ) [illegible] जाना, चिट्ठी तार इतने कोस भेजना, माल और आदमी, इतने [illegible] भेजना, मंगाना।

[illegible] शरीर मे मोटा स्नान इतनी वेर करना ( छोटास्नान ) [illegible] देना।

[illegible] पान, खादिम, स्वादिम ये चारों आहारमें से खाने में [illegible] वजन करना।

ये १४ नियम के ऊपर ६ काय और ३ प्रकार के कर्म की मर्यादा विचारनी आवश्यक है।

## ६ काय।

१ पृथ्वीकाय-मट्टी, निमक, आदि ( खानेमें उपभोग में आवें ) उसका वजन।

२ अप्काय-जोपानी पीने में वा दूसरे उपयोग में आवे उसका वजन*

३ तेऊकाय-चूल्हा, अंगीठी, भट्ठी, चिराग आदि का प्रमाण।

४ वायुकाय-हिंडोले और पंखे ( अपने हाथ से वा हुकम से ) जितने चलते होंवे उनकी संख्या का प्रमाण रुमाल से वा कागज से हवा लेनी यह भी पंखे में गिनी जाती है, उसकी जयणा।

५ वनस्पति काय हरा शाक तथा फलादि इतनी जात के खाने, घर संबंधी मंगाने, जिसकी गिनती तथा वजन।

६ त्रसकाय-त्रसजीव अपराधी, विनापराधी का विचार करना

यह ६ काय का परिमाण करलेना।

## कर्म.

१ असी- ( शस्त्र और औजार ). तलवार, बंदूक, तमंचा, बरछी, भाला, आदि छूरी, कैंची चक्कु, और सरोता, चिमटी आदि औजार.

२ मसी (लिखने पढने का. ) कागज, कलम, दावात, पेन्सिल, वही, पुस्तक, छापा, टाइप, आदि.

३ कृषी- ( कसी ).

खेती बगीचे आदि का परिमाण.

अब रोजके नियम धारनेकी विधि संक्षेपसें लिखते हैं, विस्तार जितना अधिक करिये, यानि नाम खोल खोल कर रखिये उतनाही जादे फायदा है. यदि अवकाश कम हो तो नीचे लिखे मुजब धारीए.

## संक्षिप्त विधि.

कलके १४ नियम चितारेथे उसमें कमती लगा होय उसका लाभ होवे; अजाणमें जास्ती लगा होय उसका मन वचन काया करके " मिच्छामि दुक्कडं " यह कह कर तीन नवकार गिनके पार लो.

### नियम लेनेकी विधि.

दिनको, शुबेहसे १४ नियम नीचे लिखे मुवाफिक शामके ४ पहरतकके रख लीजिए.

बाकी–का त्याग होगया, तीन नवकार गिनकर जिनके पच्चख्खाण कर लीजिये और जो पच्चख्खाण करना होवे नवकारसी अथवा [illegible] उसका पाठ कहके देसावगासी और विगयका पाठ कहलेना तथा गुरुमहाराजसे भी पच्चखाण करलेना. अब दिन भरमे जोजो उपभोगमे आया होवे उसकी विधि शामको मिला लेनी, फिर तीन नवकार गिनके पार लीजिये.

रातके नियम ४ पहरके इसी रीतिसे चितार लीजिये, सवेरे मुंह, धोनेके पहले उसी रीतिसे पारके फिर धार लीजिये. यदि आठ पहरके नियम करे तो रात दिनकी चीजें साथही धारलेनी. विगत– ( संख्या* )

---

* जिसको जितनी जरूरतहो उतनी चीजोंकी संख्या ब्रेकेटमे लिखलेनी ताकी धारनेमे सुभीता रहे

१ सचित्तमें ( ) जात वजन शेर (
२ द्रव्यमें ( ) जितने म्हूमें जावे उनकी संख्याका नियम कर लेना.
३ विगयमें ( ) जो छोडो उनके नाम खोल लेना.
४ वाणहमे जूते जोडे बूटजोडी ( ) स्लीपर जोडा( ) मोजे [illegible] ( )
५ तंबोलमे पानकी बीडी ( ) इलायची, सुपारी आदि तोले ( )
६ वत्थमें ( वस्त्र ( ) आभूषण ( )
७ कुसममें फुल सेर ( )
८ वाहनमें ( ) तरते ( ) फिरते ( ) उडते ( ) चरते.
९ सयनमे ( ) जगेके जो लगे, आना, आना, बैठना. ( ) मकान,

और दुकान, (    ) बगीचे, (    ) जाजरु, (    ) मोरी. (    )
१० विलेपनमें (    ) जातका सेर. (    )
११ अंभमें परस्त्रार और परपुरुषसे अब्रह्मचर्यका त्याग. इतनी बेर (    ) स्व-स्त्री वा पुरुषसे संबंध करना. अन्य विनोदकी जयणा.
१२ दिशिमें शरीरसें (    ) कोस जाना आना. चीठ्ठी तार तथा माल भेजना मंगाना (    ) हजार कोसतक. छापेकी जयणा.
१३ न्हाणमें (    ) मोटे, (    ) छोटे स्नान.
१४ भत्तेमुमें खानेको सेर (    ) पीनेका पानी सेर (    ) दुध, सरबत आदि (    ) सेर
१५ पृथ्वीकायमें मट्टीनमक सेर (    )
१६ अप्पकायमें पानी मन (    ) ( न्हाने पीनेमें ).
१७ तेउकायमें (    ) जगहके चूल्हे, अंगीठी, भट्टी, (    ) चिराग. (    ) मंदिर, सडक वा दूसरी जगहके चिरागकी जयणा.
१८ वायुकायमें, पंखे (    ) दूसरेके घरकी जयणा.
१९ वनस्पतीकायमें (    ) जातकी सेर (    ) खानेको.
२० त्रसकायमें चलते जीवको मारनेकी बुद्धि करके मारे नहीं. मन करके उपयोग सहित निरपराधीको मारे नहीं.
२१ असीमें (    ) शस्त्र वा (    ) औजार.
२२ मसीमें (    ) लिखने पढनेका चीजें (    ) कलम. दोवात आदि.
२३ कृषीमें खेतीविया (    ) दाकी त्याग, बगीचेकी जयणा.

अगर कोईको जादे कमती रखना होय तो इच्छा मुजब रखिये, यदि नाम लेकरके विस्तारसे रखिये तो ज्यादे लाभ है. परंतु जितना रखिये उसमें दोष नहीं लगावे, भूल चूकमें अतिचार लगजाय तो हमसें कम १० नवकारका दंड दीजिये. और ३० द्रव्य रखे थे और ३१ लगे तो दूसरे दिन २९ रखिये.

## श्रावक का आठवां व्रत अनर्थ दंड त्याग.

अपने उपयोग में जो वनस्पति वगैरः और उसे लेना वो अर्थ दंड है बिना प्रयोजन वा नाहक लेवे वो अनर्थ दंड है उसके संबंधी दृष्टांत विचार

यथा शक्ति मन वचन काया से दूसरे जीवों की रक्षा करनी. औरतें गालियें गावे. पुरुष होली के दिन में अप शब्द बोले वा हांसी करना पाप का उपदेश देना वा टंटा कराना क्लेश बढाना परस्पर निंदा लेख ट्रेक्ट पुस्तक निकाल समय धन बुद्धि व्यर्थ करना पैसे वालों की ईर्षा करना गुणवानों का द्वे. करना विना कारण समिति और तीन गुप्ति न पालना ।

जैसे कि दूसरा रास्ता होने पर भी हरी पर चलना, चलते २ पुस्तक वा पत्र पढना अंधेरे में बैठ खाना विना विचारे चाहे वहां टट्टी जाना पिशाब करना थूंकना कूडा फेंकना विना कारण आर्त रौद्र ध्यान करना, अधिक बोलना, शरीर से दूसरो को विना कारण दुःख देना ऐसे अनेक पर पीडक कृत्य अनर्थ दंड में है उसे छोड़ना चाहिये ।

## चारशिक्षा व्रत.

सामायिक मे दो घडी तक स्थिर बैठ जाप वा धर्म शास्त्र का पठन वा पाप का पश्चात्ताप करना प्रभात और साम को प्रतिक्रमण में छ आवश्यक होते हैं उसमें प्रथम सामायिक है दुपहर वा रात को भी सामायिक हो सक्ता है धर्म शास्त्र पठन का यह उत्तम रास्ता है किन्तु यह दो घडी ( ४८ मिनिट ) का चारित्र है इसलिये साधु की तरह यह पालना चाहिये और सामायिक मन्त्र पाठ उचरना चाहिये.

## सामायिक पाठ।

( उसकी विधि अर्थ साथ किताब अलग छप चुकी है । )

करेमि भंते सामाइयं सावज्जं जोग पच्चक्खामि जाव नियमं पज्जु वासामि दुविहं ति विहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि तस्स भंते पडिक्-मामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ।

इस पाठ मे यह बताया है कि दो घडी तक मन वचन कायासे पाप व्या-पार न करुंगा न कराउंगा और भूल से हो जावे तो उसकी निंदा गर्हा कर आत्मा को पाप से रोकूंगा ।

## श्रावक का दशवां व्रत देशावकाशिक ।

देशावकाशिक व्रत छठा व्रत का ही संबंधी है. पाप व्योपार छोडने को जो दिशि परिमाण जीवित पर्यंत के लिये किया है उसे एक रात वा दिन रात में संकोच कर बैठ उस समय धर्म ध्यान करना किंतु ध्यान यह रखना कि आप दूसरों को भी उस परिमाण से बहार न भेजे और आप साधु की तरह निरवद्य धर्म व्योपार में रहे पढे गुणे ।

## श्रावक का ११ वा व्रत पौषध ।

( पौषध की विधि अलग छप चुकी है वो देखो । )

पोषध व्रत से चारित्र का अभ्यास, धर्म की पुष्टि और समय का सदुप योग मुक्ति के लिये होता है साधु की तरह एक रात, दिनका पच्चखाण होता है देशा व काशिक से उसमें अधिक यह है कि पोषध में उपवास वा या आंबील वगैरह तप भी करना पडता है क्रिया भी करनी पडती और है दश सामायिक करके भी देशा व काशिक व्रत करने की परिपाटी है पीछे घर भी जा सकता है. और पोषध में तो वहां ही बैठना पड़ता है. दिन में स्थंडिल जाना होतो साधु की तरह बहार जा सके । मंदिर में भी जा सके किंतु द्रव्य पूजा न कर सके यह पोषध पर्व तिथि में होता है ।

## श्रावक का १२ अतिथि संविभाग व्रत है ।

यह व्रत पौषध के दूसरे दिन एकाशना पका पच्चखाण करके साधु वा साध्वी को आहार देकर जो साधु चीज लेवे वो ही उस दिन एका शना में वापरे जो साधु साध्वी न हो तो जीवित पर्यंत का ब्रह्मचर्य जिसने लिया हो उसे जिमा कर आप खावे वा मंदिर में नैवेद्य चढा कर भोजन करे ।

## श्रावक के १२ वां व्रत समाप्त ।

( मनोरमना )

जो आयु की मालूम होवे तो श्रावक संलेखना करे, और आहार छोड़े और निराकांक्षी हो बुद्धि में दृढ भावना रखे आज के समय मे आयु की मालुम न होने से यह परिपाटी नही है तो भी एक एक दिन वा एक एक कलाक का पच्चखाण कर सक्ते है किन्तु रोगी के पास बैठने वाले आदमी को हर समय उपयोग रखना चाहिये।

## श्रावक के योग्य तपश्चर्या।

वाह्य छे प्रकारका तप है १ उपवास, २ उणोदरी, ३ वृत्तिसंक्षेप, ४ रस त्याग, ५ काय क्लेश ६ संलीनता, अर्थात् बिल्कुल न खाना वा दिन मे सिर्फ फासु पानी पीना आंबी ल वा एकाशना करना कम खाना भिन्न भिन्न वस्तुऐ कम खानी, दूध दही वगैरह न खाना काया का दुःख सहन करना, शरीर स्थिर रखना।

## अभ्यं तर तप।

पाप होगयाहो उसका गुरु पास प्रयाश्चित लेना, बडो का विनय करना, बीमारा की सेवा और गुणवानों की भक्ति करना पढना पढाना फिर स्मरण करना धर्म कथा कहना ध्यान करना काउसग्ग करना।

## उसके बारे में दो गाथा याद करनी।

अणसण गुणोअरिया वित्तिसंखेवणं रसच्चाओ कायकिलेसो संलीणयाअवज्झो तवाहोइ ( १ ) पायच्छितं विणओ वेआवच्चं तहेव सज्झाओ ज्झाणं उसग्गोविअ अभ्भितर तवोहोइ २।

## वीर्याचार का वर्णन।

जितनी धर्म क्रिया करनी उसमें प्रमाद छोडना और विधि अनुसार यथा शक्ति करना।

श्रावक के १२ व्रतों दिक १२४ अतिचार हैसो हिंदी भापा में नीचे लिखे हैं।

## श्रावक का दशवां व्रत देशावकाशिक।

देशावकाशिक व्रत छठा व्रत का ही संबंधी है. पाप व्योपार छोडने को जो दिशि परिमाण जीवित पर्यंत के लिये किया है उसे एक रात वा दिन रात मे संकोच कर बैठ उस समय धर्म ध्यान करना किंतु ध्यान यह रखना कि आप दूसरों को भी उस परिमाण से बहार न भेजे और आप साधु की तरह निरवद्य धर्म व्योपार में रहे पढ़े गुणे।

## श्रावक का ११ वा व्रत पौषध।

( पौषध की विधि अलग छप चुकी है वो देखो। )

पौषध व्रत से चारित्र का अभ्यास, धर्म की पुष्टि और समय का सदुप योग मुक्ति के लिये होता है साधु की तरह एक रात, दिनका पच्चखाण होता है देशा व काशिक से उसमें अधिक यह है कि पौषध में उपवास वा वा आंबील वगैरह तप भी करना पडता है क्रिया भी करनी पडती और है दश सामायिक करके भी देशा व काशिक व्रत करने की परिपाटी है पीछे घर भी जा सका है. और पौषध में तो वहां ही बैठना पड़ता है. दिन में स्थंडिल जाना होतो साधु की तरह बहार जा सके। मंदिर में भी जा सके किंतु द्रव्य पूजा न कर सके यह पौषध पर्व तिथि में होता है।

## श्रावक का १२ अतिथि संविभाग व्रत है।

यह व्रत पौषध के दूसरे दिन एकाशना पका पच्चखाण करके साधु वा साध्वी को आहार देकर जो साधु चीज लेवे वो ही उस दिन एकाशना में वापरे जो साधु साध्वी न हो तो जीवित पर्यंत का ब्रह्मचर्य जिसने लिया हो उसे जिमा कर आप खावे वा मंदिर में नैवेद्य चढा कर भोजन करे।

## श्रावक के १२ वां व्रत समाप्त।

( संलेखना )

जो आयु की मालुम होवे तो श्रावक संलेखना करे, और आहार छोड़े और निराकांक्षी हो मुक्ति में दृढ भावना रखे आज के समय मे आयु की मालुम न होने से यह परिपाटी नहीं है तो भी एक एक दिन या एक एक कलाक का पच्चखाण कर सक्ते है किन्तु रोगी के पास बैठने वाले आदमी को हर समय उपयोग रखना चाहिये।

## श्रावक के योग्य तपश्चर्या।

बाह्य छे प्रकारका तप है १ उपवास, २ उणोदरी, ३ वृत्तिसंक्षेप, ४ रस त्याग, ५ काय क्लेश ६ संलीनता, अर्थात् बिल्कुल न खाना वा दिन मे सिर्फ फासु पानी पीना आंबिल वा एकाशना करना कम खाना भिन्न भिन्न वस्तुऐं कम खानी, दूध दही वगैरह न खाना काया का दुःख सहन करना, शरीर स्थिर रखना।

## अभ्यं तर तप।

पाप होगया हो उसका गुरु पास प्रयाश्चित लेना, बडो का विनय करना, बीमारो की सेवा और गुणवानों की भक्ति करना पढना पढाना फिर स्मरण करना धर्म कथा कहना ध्यान करना काउसग्ग करना।

## उसके बारे में दो गाथा याद करनी।

अणसण गुणोअरिया वित्तिसंखेवणं रसच्चाओ कायकिलेसो संलीण याअवज्झो तवाहोइ ( १ ) पायच्छितं विणओ वेय्यावच्चं तहेव सज्झाओ ज्झाणं उसग्गोविअ अभितर तवोहोइ २।

## वीर्याचार का वर्णन।

जितनी धर्म क्रिया करनी उसमें प्रमाद छोडना और विधि अनुसार यथा शक्ति करना।

श्रावक के १२ व्रतों दिक १२४ अतिचार हैसो हिंदी भाषा में नीचे लिखे है।

## ॥ अथ पाक्षिक अतिचार ॥

" नाणंमि दंसणंमि अ, चरणंमि तवमि तहय विरियंमि ।
आयरणं आयारो, इअ ऐसो पंचहा भणिओ ॥ १ ॥"

ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार, वीर्याचार, इन पांचों आचारों में जो कोई आतिचार पक्ष दिवस में सूक्ष्म या बादर जानते अजानते लगा हो वह सब मन वचन काया कर मिच्छामि दुक्कडं ॥

तत्र ज्ञानाचारे आठ अतिचार " काले विणए बहुमाणे, उवहाणे तहय निन्हवणे । वंजण अत्थ तदुभए, अट्ठविहो नाण मायारो ॥ २ ॥

ज्ञान नियमित वक्त में पढा नहीं । अकाल वक्त में पढा । विनय रहित, बहुमान रहित, योगोपधान रहित पढा । ज्ञान जिससे पढा उससे अतिरिक्त को गुरु माना या कहा । देववंदन, गुरुवंदन करते हुए, तथा प्रतिक्रमण, सज्झाय पढते अशुद्ध अक्षर कहा । लगमात्र न्यूनाधिक कहा । सूत्र असत्य कहा अर्थ अशुद्ध किया । अथवा, सूत्र, अर्थ दोनों -असत्य कहे । पढकर भूला । असज्झाई के समय में थविरावली, प्रतिक्रमण, उपदेश माला आदि सिद्धांत पढा । अपवित्र स्थान में पढा या विना साफ किये घृणित भूमीपर रखा ज्ञान के उपकरण तखती, पोथी, ठवणी, कवली, माला, पुस्तक रखनेकी रील, कागज, कलम, दवात आदिके पैर लगा, थूक लगा अथवा थूक से अक्षर मिटाया, ज्ञान के उपकरण को मस्तक के नीचे रखा, अथवा पास में लिए हुए आहार निहार किया, ज्ञान द्रव्य भक्षण करने वाले की उपेक्षा की, ज्ञान द्रव्य की सार संभाल न की, उलटा नुकसान किया ज्ञानवंत के ऊपर द्वेष किया, ईर्षा की, तथा अवज्ञा आशातना की किसी को पढने गुणने में विघ्न डाला, अपने जानपने का मान किया । मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान मनःपर्यवज्ञान और केवल ज्ञान इन पांचों ज्ञानों में श्रद्धा न की । गूंगे तोतले की हांसी की । ज्ञान में कुतर्क की, ज्ञान की विपरीत प्ररूपणा की । इत्यादि ज्ञानाचार संबंधी जो कोई अनाचार पक्ष दिवस में सूक्ष्म या बादर जानते अजानते लगा हो वह सब मन वचन काया कर मिच्छामिदुक्कडं ॥

दर्शना चार के आठ अतिचार—"निस्संकिय निकंखिय, निव्वितिगिच्छा अमूढ दिट्ठी अ। उववूह थिरी करणे, वच्छलप्पभावणे अट्ठ ॥ ३ ॥

देव गुरु धर्म मे निःशंक न हुआ। एकांत निश्चय न किया। धर्म संबंधी फल मे संदेह किया साधु साध्वी की जुगप्सा निंदा की। मिथ्यात्वियो की पूजा प्रभावना देखकर मूढदृष्टिपना किया। कुचारित्रों को देखकर चारित्र वाले पर भी अभाव हुआ। संघ मे गुणवान की प्रशंसा न की। धर्म से पतित होते हुए जीव को धर्म मे स्थिर न किया। साधर्मी का हित न चाहा। भक्ति न की। अपमान किया। देवद्रव्य, ज्ञानद्रव्य, साधारण द्रव्य की हानी होते हुए उपेक्षा की। शक्ति के होते हुए भली प्रकार सार संभाल न की। साधर्मी से कलह क्लेश करके कर्म बंधन किया। मुखकोश बांधे बिना भगवत् देव की पूजा की। धूपदानी, खस कूची, कलश आदिक से प्रतिमाजी को ठपका लगाया। जिनबिंब हाथ से छूटा। श्वासोच्छ्वास लेते आशातना हुई। मंदिर तथा पौषधशाला मे थूका, तथा मल श्लेश्म किया, हांसी मश्करी की कतूहल किया। जिन मंदिर संबंधी चौरासी आशातना में से और गुरु महाराज संबंधी तेतीस आशातना में से कोई आशातना हुई हो। स्थापनाचार्य हाथ से गिरे हों, या उनकी पडिलेहण न हुई हो गुरु के वचन को मान न दिया हो इत्यादि दर्शनाचार संबंधी जो कोई अतिचार पक्ष दिवस में सूक्ष्म या बादर जानते अजानते लगा हो वह सब मन वचन काया कर मिच्छामि दुक्कडं ॥

चरित्राचार के आठ अतिचार ॥ 'पणिहाण-जोग जुत्तो पचहिं समिईहिं तिहिं गुत्तिहिं। एस चरित्तायारो, अट्ठविहो होइ नायव्वो ॥ ४ ॥

इर्या समिति, भाषा समिति, एषणा समिति, आदान भंडमत्त निक्खेपणा समिति पारिष्ठपनिका समिति मनोगुप्ति, वचनगुप्ति यह आठ प्रवचनमाता सामायिक पौषधादिक में अच्छी तरह पाली नहीं, चारित्राचार संबंधी जो कोई अतिचार पक्ष दिवस में सूक्ष्म या बादर जानते अजानते लगा हो वह सब मन वचन काया कर मिच्छामि दुक्कडं ॥

विशेषतः श्रावक धर्म संबंधी श्रीसम्यक्त्व मूल बारह व्रत सम्यक्त्व के पांच अतिचार ॥

" संका कंखा विगिच्छा " शंका—श्रीअरिहंत प्रभु के बल अतिशय ज्ञ
लक्ष्मी गांभीर्यादिगुण शाश्वती प्रतिमा चारित्रवान के चारित्र में तथा जि
श्वर देव के वचन में संदेह किया। आकांक्षा—ब्रह्मा, विष्णु, महेश, क्षेत्रपाल
गरुड, गूगा, दिक्पाल, गोत्रदेवता, नवग्रह पूजा गणेश, हनुमान, सुग्री
वाली, माता, मसानी, आदिक—तथा देश नगर ग्राम गोत्र के जुदे जुदे दे
दिकों का प्रभाव देखकर शरीर में रोगातंक कष्टादि के आने पर इस लो
पर लोक के लिये पूजा मानता की। बौद्ध सांख्यादिक संन्यासी, भग
लिंगिये, जोगी, फकीर पीर इत्यादि अन्य दर्शनियों के मंत्र यंत्र चमत्क
को देख कर विना परमार्थ जाने मोहित हुआ। कुशास्त्र पढ़ा। सुना, श्रा
संवत्सरी, होली, राखडीपूनम—राखी, अजा एकम, प्रेत दूज, गौरीतीज
गणेश चौथ, नाग पंचमी, स्कंदषष्ठी, झीलणा छठ उभछठ, सील सत्तमी, दु
अष्टमी, राम नौमी, विजिया दशमी, व्रत एकादशी, वत्सद्वादशी, धन तेर
अनंत चौदस, शिव रात्रि, कालि चौदस, अमावास्या, आदित्यवार उत्तरा
यण योग भोगादि किये कराये करते को भला माना पीपल में पानी डाल
डलवाया कुआ तलाव नदी द्रह वावड़ी समुद्र कुंड ऊपर पुण्य निमित्त स्ना
तथा दान किया कराया अनुमोदन किया ग्रहण शनिश्चर माघमास नव रात्रिक
व्रत किया अज्ञानियों के माने हुए व्रतादि किये कराये वितिगिच्छा—धर्मसं
बंधी फल में संदेह किया। जिन वीतराग अरिहंत भगवान धर्म के आगा
विश्वोपकारक सागर मोक्ष मार्ग दातार इत्यादि गुण युक्त जानकर पूजा
की इसलोक परलोक संबंधी भोग वाञ्छा के लिये पूजा की रोग आतंक क
के आने पर क्षीण वचन बोला। मानता मानी महात्मा महा सती के आहा
पानी आदि की निंदा की मिथ्या दृष्टि की पूजा की पूजा प्रभावना देख क
प्रशंसा की प्रीति की। दाक्षिण्यता से उसका धर्म माना। मिथ्यात्व को धर्म
कहा। इत्यादि श्रीसम्यक्त्वव्रत संबंधी जोकोई अतिचारपक्ष दिवसमें सूक्ष्मया बादर
जानते अजानते लगा हो वह सब मन वचन काया कर मिच्छामिदुक्कडं ॥

पहिले स्थूल प्राणातिपात विरमण व्रत के पांच अतिचार " वह बंध
छविच्छेए " द्विपद चतुष्पद आदि जीव को क्रोध वश ताडन किया, घाव
लगाया, जकड कर बांधा अधिक बोझ लादा, निर्लांछन कर्म—

नासिका वींधवाई, कर्णछेदन करवाया, खसी किया, दाना घास पानी के समय सार वार न की, लेण देण में किसी के बदले किसी को भूखा रखा, पास खडा होकर मरवाया, कैद करवाया, सड़े हुए धान को विना शोधे काम मे लिया, अनाज शोधे विना पिसवाया, धूपमें सुकाया, पानी यतना से न छाना, ईंधन लकड़ी उपले गोहे आदि विना देखे जलाये, उसमें सर्प विच्छू कानखजूरा किडी मकोडी आदि जीवका नाश हुआ, किसी जीव को दबाया दुःख होते जीव को अच्छी जगह पर न रखा चील्ह काग कबूतर आदि के रहने की जगह का नाश किया, घोंसले तोडे, चलते फिरते या अन्य काम काज करते निर्दयपना किया। भली प्रकार जीव रक्षा न की विना छाने पानी से स्नानादिक काम काज किया, कपडे धोये। यतना पूर्वक काम काज न किया। चारपाई, खटोला, पीढा, पीढी आदि धूप में रखे डंडे आदि से झडकाये। जीव ससक्त जमीन को लीपी। दलते कूटते, लीपते या अन्य कुछ काम काज करते यतना न की। अष्टमी चौदस आदि तिथि का नियम तोडा। धूनी करवाई। इत्यादि पहिले स्थूल प्राणातिपात विरमण व्रतसंबंधी जो कोई अतिचार पक्ष दिवस में सुक्ष्म या वादर जानते अजानते लगा हो वह सब मन वचन काया कर मिच्छामिदुक्कडं॥

दूसरे स्थूल मृषावाद विरमण व्रत के पांच अतिसार॥ "सहस्सा रहस्स दारे०" सहसात्कार विना विचारे एक दम किसी को अयोग्य आल कलंक दिया स्वस्त्री संबंधी गुप्त वात प्रकट की, अथवा अन्य किसी का मंत्र भेद मर्म प्रकट किया। किसी को दुःखी करने के लिये खोटी सलाह दी। झूठा लेख लिखा। झूठी साक्षी दी अमानत में खयानत की किसी की धरोड वस्तु पीछी न दी कन्या, गौ, भूमि, सम्बंधी लेन देन में लडते झगड़ते वाद विवाद मे मोटा झूठ बोला। हाथ पैर आदि की गाली दी इत्यादि स्थूल मृषावाद विरमण व्रत संबंधी जो कोई अतिचार पक्ष दिवस में सुक्ष्म या वादर जानते अजानते लगा हो वह सब मन वचन काया कर मिच्छामि दुक्कडं॥

तृतीय स्थूल अदत्तादान विरमणव्रत के पांच अतिचार॥ "तेनाहडप्प ओगे०" घर बाहिर, खेत, खलामें, विना मालिक के भेजे वस्तु ग्रहण की।

" संका कंखा विगिच्छा " शंका—श्रीअरिहंत प्रभु के वल अतिशय ज्ञान लक्ष्मी गांभीर्यादिगुण शाश्वती प्रतिमा चारित्रवान के चारित्र में तथा जिनेश्वर देव के वचन में संदेह किया। आकांक्षा—ब्रह्मा, विष्णु, महेश, क्षेत्रपाल, गरुड, गूगा, दिक्पाल, गोत्रदेवता, नवग्रह पूजा गणेश, हनुमान, सुग्रीव, वाली, माता, मसानी, आदिक—तथा देश नगर ग्राम गोत्र के जुदे जुदे देवादिकों का प्रभाव देखकर शरीर में रोगातंक कष्टादि के आने पर इस लोक पर लोक के लिये पूजा मानता की। बौद्ध सांख्यादिक संन्यासी, भगत लिगिये, जोगी, फकीर पीर इत्यादि अन्य दर्शनियों के मंत्र यंत्र चमत्कार को देख कर बिना परमार्थ जाने मोहित हुआ। कुशास्त्र पढ़ा। सुना, श्राद्ध संवत्सरी, होली, राखडीपूनम—राखी, अजा एकम, प्रेत दूज, गौरीतीज. गणेश चौथ, नाग पंचमी, स्कंदषष्ठी, झीलणा छठ उभछठ, सील सत्तमी, दुर्गा अष्टमी, राम नौमी, विजिया दशमी, व्रत एकादशी, वत्सद्वादशी, धन तेरस अनंत चौदस, शिव रात्रि, कालि चौदस, अमावास्या, आदित्यवार उत्तरायण योग भोगादि किये कराये करते को भला माना पीपल में पानी डाला डलवाया कुआ तलाव नदी द्रह वावड़ी समुद्र कुंड ऊपर पुण्य निमित्त स्नान तथा दान किया कराया अनुमोदन किया ग्रहण शनिश्चर माघमास नव रात्रिका व्रत किया अज्ञानियों के माने हुए व्रतादि किये कराये वितिगिच्छा—धर्मसंबंधी फल में संदेह किया। जिन वीतराग अरिहंत भगवान धर्म के आगार विश्वोपकारक सागर मोक्ष मार्ग दातार इत्यादि गुण युक्त जानकर पूजा न की इसलोक परलोक संबंधी भोग वाञ्छा के लिये पूजा की रोग आतंक कष्ट के आने पर क्षीण वचन बोला। मानता मानी महात्मा महा सती के आहार पानी आदि की निंदा की मिथ्या दृष्टि की पूजा की पूजा प्रभावना देख कर प्रशंसा की प्रीति की। दाक्षिण्यता से उसका धर्म माना। मिथ्यात्व को धर्म कहा। इत्यादि श्रीसम्यक्त्वव्रत संबंधी जोकोई अतिचारपक्ष दिवसमें सूक्ष्मया बादर जानते अजानते लगा हो वह सब मन वचन काया कर मिच्छामिदुक्कडं ॥

पहिले स्थूल प्राणातिपात विरमण व्रत के पांच अतिचार " वह बंध-छविच्छेए " द्विपद चतुष्पद आदि जीव को क्रोध वश ताडन किया, घाव लगाया, जकड कर बांधा अधिक बोझ लादा, निर्लांछन कर्म—

नासिका वींधवाई, कर्णछेदन करवाया, खसी किया, दाना घास पानी के समय सार वार न की. लेण देण में किसी के बदले किसी को भूखा रखा, पास खडा होकर मरवाया, कैद करवाया, सड़े हुए धान को विना शोधे काम मे लिया, अनाज शोधे विना पिसवाया, धूपमें सुकाया, पानी यतना से न छाना, ईंधन लकड़ी उपले गोहे आदि विना देखे जलाये, उसमें सर्प विच्छू कानखजूरा किडी मकोडी आदि जीवका नाश हुआ, किसी जीव को दवाया दुःख होते जीव को अच्छी जगह पर न रखा चील्ह काग कबूतर आदि के रहने की जगह का नाश किया, घोंसले तोडे, चलते फिरते या अन्य काम काज करते निर्दयपना किया। भली प्रकार जीव रक्षा न की विना छाने पानी से स्नानादिक काम काज किया, कपडे धोये। यतना पूर्वक काम काज न किया। चारपाई, खटोला, पीढा, पीढी आदि धूप में रखे डंडे आदि से झडकाये। जीव ससक्त जमीन को लींपी। दलते कूटते, लीपते या अन्य कुछ काम काज करते यतना न की। अष्टमी चौदस आदि तिथि का नियम तोडा। धूनी करवाई। इत्यादि पहिले स्थूल प्राणातिपात विरमण व्रतसंबंधी जो कोई अतिचार पक्ष दिवस में सुक्ष्म या वादर जानते अजानते लगा हो वह सब मन वचन काया कर मिच्छामिदुक्कडं॥

दूसरे स्थूल मृषावाद विरमण व्रत के पांच अतिसार॥ "सहस्सा रहस्य दारे ०" सहसात्कार विना विचारे एक दम किसी को अयोग्य आल कलंक दिया स्वस्त्री संवंधी गुप्त वात प्रकट की, अथवा अन्य किसी का मंत्र भेद मर्म प्रकट किया। किसी को दुखी करने के लिये खोटी सलाह दी। झूठा लेख लिखा। झूठी साक्षी दी अमानत में खयानत की किसी की धरोड़ वस्तु पीछी न दी कन्या, गौ, भूमि, सम्वंधी लेन देन में लडते झगड़ते वाद विवाद मे मोटा झूठ वोला। हाथ पैर आदि की गाली दी इत्यादि स्थूल मृषावाद विरमण व्रत संवंधी जो कोई अतिचार पक्ष दिवस मे सुक्ष्म या वादर जानते अजानते लगा हो वह सब मन वचन काया कर मिच्छामि दुक्कड़ं॥

तृतीय स्थूल अदत्तादान विरमणव्रत के पांच अतिचार॥ "तेणाहडप्प ओगे०" घर वाहिर, खेत, खलामें, विना मालिक के भेजे वस्तु ग्रहण की।

" संका कंखा विगिच्छा " शंका—श्रीअरिहंत प्रभु केवल अतिशय ज्ञान लक्ष्मी गांभीर्यादिगुण शाश्वती प्रतिमा चारित्रवान के चारित्र में तथा जिनेश्वर देव के वचन में संदेह किया। आकांक्षा—ब्रह्मा, विष्णु, महेश, क्षेत्रपाल, गरुड, गूगा, दिक्पाल, गोत्रदेवता, नवग्रह पूजा गणेश, हनुमान, सुग्रीव, वाली, माता, मसानी, आदिक—तथा देश नगर ग्राम गोत्र के जुदे जुदे देवादिकों का प्रभाव देखकर शरीर में रोगातंक कष्टादि के आने पर इस लोक पर लोक के लिये पूजा मानता की। बौद्ध सांख्यादिक संन्यासी, भगत लिंगिये, जोगी, फकीर पीर इत्यादि अन्य दर्शनियों के मंत्र यंत्र चमत्कार को देख कर विना परमार्थ जाने मोहित हुआ। कुशास्त्र पढ़ा। सुना, श्राद्ध संवत्सरी, होली, राखडीपूनम—राखी, अजा एकम, प्रेत दूज, गौरीतीज, गणेश चौथ, नाग पंचमी, स्कंदषष्ठी, झीलणा छठ उभछठ, सील सत्तमी, दुर्गा अष्टमी, राम नौमी, विजिया दशमी, व्रत एकादशी, वत्सद्वादशी, धन तेरस अनंत चौदस, शिव रात्रि, कालि चौदस, अमावास्या, आदित्यवार उत्तरायण योग भोगादि किये कराये करते को भला माना पीपल में पानी डाला डलवाया कुआ तलाव नदी द्रह बावड़ी समुद्र कुंड ऊपर पुण्य निमित्त स्नान तथा दान किया कराया अनुमोदन किया ग्रहण शनिश्चर माघमास नव रात्रिका व्रत किया अज्ञानियों के माने हुए व्रतादि किये कराये वितिगिच्छा—धर्मसंबंधी फल में संदेह किया। जिन वीतराग अरिहंत भगवान धर्म के आगार विश्वोपकारक सागर मोक्ष मार्ग दातार इत्यादि गुण युक्त जानकर पूजा न की इहलोक परलोक संबंधी भोग वाञ्छा के लिये पूजा की रोग आतंक कष्ट के आने पर क्षीण वचन बोला। मानता मानी महात्मा महासती के आहार पानी आदि की निंदा की मिथ्या दृष्टि की पूजा की पूजा प्रभावना देख कर प्रशंसा की प्रीति की। दाक्षिण्यता से उसका धर्म माना। मिथ्यात्व को धर्म कहा। इत्यादि श्रीसम्यक्त्वव्रत संबंधी जो कोई अतिचार पक्ष दिवसमें सूक्ष्म या बादर जानते अजानते लगा हो वह सब मन वचन काया कर मिच्छामिदुक्कडं ॥

पहिले स्थूल प्राणातिपात विरमण व्रत के पांच अतिचार " वह बंधछविच्छेए " द्विपद चतुष्पद आदि जीव को क्रोध वश ताडन किया, घाव लगाया, जकड़ कर बांधा अधिक बोझ लादा, निर्लाञ्छन कर्म—

नासिका वींधवाई, कर्णछेदन करवाया, खसी किया, दाना घास पानी के समय सार वार न की, लेण देण में किसी के बदले किसी को भूखा रखा, पास खडा होकर मरवाया, कैद करवाया, सड़े हुए धान को विना शोधे काम में लिया, अनाज शोधे विना पिसवाया, धूपमें सुकाया, पानी यतना से न छाना, ईंधन लकड़ी उपले गोहे आदि विना देखे जलाये, उसमें सर्प विच्छू कानखजूरा किडी मकोडी आदि जीवका नाश हुआ, किसी जीव को दबाया दुःख होते जीव को अच्छी जगह पर न रखा चील्ह काग कबूतर आदि के रहने की जगह का नाश किया, घोंसले तोडे, चलते फिरते या अन्य काम काज करते निर्दयपना किया। भली प्रकार जीव रक्षा न की विना छाने पानी से स्नानादिक काम काज किया, कपडे धोये। यतना पूर्वक काम काज न किया। चारपाई, खटोला, पींढा, पीढी आदि धूप में रखे डंडे आदि से झडकाये। जीव ससक्त जमीन को लीपी। दलते कूटते, लीपते या अन्य कुछ काम काज करते यतना न की। अष्टमी चौदस आदि तिथि का नियम तोडा। धूनी करवाई। इत्यादि पहिले स्थूल प्राणातिपात विरमण व्रतसंबंधी जो कोई अतिचार पक्ष दिवस में सुक्ष्म या वादर जानते अजानते लगा हो वह सब मन वचन काया कर मिच्छामिदुक्कडं॥

दूसरे स्थूलमृषावाद विरमण व्रत के पांच अतिसार॥ "सहस्सा रहस्स दारे०" सहसात्कार विना विचारे एक दम किसी को अयोग्य आल कलंक दिया स्वस्त्री संबंधी गुप्त वात प्रकट की, अथवा अन्य किसी का मंत्र भेद मर्म प्रकट किया। किसी को दुखी करने के लिये खोटी सलाह दी। झूंठा लेख लिखा। झूंठी साक्षी दी अमानत में खयानत की किसी की धरोड़ वस्तु पीछी न दी कन्या, गौ, भूमि, सम्बंधी लेन देन में लडते झगड़ते वाद विवाद से मोटा झूंठ बोला। हाथ पैर आदि की गाली दी इत्यादि स्थूल मृषावाद विरमण व्रत संबंधी जो कोई अतिचार पक्ष दिवस में सुक्ष्म या वादर जानते अजानते लगा हो वह सब मन वचन काया कर मिच्छामि दुक्कडं॥

तृतीय स्थूल अदत्तादान विरमणव्रत के पांच अतिचार॥ "तेनाहडप्प ओगे०" पर घादिर, खेत, खलामें, विना मालिक के भेजे वस्तु ग्रहण की।

" संका कंखा विगिच्छा " शंका–श्रीअरिहंत प्रभु के वल अतिशय ज्ञान लक्ष्मी गांभीर्यादिगुण शाश्वती प्रतिमा चारित्रवान के चारित्र में तथा जिनेश्वर देव के वचन में संदेह किया। आकांक्षा–ब्रह्मा, विष्णु, महेश, क्षेत्रपाल, गरुड, गूगा, दिक्पाल, गोत्रदेवता, नवग्रह पूजा गणेश, हनुमान, सुग्रीव, वाली, माता, मसानी, आदिक–तथा देश नगर ग्राम गोत्र के जुदे जुदे देवादिकों का प्रभाव देखकर शरीर में रोगातंक कष्टादि के आने पर इस लोक पर लोक के लिये पूजा मानता की। बौद्ध सांख्यादिक संन्यासी, भगत लिंगिये, जोगी, फकीर पीर इत्यादि अन्य दर्शनियों के मंत्र यंत्र चमत्कार को देख कर बिना परमार्थ जाने मोहित हुआ। कुशास्त्र पढ़ा। सुना, श्राद्ध संवत्सरी, होली, राखडीपूनम–राखी, अजा एकम, प्रेत दूज, गौरीतीज, गणेश चौथ, नाग पंचमी, स्कंदषष्ठी, भीलणा छठ उभछठ, सील सप्तमी, दुर्गा अष्टमी, राम नौमी, विजिया दशमी, व्रत एकादशी, वत्सद्वादशी, धन तेरस अनंत चौदस, शिव रात्रि, कालि चौदस, अमावास्या, आदित्यवार उत्तरायण योग भोगादि किये कराये करते को भला माना पीपल में पानी डाला डलवाया कुआ तलाव नदी द्रह बावड़ी समुद्र कुंड ऊपर पुण्य निमित्त स्नान तथा दान किया कराया अनुमोदन किया ग्रहण शनिश्चर माघमास नव रात्रिका व्रत किया अज्ञानियों के माने हुए व्रतादि किये कराये वितिगिच्छा–धर्मसंबंधी फल में संदेह किया। जिन वीतराग अरिहंत भगवान धर्म के आगार विश्वोपकारक सागर मोक्ष मार्ग दातार इत्यादि गुण युक्त जानकर पूजा न की इसलोक परलोक संबंधी भोग बाञ्छा के लिये पूजा की रोग आतंक कष्ट के आने पर क्षीण वचन बोला। मानता मानी महात्मा महा सती के आहार पानी आदि की निंदा की मिथ्या दृष्टि की पूजा की पूजा प्रभावना देख कर प्रशंसा की प्रीति की। दाक्षिण्यता से उसका धर्म माना। मिथ्यात्व को धर्म कहा। इत्यादि श्रीसम्यक्त्वव्रत संबंधी जोकोई अतिचारपक्ष दिवसमें सूक्ष्मया बादर जानते अजानते लगा हो वह सब मन वचन काया कर मिच्छामिदुक्कडं ॥

पहिले स्थूल प्राणातिपात विरमण व्रत के पांच अतिचार " वह बंधछविच्छेए " द्विपद चतुष्पद आदि जीव को क्रोध वश ताडन किया, घाव लगाया, जकड कर बांधा अधिक बोझ लादा, निर्लांछन कर्म–

नासिका बींधवाई, कर्णछेदन करवाया, खसी किया, दाना घास पानी के समय सार वार न की, लेण देण में किसी के बदले किसी को भूखा रखा, पास खडा होकर मरवाया, कैद करवाया, सड़े हुए धान को विना शोधे काम में लिया, अनाज शोधे बिना पिसवाया, धूपमें सुकाया, पानी यतना से न छाना, ईंधन लकड़ी उपले गोहे आदि विना देखे जलाये, उसमें सर्प विच्छू कानखजूरा किडी मकोडी आदि जीवका नाश हुआ, किसी जीव को दबाया दुःख होते जीव को अच्छी जगह पर न रखा चील्ह काग कबूतर आदि के रहने की जगह का नाश किया, घोंसले तोडे, चलते फिरते या अन्य काम काज करते निर्दयपना किया। भली प्रकार जीव रक्षा न की विना छाने पानी से स्नानादिक काम काज किया, कपडे धोये। यतना पूर्वक काम काज न किया। चारपाई, खटोला, पीढा, पीढी आदि धूप में रखे डंडे आदि से झडकाये। जीव संसक्त जमीन को लीपी। दलते कूटते, लीपते या अन्य कुछ काम काज करते यतना न की। अष्टमी चौदस आदि तिथि का नियम तोडा। धूनी करवाई। इत्यादि पहिले स्थूल प्राणातिपात विरमण व्रतसंबंधी जो कोई अतिचार पक्ष दिवस में सुक्ष्म या बादर जानते अजानते लगा हो वह सब मन वचन काया कर मिच्छामिदुक्कडं॥

दूसरे स्थूल मृषावाद विरमण व्रत के पांच अतिसार॥ "सहस्सा रहस्य दारे ०" सहसात्कार विना विचारे एक दम किसी को अयोग्य आल कलंक दिया स्वस्त्री संबंधी गुप्त वात प्रकट की, अथवा अन्य किसी का मंत्र भेद मर्म प्रकट किया। किसी को दुखी करने के लिये खोटी सलाह दी। झूठा लेख लिखा। झूठी साक्षी दी अमानत में खयानत की किसी की धरोड़ वस्तु पीछी न दी कन्या, गौ, भूमि, सम्बंधी लेन देन में लडते झगड़ते वाद विवाद में मोटा झूठ बोला। हाथ पैर आदि की गाली दी इत्यादि स्थूल मृषावाद विरमण व्रत संबंधी जो कोई अतिचार पक्ष दिवस मे सुक्ष्म या बादर जानते अजानते लगा हो वह सब मन वचन काया कर मिच्छामि दुक्कड़ं॥

तृतीय स्थूल अदत्तादान विरमणव्रत के पांच अतिचार॥ "तेणाहडप्प ओगे०" घर बाहिर, खेत, खलामें, विना मालिक के भेजे वस्तु ग्रहण की।

अथवा विना आज्ञा अपने काम में ली । चोरी की वस्तु ली । चोर को सहायता दी ! राज्य विरुद्ध कर्म किया । अच्छी, बुरी, सजीव, निर्जीव, नई, पुरानी वस्तु का भेल संभेल किया । जकात की चोरी की । लेते देते तराजू की डंडी चढाई अथवा देते हुए कमती दिया लेते हुए अधिक लिया रिशवत खाई विश्वासघात किया ठगी की । हिसाब किताब में किसी को धोखा दिया। माता, पिता, पुत्र, मित्र, स्त्री आदिकों के साथ ठगी कर किसी को दिया अथवा पूंजी अलाहदा रखी । अमानत रखी हुई वस्तु से इनकार किया किसी को हिसाब किताब में ठगा । पडी हुई चीज उठाई । इत्यादि स्थूल अदत्तादान विरमण व्रत सम्बन्धी जो कोई अतिचार पक्ष दिवस मे सूक्ष्म या बादर जानते अजानते लगा हो वह सब मन वचन कायाकर मिच्छामि दुक्कडं ॥

चोथे स्वदारासंतोष परस्त्रीगमन विरमणव्रत के पांच अतिचार ॥ " अप्परिगहया इत्तर० " परस्त्रीगमन किया । अविवाहिता कुमारी, विधवा वेश्यादिक से गमन किया । अनंगक्रीडा की । काम आदिकी विशेष जाग्रती की अभिलाषा से सराग वचन कहा । अष्टमी चौदश आदि पर्व तिथि का नियम तोड़ा स्त्री के अंगोपांग देखे. तीव्र अभिलाषा की । कुविकल्प चिंतवन किया पराये नाते जोड़े । गुड्डे गुड्डियों का विवाह किया। करे वा कराया। अतिक्रम व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार स्वप्न स्वप्नांतर हुआ । कुस्वप्न आया स्त्री नट, विट, भांड़, वेश्यादिक से हास्य किया । स्वस्त्री में संतोष न किया। इत्यादिक स्वदारा संतोष परस्त्रीगमन विरमण व्रत सम्बन्धी जो कोई अतिचार पक्ष दिवस में सूक्ष्म या बादर जानते अजानते लगा हो वह सब मन वचन कायाकर मिच्छामि दुक्कड़ं ॥

पंचमे स्थूल परिग्रह परिमाणव्रत के पांच अतिचार ॥ " धण धन्न खित्त वत्थू० " धन धान्य, क्षेत्र, वस्तु, सोना, चांदी, वर्तन आदि द्विपद दास दासी नौकर, चतुष्पद गौ बैल घोड़ादि, इन नव प्रकार के परिग्रह का नियम नहि लिया, लेकर बढाया अथवा अधिक देखकर मूर्छावश माता पिता पुत्र स्त्री के न नाम किया । परिग्रह का प्रमाण किया नहीं करके भूलाया याद न किया इत्यादि स्थूल परिग्रह परिमाण व्रत संबंधी जो कोई अतिचार पक्ष दिवस में सूक्ष्म या बादर जानते अजानते लगा हो वह सब मन वचन काया कर

च्छामि दुक्कडं ॥

छट्ठे दिक्परिमाणव्रत के पांच अतिचार ॥ " गमणस्सउ परिमाणे " ऊर्ध्वदिशि, अधोदिशि, तिर्यग्दिशि जाने आने के नियमित प्रमाण उपरान्त भूल से गया। नियम तोड़ा प्रमाण उपरांत सांसारिक कार्य के लिये अन्य देश से वस्तु मंगवाई। अपने पास से वहां भेजी। नौका जहाजादि द्वारा व्यापार किया वर्षाकाल में एक ग्राम से दूसरे ग्राम में गया। एक दिशा के प्रमाण को कम करके दूसरी दिशा मे अधिक गया। इत्यादि छट्ठे दिक्परिमाण व्रतसम्बंधी जो कोई अतिचार पक्ष दिवस में सूक्ष्म या बादर जानते अजानते लगा हो वह सब मन वचन कायाकर मिच्छामि दुक्कडं ॥

सातमे भोगोपभोग व्रत के भोजन आश्री पांच और कर्म आश्री पंदरां अतिचार ॥ " सच्चिते पडिबध्धे " सचित्त खानपानकी वस्तु नियम से अधिक अंगीकार की। सचित्त से मिली हुई वस्तु खाई। तुच्छ औषधी का भक्षण किया। अपक्व आहार दुपक्व आहार किया। कोमल इमली, बूंट, भुट्टे, फलिया आदि वस्तु खाई। सचित्त १ दव्व २ विगई ३ वाणह ४ तंबोल ५ वत्थं ६ कुसुमेसु ७। वाहण ८ सयण ९ विलेवण १० बंभ ११ दिसि १२ न्हाण १३ भत्तेसु १४ ॥ १ ॥

यह चौदह नियम लिये नहीं। लेकर भुलाये। वड, पीपल, पिलंखण, कठुंवर, गूलर, यह पांच फल मदिरा, मांस शहद, मक्खन यह चार महा विगई, वरफ, ओले, कच्ची मिट्टी, रात्री भोजन, वहुवीजाफल, अचार घोलवडे द्विदल, वेंगण, तुच्छफल, अजानाफल, चलितरस अनंतकाय, यह बाईस अभक्ष्य, सूरन, जिमीकंद, कच्ची हलदी, सतावरी, कच्चानरकचूर, अदरक, कुवांरपाठा, थोर गिलोय, लसन गाजर, गट्ठा-प्याज, गोंगलु कोमल फल फूल पत्र, थेगी हरा मोत्था, अमृत वेल, मूली, नीम की गिलोय पदवडा, आलुक चालु, रतालु, पिंडालु आदि अनंतकाय का भक्षण किया दिवस अस्त होते हुये भोजन किया। सूर्योदय से पहिले भोजन किया तथा कर्मतः पंद्रह कर्मादान इंगालकम्मे, साडिकम्मे, भाडिकम्मे, फोडिकम्मे यह पांच कर्म। दंतवाणिज्ज, लक्खवाणिज्ज, केस वाणिज्ज, रसवाणिज्ज, विसवाणिज्ज यह पांच वाणिज्ज, जंत पिल्लण कम्म, निल्लंछन कम्म

दवग्गिदावणिया, सर दह तलाव सोसणया असइ पोसणया, यह पांच सामान्य, एवं कुल पंद्रह कर्मादान महा आरंभ किये कराये करते जो अच्छा समझा। श्वान, बिल्ली, आदि पोषे पाले। महा सावद्य पापकारी कठोर काम किया। इत्यादि सातमें भोगोप भोग व्रत संबंधी जो कोई अतिचार पक्ष दिवस में सूक्ष्म या बादर जानते अजानते लगा हो वह सब मन वचन काय कर मिच्छामि दुक्कड॥

आठमें अनर्थदंड के पांच अतिचार॥ "कंदप्पे कुक्कुइए०" कंदर्प-कामाधीन होकर नट, विट, वेश्या, आदिक से हास्य खेल क्रीड़ा कतूहल किया। स्त्री पुरुष के हावभाव रूप श्रृंगार संबंधी वार्ता की। विषयरसपोषक कथा की। स्त्रीकथा, देशकथा, भक्तकथा, राजकथा, यह चार विकथा की, पराई भांजगढ की। किसी की चुगल खोरी की। आर्त्तध्यान रौद्रध्यान ध्याया। खांडा, कटार, कशि, कुहाडी, रथ उखल, मूसल, अग्नि, चक्की, आदिक वस्तु दाक्षिण्यता वश से किसी को मांगी दी। पापोपदेश दिया। अष्टमी चतुर्दशी के दिन दलने पीसने का नियम तोड़ा। मूर्खता से असंबद्ध वाक्य बोला। प्रमादाचरण सेवन किया। घी, तैल, दूध, दही, गुड, छाछ आदिक भाजन ( बर्तन ) खुला रखा उसमें जीवादिका नाश हुआ। बासी मांखण रखा और तपाया। न्हाते धोते दातण करते जीव आकुलित मोरी में पानी डाला। झूले में झूला। जुवा खेला। नाटक आदि देखा। ढोर, डंगर, खरीदवाये। कर्कश वचन कहा। किचकिची ली। ताड़ना तर्जना की। मत्सरता धारण की। श्राप दिया भैंसा, सांढ, मेढा, मुरगा, कुत्ते, आदिक लडवाये या इनकी लडाई देखी। ऋद्धिमान् की ऋद्धि देख ईर्षा की। मिट्टी, नमक, धान, बिनोले, विनाकारण मसले। हरी वनस्पति खुंदी। शस्त्रादिक बनवाये। रागद्वेष के वश से एकका भला चाहा। एकका बुरा चाहा। मृत्यु की वांछा की। मैना, तोते, कबूतर, बटेर, चकोर आदि पक्षियों को पींजरे में डाला। इत्यादि आठमें अनर्थ दंड विरमण व्रत संबंधी जो कोई अतिचार पक्ष दिवसमें सूक्ष्म या बादर जानते अजानते लगा हो वह सब मन वचन कायाकर मिच्छामि दुक्कडं॥

नवमे सामायिक व्रतके पांच अतिचार। "तिविहे दुप्पणिहाणे०" सा-

मायिक में संकल्प विकल्प किया। चित्त स्थिर न रखा। सावद्य वचन बोला प्रमार्जन किये विना शरीर हलाया, इधर उधर किया। शक्तिके होते हुए सामायिक न किया। सामायिक मे खुले मुंह बोला। नींद ली। विकथा की। घर सम्बन्धी विचार किया। दीपक या बिजली का प्रकाश शरीरपर पड़ा। सचित्त वस्तुका संघट्टा हुआ। स्त्री तिर्यंच आदिका निरंतर परंपर संघट्टा हुआ। मुहपत्ति संघट्टी। सामायिक अधूरा पारा। विना पारे ऊठा। इत्यादि नवमे सामायिक व्रतसंबंधी जो कोई अतिचार पक्ष दिवस मे सूक्ष्म या बादर जानते अजानते लगा हो वह सब मन वचन काया कर मिच्छामि दुक्कडं ॥

दशमे देशावकाशिक व्रतके पांच अतिचार ॥ "आणवणे पेसवणे०" आणवणप्पओगे, पेसवणप्पओगे, सद्दाणुवाई, रूवाणुवाई, वहिया पुग्गल पखेवे, नियमित भूमि मे बाहिर से वस्तु मंगवाई। अपने पाससे अन्यत्र भिजवाई। खुखारा आदि शब्द करके, रूप दिखाके, या कंकर आदि फेंककर अपना होना मालूम किया। इत्यादि दशमे देशावकाशिक व्रत संबंधी जो कोइ अतिचार पक्ष दिवसमें सूक्ष्म या बादर जानते अजानते लगा हो वह सब मन वचन काया कर मिच्छामि दुक्कड ॥

अग्यारहवे पौषधोपवास व्रतके पांच अतिचार ॥ "संथारुच्चार विहि०" अप्पडिलेहिअ दुप्पडिलेहिअ सिज्जा संथारए। अप्पडिलेहिय दुप्पडिलेहिय उच्चार पासवण भूमि। पौषध लेकर सोनेकी जगह विना पूंजे प्रमार्जे सोया। स्थंडिल आदिकी भूमी भली प्रकार शोधी नही। लघु नीति वडी नीति करने या परठने समय "अणुजाणह जस्सुग्गह" न कहा। परठे बाद तीन वार वोसिरे वोसिरे वोसिरे न कहा। जिनमंदिर और उपाश्रयमे प्रवेश करते हुए निसिही और बाहिर निकलते आवस्सही तीन वार न कही। वस्त्र आदि उपधिकी पडिलेहणा न की। पृथ्वीकाय, अपकाय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, त्रसकाय का संघट्टा हुआ। संथारा पोरिसी पढ़नी भुलाई। विना संथारे जमीनपर सोया। पोरिसीमें नींद ली। पारना आदिकी चिंता की। समयसर देववंदन न किया। प्रतिक्रमण न किया। पौषध देरीसे लिया और जल्दी पारा। पर्व तिथिको पौसह न लिया. इत्यादि ग्यारहवें पौषध व्रत संबंधी जो कोई अतिचार पक्ष दिवसमें सूक्ष्म या बादर जानते अजानते लगा हो

व मन वचन काया कर मिच्छामि दुक्कडं ॥

वारहवें अतिथिसंविभाग व्रतके पांच अतिचार ॥ " सच्चित्ते निक्खिव-
० " सचित्तवस्तुके संघट्टेवाला अकल्पनीय आहार पानी साधु साध्वीको
या। देनेकी इच्छासे सदोष वस्तुको निर्दोष कही। देनेकी इच्छासे पराई
तुको अपनी कही। न देनेकी इच्छासे निर्दोष वस्तुको सदोष कही। न दे-
की इच्छासे अपनी वस्तुको पराई कही। गोचरीके वक्त इधर उधर होगया।
चरीका समय टाला . वेवक्त साधु महाराजको प्रार्थना की। आये हुए गु-
वानकी भक्ति न की। शक्ति के होते हुए स्वामी वात्सल्य न किया। अन्य
सी धर्मक्षेत्र को पड़ता देख मदद न की। दीन दुःखीकी अनुकंपा न की।
यादि वारहवें अतिथि संविभाग व्रत संबंधी जो कोई अतिचार पक्ष दिवस
सूक्ष्म या वादर जानते अजानते लगा हो वह सब मन वचन काया कर
च्छामि दुक्कडं ॥

संलेपणा के पांच अतिचार ॥ " इह लोए परलोए० " इहलोगासंसप्प-
गे। परलोगासंसप्पओगे। जीवियासंसप्पओगे। मरणासंसप्पओगे। काम
गासंसप्पओगे। धर्म के प्रभाव से इस लोक संबंधी राजऋद्धि भोगादिकी
छा की। परलोक में देव देवेंद्र चक्रवर्त्ती आदि पदवीकी इच्छा की। सुखी
स्था मे जीने की इच्छा की। दुःख आने पर मरनेकी वांछा की। काम
ग की वांछा की। इत्यादि संलेपणा व्रत संबंधी जो कोई अतिचार पक्ष
वस में सूक्ष्म या वादर जानते अजानते लगा हो वह सब मन वचन काया
र मिच्छामि दुक्कडं ॥

तपाचारके वारह भेद छ वाह्य छ अभ्यंतर। " अणसणमुणोअरिया० "
नशन शक्ति के होते हुए पर्वतिथिको उपवास आदि तप न किया ऊनोदरी
चार ग्रास कम न खाये। वृत्तिसंक्षेप-द्रव्य-खाने की वस्तुओं का संक्षेप न
या। रस विषय त्याग न किया। कायक्लेश-लोच आदि कष्ट न किया।
लीनता अंगोपांगका संकोच न किया,। पच्चखाण तोड़ा। भोजन करते समय
एकासणा आंविलप्रमुख में चौकी, पटड़ा, अखला आदि हिलता ठीक न कि-
। पच्चक्खान पारना भूलाया। वेठते नवकार न पढ़ा। उठते पच्चखाण
किया निवि आंविल उपवास आदि तपमें कच्चा पानी पिया। वमन हुआ।

इत्यादि बाह्य तप संबंधी जो कोई अतिचार पक्ष दिवसमें सूक्ष्म या बादर जानते अजानते लगा हो वह सब मन वचन काया कर मिच्छामि दुक्कडं ॥

अभ्यंतर तप "पाय च्छित्त विणओ ० शुद्धान्त करण पूर्वक गुरु महाराज से आलोचना न ली। गुरु की दी हुई आलोचना संपूर्ण न की। देव गुरु संघ साधर्मी का विनय न किया। बाल वृद्ध ग्लान तपस्वी आदि की वैय्यावच्च न की। वाचना, पृच्छना, परावर्त्तना, अनुप्रेक्षा धर्मकथा लक्षण पांच प्रकार का स्वाध्याय न किया। धर्म ध्यान, शुक्ल ध्यान ध्याया नहीं, आर्तध्यान रौद्रध्यान ध्याया। दुःख क्षय कर्म क्षय निमित्त दश वीस लोगस्सका काउसग्ग न किया। इत्यादि अभ्यंतर तप संबंधी जो कोई अतिचार पक्ष दिवस में सूक्ष्म या बादर जानते अजानते लगा हो वह सब मन वचन काया कर मिच्छामि दुक्कडं ॥

वीर्याचार के तीन अतिचार पढते, गुणते, विनय, वैय्यावच्च, देवपूजा, सामायिक, पौषध, दान शील तप, भावनादिक धर्मकृत्य मे मन, वचन, काया का बल, वीर्य, पराक्रम फोरा नहीं, विधि पूर्वक पंचांग खमासमण न दिया, द्वादशावर्त्त वंदनका विधि भली प्रकार न किया, अन्य चित्त निरादर से बैठा देव वंदन प्रतिक्रमण में जल्दी की। इत्यादि वीर्याचार संबंधी जो कोई पक्ष अतिचार पक्ष दिवस मे सूक्ष्म या बादर जानते अजानते लगा हो वह सब मन वचन काया कर मिच्छामि दुक्कडं ॥

नाणइ अट्ठ पइवय, समसलेहण पन्नर कम्मेसु ॥
बारस तव विरिअ तिगं, चव्वीस सय अइयारा ॥

"पडि सिद्धाणं करणे ०" प्रतिषेध-अभक्ष्य अनंतकाय बहुबीज भक्षण महारंभ परिग्रहादि किया। देव पूजन आदि षट कर्म सामायिकादि छ आवश्यक विनयादिक अरिहंत की भक्ति प्रमुख करणीय कार्य किये नहीं। जीव अजीवादिक सूक्ष्म विचार की सद्दहणा न की। अपनी कुमति से उत्सूत्र प्ररूपणा की। तथा प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य रति अरति, परपरिवाद, माया, मृषावाद, मिथ्यात्वशल्य, यह अठारह पापस्थान किये कराये अनुमोदे। दिन कृत्य प्रतिक्रमण विनय वैयावत्य न किया और भी जो कुछ वीतरागकी

आज्ञा से विरुद्ध किया, कराया करते को भला जाना। इन चार प्रकारके अतिचार में जो कोई अतिचार पक्ष दिवस सूक्ष्म या बादर जानते अजानते लगा हो वह सब मन वचन काया मिच्छामि दुक्कडं ॥

एवंकारे श्रावक धर्म सम्यक्त्वमूल बारह व्रत संबंधी एकसौ चौवीस अतिचारों में से जो कोई अतिचार पक्ष दिवस में सूक्ष्म या बादर जानते अजानते लगा तो वह सब मन वचन काया कर मिच्छामि दुक्कडं ॥ इति ॥

## शुद्धि पत्र ॥

| प्र० | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| १ | १० | ध्मान | ध्यान |
| १ | १२ | वरि | वीर |
| ५ | १७ | आज | आज |
| २ | २० | आरै | और |
| १० | ६ | मे | मैं |
| १० | १३ | सौभ्य | सौम्य |
| १३ | ८ | पापादि | पापादि |
| १६ | ४ | उन्हों | उन्होंने |
| १७ | २१ | औ | और |
| १८ | १७ | पडा | पडा |
| २१ | १३ | दाचिएता | दाक्षिण्यता |
| २२ | ३ | धन | बन |
| २२ | ११ | वो | उसने |
| २२ | २२ | सौभ्य | सौम्य |
| २३ | ४ | जाती जाती | जाती |
| २३ | ४ | जौर | और |
| २५ | २१ | अदरय | अदृश्य |
| २८ | २६ | निसहता | निस्पृहता |
| २९ | १ | दृटात | दृष्टान्त |
| २९ | ४ | निदोप | निर्दोष |
| २९ | ४ | दृष्ठि | दृष्टि |
| २९ | २५ | आदे | आवे |
| २९ | २२ | सदाचार | सदाचारी |
| २९ | ३ | पार्शो | पार्श्वों |
| ३० | ३ | उनका | उनका |
| ३५ | ३ | जिनने | जिनने |
| ३५ | ८ | ई | ई |
| ३५ | २५ | जुदे जुदे | भिन्न भिन्न |
| ३६ | ५ | निकगा | निकगा |

## शुद्धि पत्र

| प्र० | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| ३७ | ५ | जीव का | जीवों को |
| ३९ | २३ | मे | में |
| ४१ | ४ | वेयार | तैयार |
| ४१ | १८ | देश विरित | देश विरति |
| ४४ | १७ | हलिता | हीलता |
| ४३ | १४ | दुखो | दखो |
| ४३ | १८ | दौ | दो |
| ५२ | ११ | परिणाम | परिमाण |
| ५३ | १३ | सताप | सतोष |
| ५६ | २५ | आता जाता | आना जाना |
| ६० | १२ | और है | है और |
| ६० | १५ | १२ | १२ वा |
| ६० | १६ | पका | का |
| ६० | ३ | व्रतादिक | व्रतादिक |
| ६२ | १ | नाणानि | नाणमि |
| ६२ | २ | भाणियो | भणियो |
| ६३ | ५ | चारित्रो | चारित्री |
| ६३ | ३२ | ...... | काय गुप्ति |
| ६३ | ३२ | परिष्टा | पारिष्टा |
| ६४ | २ | शास्वतो | शास्वति |
| ६५ | ४ | धूप में | धूप में |
| ६५ | १७ | रहस्य | रहस्य |
| ६६ | १२ | गह्या | गहिया |
| ६७ | १३ | निट्टी | निट्टा |
| ६८ | ३ | कठो | कठोर |
| ६६ | ११ | स्वस्तु | वस्तु |
| ६६ | १३ | कांद | कांद |
| ६६ | २ | जस्सुगइ | जस्सगा |
| ७० | १ | सानं | आनं |
| ६६ | १३ | कन्या | कन्या |

# अपूर्व ग्रंथ ॥

— - २ - —

श्रीपाल चरित्र अर्थात् श्रीपाल राजा के रास का मूल के साथ हिन्दी भाषान्तर इस ग्रंथ मे कर्म और उद्योग की स्पर्द्धा दिखाई है और मनुष्य की बुद्धि से भी अधिक धर्म का प्रभाव है वह दिखाया है. साथ मे नव पदजी का माहात्म्य भी बताया है श्रीमान् विनय विजयजी और यशोविजयजी महाराज ने काशी मे विदेशी पंडितों को जीत बनारस के पंडितों को लाज रखी थी उन्होने पुराणे संस्कृत और मागधी ग्रंथो का आधार लेकर यह ग्रंथ बनाया है अपने घरके स्त्री और बालको को अच्छी शिक्षा देना चाहे अथवा जो मुक्ति चहे उनको यह ग्रंथ अवश्य रखना चाहिये मूल्य दो रुपये।

ग्रंथ महासुद १५ तक तैयार होगा।

आत्मनंद पुस्तक प्रचारक मंडल·
रोसनमुहुला
आगरा

सोभाग्यमल हरकावत
नया बाजार
अजमेर

## नीचे लिखी हुई किताबें तैयार है

| | | | |
|---|---|---|---|
| जीव विचार मूल और अर्थ | | | ०-३-० |
| नवतत्व | ,, | ,, | ०-५-० |
| संग्रहणी | ,, | ,, | ०-८-० |
| कल्पसूत्र | ,, | ,, | १-८-० |
| सामायिक | ,, | ,, | ०-२-० |
| भक्तामर कल्याण मंदिर | | ,, | ०-२-० |
| दो प्रतिक्रमण | ,, | ,, | ०-४-० |

कर्मग्रंथ छप रहा है

४था ५वा प्रभु का चरित्र भेट      धर्म रत्न प्रकरण सार भेट

## मिलने के पते

आगरा रोसन मुहल्ला

आत्मानंद जैन पुस्तक प्रचारक मंडल,

सोभागमल हरकावत,

अजमेर

सुख कारण भवियण समरूं नित नवकार जिनशासन
आगम चवदै पूरव सार ॥ इण मंत्रैं महिमा कहत न
लाभैं पार । सुरतरु जिम चिंतित वंछित फलदातार ॥
१ ॥ सुरदानव मानव सेवकरै करजोड़ । भूमंडल वि
चरैं तारे भवियण कोड़ ॥ सुरछंदै विलसै अतिशय
जास अनंत । पहिले पदनमिये अरिगंजन अरिहंत ॥
२ ॥ जे पनरै भेदै सिद्धथया भगवंत । पंचमगति प
हुंता अष्टकरम करिअंत ॥ कलअकलसरूपी पचानंत
गदेह । जिणवर पयप्रणमु वीजैपदवलि एह ॥ ३ ॥
गिरुआगछ नायक गुणछत्तीस उदार । उपसम रस
भरिया जिन सासन जयकार ॥ गछ भार धुरंधर सु
दरससि हरसोभ । करिसारण वारण गुणछतीसेथोभ ।
श्रुतजाण सिरोमणि सागर जेमगंभीर । तीजै पदनमिये
आचारिज गिरधीर ॥ ४ ॥ श्रुतधरगुणआगर सूत्र भ
णावेसार । तपविधसुं जोवेंभाखै अरथविचार ॥ मुनि
वर गुणजोतां कहिये ते उवझाय । चौथे पद नमिये
अहिनिसि तेहना पाय ॥ ५ ॥ पंचाश्रव टालै पालै
पंच आचार । तपसीगुणधारी वारीविषय विकार ॥
तसथावर पीहर लोक मांहें जेसाध । त्रिविधें तेप्रणमुं
परमारथ गुण लाध ॥ ६ ॥ अरिकरिहरि सायण डा
यण भूतवेताल । सवपाप पणासें भासे मंगलमाल ॥
इण समस्यां संकट दूरटलै ततकाल । इम जंपे जिन

नन्नवियण परिहरो॥ परिहरो न्नोजन रयणिकेरो । प्र
तिखपातिक एहनो॥ संसारग़ुलसीदुःखसहसी। सुस्कट
लसी देहनो ॥ इसोजांणी न्नविक सघले। नूलगुणतुम्हे
च्छादरो सुण बह्छ गोयम वीर जंपे मुक्ति हेला यों तरो
३ ॥ इति ह्र सवर सिज्जाय संपूर्णम् ॥

॥र्दय॥ दोहा ॥ सुकृतवल्लि कादंविनी । समरीसरस
तिमात ॥ समकित सफ़सठि बोलनी। कहिस्युं मधुरी
बात ॥ १ ॥ समकित दायक गुरुतणों। पञ्जुवयार न
थाय ॥ न्नवकोफ़ा कोफ़ेंकरी । करतां सर्व उपाय ॥ २
दानादिक किरिया न दे । समकित विण शिव न्नर्मे
तेमाटे समकित वड्डुं। जांणों प्रवचन मर्म॥ ३ ॥ दर्शन
मोह विनाशथी । जेनिर्मल गुणठाण ॥ तेनिश्चय स
मकित कह्यो। तेहना ए ज्ञहिठाण॥ ४ ॥ देंइ देइदर
सण च्छापणुं एहेञ्जी ॥ चउसरदहणा ४ तिलिंग ३ बे
दशविध विनय १० विचारो रे त्रिणशुद्धी पण दूपण
५ ॥ च्छाठ प्रज्ञावक धारोरे॥ ५॥ प्रन्नावक च्छफ़पंच
५ न्नूपण पंच ५ लक्षण जाणिये । षट ६ जयण षट
६ च्छागार न्नावन छव्विहामन च्छाणिये॥ ६ ॥ षट्६
ठाणसमकित तणां सफ़सठि ६७न्नेद उदारए। एहनो
तत्व विचारकरतां। लहीजे न्नवपारए। चउविह सद्द
हणातिहां । जीवादिक परमत्थोरे प्रवचनमांहें जेन्ना
षिया । लीजे तेहनों अत्थो रे ॥ तेहनों च्छरथ विचा
र करिये प्रथम सद्दहणा खरी ॥ बीजी सद्दहणा तेह
ना जे जाण मुनिगुण जवहरी॥ संवेग रंगतरंग न्नी
लें मार्गशुद्ध कहेंवुधा। तेहनीसेवाकीजिये जिमपीजि
ये समता सुधा ॥ ९ ॥ समकित जेणें ग्रहि वम्यो ॥
निन्हवने छहाछंदा रे। पासत्थानें कुसीलिया वेपवि

झंबकमंदा रे ॥ ९ ॥ मंदाज्ञनाणी दूरवंझो । तीजीसद्दह णाग्रही परदर्शनीनो संगतजिये । चौथीसद्दहणा कही हीननो नहिसंगत्या जैं । तेहनो गुणनविरहे ज्युजल धिजलमांज्ञिल्युं । गंगानीर लूणपणूंलहे ॥ १० ॥

ढाल । कपूरहोवें अतिउजलूं रें ॥ एदेशी ॥ त्रिणलिं ग समकिततणारे । पहिलो श्रुतअज्ञिलाप जेहथी ॥ श्रोता रसलहै रे । जेहवोसाकर ड्राखरे ॥ प्राणीधरिये समकित रंग । जिमलहिये सुख अज्ञंगरे । प्राणी० ॥ ११ ॥ तरूणसुखीस्त्री परिवस्यो रे । चतुरसुणेंसुरगीत तेहथीरागें अतिघणों रे । धर्मसुण्यानीरीत रे प्रा० ॥ जूखो अटवी ऊतर्यो रे । जिमद्विज घेवर चंग ॥ इ च्छैंतिमजे धर्म्मनें रे । तेहिज बीजूं लिंगरे प्रा० ॥ १२ वेयावच गुरुदेवनी रे । तीजोलिंगउदार ॥ विद्यासाध क तणी परै रे । आलस नवियलगाररे प्रा० ॥ १४ ॥

ढाल । प्रथम गोवाला तणे ज्ञवेजी ॥ एदेशी ॥ अरि हंत ते जिन विचरताजी । कर्म्म खपीज्ञवा सिद्ध ॥ चेइयजिण पडिमाकहीजी । सूत्रसिद्धांत प्रसिद्ध ॥ १५ चतुरनरसमझो विनयप्रकार । जिमलहियेसमकितसार चतुर० ॥ ए आंकणी० । धर्मपिमादिक ज्ञापियोजी । साधू तेहनाजीगेह ॥ आचारिज आचारनाजी । दायक नायक जेह च० ॥ १६ ॥ उपाध्यायते शिष्यनेंजी । सूत्रज्ञणावणहार ॥ प्रवचन संघवपाणियेजी । दरसण समकितसार च० ॥ १७ ॥ ज्ञगतिवाह्य प्रतिपत्तिथीजी हृदय प्रेम बहुमान ॥ गुणथुति अवगुण ढांकवाजी । आशातननीहाण च० ॥ १९ ॥ पंचज्ञेदए दशतणांजी विनयकरे अनुकूल ॥ सींचैं तेह सुधारसैंजी । धर्मवृक्ष नूंमूल च० ॥ १९ ॥ ढाल ॥ धोंबीडा तूं धोई मननूं

घोतीयूं रे ॥ एदेशी ॥ त्रिण शुद्धी समकित तणीरे ॥ तिहां पहिली मनशुद्धिरे । श्रीजिननें जिनमतविना रे ॥ झूठसकल एबुद्धिरे ॥ २० ॥ चतुर विचारोचित्त मांरे । एआंकणीं ॥ जिनभगतैं जेनविथयुंरे । तेवीजा थी नविथाइं रे ॥ एहवूं जे मुख भापियें रे । तेवचन शुद्धि कहवायें रे चतु० ॥ २१ ॥ छेदो भेदो वेदनारे जे सहतो अनेक प्रकारें रे । जिणविण नरसुर नवि नमेंरे ॥ तेहनी काया शुद्ध उदार रे चतु० ॥ २२ ॥ ॥ ढाल ॥ मुनिजन मारगनी ॥ समकित दूषण परिहरो । तेहमां पहिली वै शंकारे ॥ ते जिन वचन मां मतकरो । जेहनें समनृप रंकारे ॥ २३ ॥ समकित दूषण परिहरो । ए आंकणी ॥ कंखा कुमतिनी वांछना बीजूं दूषण त्यजिये । पामीसुरतरु परगडो ॥ किमबाउल भजिये स० ॥ २४ ॥ संशाय धर्मना फल तणो । वितिगिच्छानामें ॥ त्रीजूं दूषण परिहरो । निज शुभ परिणामेंस० ॥ २५ ॥ मिथ्यामतिगुणवर्णनो । टालोचौथो दोप ॥ उनमारगी थुणतां । होये उन मारगपोष स० ॥ २६ ॥ पांचमोदोपमिथ्यामती । परिचयनविकीजें इमशुभमति अरविंदनी । भलीवासना लीजें सम० ॥ २७ ॥ भोलुंडारे हसाविपय नराचिये ॥ एदेशी ॥ आठप्रभावक प्रचनना कह्या । पावयणी धुरिजाण ॥ वर्तमान श्रुतनाजे अर्थनो । पारलहें गुणखाण ॥ २८ धन २ शासनमंडन मुनिवरा । धर्मकथीते बीजोजाणिये ॥ नंदिषेण परे जेह । निज उपदेशें रे रंजैलोकनें ॥ भंजेहृदय संदेह ध० ॥ २९ ॥ वादीतीजोरे तर्क निपुण भण्यो । मल्लवादीपरेंजेह ॥ राजद्वारें रे जयकमलावरें । गाजंतो जिम मेह ध० ॥ ३० ॥ भद्रबाहु

परें जेहनिमित्तकहै। परमत जीपणकाज ॥ तेहनिमित्ती रे चोथो जाणिये। श्रीजिन शासन राज ध० ॥ ३१ ॥ तपगुण उपररोपें धर्मनें। गोपेंनवि जिनश्राण ॥ श्राश्रव लोपें रे नवि कोपेंकदा। पंचम तपसी तेजाण ॥ ध० ॥ ३२ ॥ छठो विद्यारे मंत्रतणोवली। जिम श्री वयरमुणींद ॥ सिद्ध सातमोरे श्रंजन योगथी। जिम कालिक मुनिचद ध० ॥ ३३ ॥ काव्य सुधारस मधुर श्रर्थें जस्या। धर्महेतु करे जेह ॥ सिद्धसेनपरि नरपति रीझवें। श्रठम वर कवितेह ध० ॥ ३४ ॥ जब नवि होय प्रज्ञावक एहवा। तवविधि पूरवें श्रनेक ध० ॥ जात्रा पूजादिककरणी करैं। तेहप्रज्ञावक छेक ध० ॥ ३५ ॥ ढाल सतियसुज्जद्रानी ॥ सोहेंसमकित जेहथी ॥ सखी जिम श्राज्जरणें देह। ज्रूपण पांचतेमनवस्या सखी० तेहमांनहीं संदेह ॥ ३६ ॥ मुऊसमकितरंगश्रचलशज्यो श्रां०। पहिलुं कुशलपणुंतिहां ॥ सखीवंदननें पचखाण। किरियानों बिधिश्रतिघणी। सखीश्राति० श्राचरें तेहसुजांण मु० ॥ ३७ ॥ बीजूं तीरथ सेवना। सखी तीरथ तारेजेह ॥ ते गीतारथ मुनिवरा। सखी तेहसुं कीजेनेह मु० ॥ ३८ ॥ जगति करें गुरु देवनी। सखीतीजो ज्रूषणहोय किणहि चलाव्यो नवि चलै ॥ सखीचौथूं ज्रूषणजोय मु० ॥ ३९ ॥ जिन शासन श्रनुमोदना। सखीजेहथी बज्जजनशांत ॥ कीजे तेहप्रज्ञावना। सखीपांचमु ज्रूषणखंत मु० ॥ ४० ॥ इमनवि कीजेहो एदेशी ॥ लक्षणपांचकह्या समकिततणां। धुर उपशम श्रनुकूल ॥ सुगुणनर श्रपराधीसूंपिण नविचितथकी चिंतवियेप्रतिकूल सु० ॥ ४१ ॥ श्रीजिन ज्ञाषितवचन विचारिये श्रां०। सुरनरसुख जे दुखकरीले

पवें ॥ चंक्षे शिवसुखएक सु० । बीजोलक्षण तेअंगीक
रे ॥ मारसंवेग सुटेक सु० ॥ ४२ ॥ नारकचारक सम
नवउन्नगो तारक जाणीनें धर्म ॥ चाहेंनिकलवूं निर्वेद
तें । तीजोंलक्षण मर्म सु० ॥ ४३ ॥ द्रव्यथकी दुखि
यानी जे दया धर्महीणानीरे नावेंसु० ॥ चौथो लक्षण
अनुकंपा कही । निज शकतें मनल्यावें सु० ॥ ४४ ॥
जे जिननाख्यूं तेनहि अन्यथा । एहवो जे दृढरंग ॥
तेआस्तिकता लक्षणपांचमूं । करेकुमतिनोनंग सु०४५
जिन२प्रतिबिंबनदीसेयेदेआपरतीर्थी परनासुरतेणे । चै
त्यग्रह्यावलिजेह ॥ वंदनप्रमुखतिहांनविकरवूं।तेजयणा
षटनेयरे नविका ॥ समकित यतनाकीजे आं० ॥ वंदन
तेकरजोडन कहिये । नमनते सीसनमाडें ॥ दान इष्ट
अन्नादिक देवुं । गौरव नगति देखाडें रे न० ॥ ४७॥
अनुप्रदानते तेहनेंकहिये। वारवारजेदान। दोपकुपात्रें
पात्रमतीयें ॥ नहिअनुकंपा मानरें न० ॥ ४८ ॥ आण
बोलावें जेह नाखवुं । ते कहिये आलाप॥ वारवार
आलाप जेकरवो । ते कहिये संलाप रे न० ॥ ४९ ॥
ए जयणाथी समकित दीपें । वलिदीपें व्यवहार ॥ ए
हनांपिण कारणथी जयणा । तेहना अनेक प्रकाररे ॥
न० ॥ ५० ॥ ललनानी देशी ॥ शुध धरम थी न वि
चलें ॥ अतिदृढ गुणआधार ल० । तोपिण जे नहिते
हवा ॥ तेहनें एहआगार ल० ॥ ५१ ॥ बोल्युं तेहवुं
पाले । दंतिदंत समबोल ॥ सज्जनना दुर्जनतणा कछ
पकोटिनें तोल ल० ॥ ५२ ॥ राजानगरादिकधणी त
सशासन अन्नियोग ॥ तेहथी कार्त्तिकनी परे । नही
मिथ्यात संयोग ल० बो० ॥ ५३ ॥ मेलोजननों गण
कह्यो । वलिचोरादिक जाण ॥ षेत्रपालादिक देवता

तातादिक गुरु ठांण ल० बो० ॥ ५४ ॥ वृत्ति दुर्लभ आजीविका । ते भीषण कंतार ॥ तेहेतें दूषणनही क रतां अन्यआचार ल० बो० ॥ ५५ ॥ राग मल्हार ॥ भाविजेरे समकित जेहथी रूअडूं । तेभावना भावो मनकरि परवडूं ॥ जो समकित रेताजूसाजूं मूल रे । तोव्रततरूरे दिये शिवपद अनुकूल रे ॥ ५६ ॥ अनु कूल मूलरसाल समकित तेहविणमति अंधरे ॥ जेकरे किरिया गर्वभरिया तेहजूठो धंधरे ॥ ए प्रथमभावना गुणो रूडी सुणो बीजी भावना । बारणुं समकित धर्म्म पुरनूं एहवी ते पावना ॥ ५७ ॥ त्रीजी भावना रे समकित पीठजो दृढसही । तोमोटोरे धर्मप्रासादडगे नही ॥ पाईयेखोटे रे । मोटोमंडान नशोभिये । तेह कारण रे समकितसुं चित थोभिये ॥ ५८ ॥ थोभिये चित्तनित एम भावी चोथी भावना भाविये ॥ समकि त निधान समस्त गुणनूं एहवुं मन ल्याविये ॥ तेहवि ण छूटारत्न सरिखा मूलउत्तर गुणसवे । किम रहेंताके जेह हरवा । चोर जोर भवें भवें ॥ ५९ ॥ भावो पं चमी रे भावना शमदम साररे । पृथवी परें रे समकित तसुआधाररे ॥ छठीभावनारे भाजमसमकित जोमिले श्रुतशीलनोरे तोरस तेहमांनविढलें ॥ ६० ॥ नविढलें समकित भावनारस । अमीयसमसंवर तणों ॥ षटभा वना एकही एहनां । करो आदर अतिघणों ॥ इम भावतां परमार्थ जलनिधि । होयनितुं डक डोलरे ॥ घनपवन पुन्य प्रमाण प्रगटें । चिदानंद कलोलए ॥ ६१ ॥ पर्वपन्होतुं एढाल । ठरें जिहां समकितते थानक तेहनां षट विधिकहियेरे ॥ तिहां पहिलुं थानकछे चे तन । लक्षण आतम लहियेरें ॥ खीर नीरपर पुद्

ल मिश्रित । पिणएहथी छेअलगोरे ॥ अनुभव हंस
चंच जो लागें। तो नवि दीसें वलगो रे ॥ ६२ ॥ बीजूं
थानक नित्य आतमा। जे अनुभूत संभारैं रे ॥ बाल
कनें स्तनपांन वासना । पूरवभव अनुसारैं रे ॥ देव
मनुज नरगादिक तेहना । छै अनित्य पर्यायै रे॥ द्रव्य
थकी अविचलित अखंडित । निज गुण आतम रा
या रे॥ ६३ ॥ त्रीजूं थानक चेतन कर्त्ता कर्मतणों छै
योगी रे ॥ कुंभकार जिम कुंभ तणोजगि । दंडादिक
संयोगें रे ॥ निश्चयथी निजगुणनोंकर्त्ता । अनूप चरि
त व्यवहारैं रे ॥ द्रव्य कर्मनों नगरादिकनों । ते उप
चार प्रकारैं रे ॥ ६४ ॥ चौथुंथानकछें ते भोक्ता । पुन्य
पाप फलकेरो रे ॥ व्यवहारे निश्चय नयद्दष्टै । भुंजे
निज गुण नेरो रे ॥ पंचम थानक छे परम पद ।
अचलनंत सुखवासो रे ॥ आधिव्याधि तनमनथी ल
हिये । तसु अभावें सुखखासो रे ॥ ६५ ॥ छठूंथानक मो
क्षतणुंछे। संयम ज्ञान उपायो रे ॥ जो सहिजे लहिये तो
सघले कारण निःफल थाये रे॥ कहें ज्ञाननय ज्ञान ज
साचूं । तेविण कूठी किरियारे ॥ नलहें रूपूं रूपूजां
णी। सीपभणी जो फिरियारे ॥ ६६ ॥ कहें किरिया
नय किरिया विणजे। ज्ञान तेहस्यूं करस्ये रे जलपैसी
करपद लहलावें ॥ तारूतेकिम तरस्यें रे । दूषण भूप
ण छै इहां बहुला ॥ नयएकेकनें वादे रे । सिद्धांती
ते बहु नयसाधें ॥ ज्ञानवंत अप्रमादें रे ॥ ६७ ॥ इ
णपरि सडसठि बोल विचारी । जे समकित आरा
हें रे ॥ रागद्वेषटाली मनवाली। तेसमसुख अवगाहें रे
६८ ॥ जेहनोंमन समकितमां निश्चल कोइनहीं तसतो
लें रे। श्रीनयविजय विबुधपयसेवक । वाचक जसइम

बोलै रे ॥ ६१ ॥ इति श्रीसड़सठिबोल गर्भित सम्यक्त स्वाध्याय संपूर्णम् ॥

॥र्दं॥ अथ अठार पापस्थानक नी स्वाध्याय ॥

॥ कपूरहुवें अतिऊजलो रे एदेशी ॥ पाप स्थानक पहिलू कह्युं रे। हिंसानामें दुरंत ॥ मारैं जे जगजीवनें रे ते लहें मरण अनंतरे प्राणी० ॥ १ ॥ जिणवाणी ध रोचित्त ॥ टेक ॥ मातपितादि अनंतना रे। पामें वि योगते मंद ॥ दालिद्र दोहग नविटलें रे मिलैंन वल्ल भ वृंद रे प्रां० ॥ २ ॥ जि० होय विपाके दश गुणुं रे। एकवार कियूंकर्म । सत सहस्र कोड़ें गमें रे तीव्र भावना मर्मरे प्रां० ॥ ३ ॥ जि० मारो कहितां पिण दुखहुवेरे । मारेंकिम नविहोय । हिंसाभगिनी अति बुरी रे। वैश्वानरनी जोय रे प्रां० ॥ ४ ॥ जि० तेहनें जोरै जे हुआ रे । रौद्रध्यान प्रमत्त ॥ नरक अतिथि ते नृप हुआ रे । जिम संभूम ब्रम्हदत्त रे प्रां० ॥ ५ जि० रायविवेक कन्या क्षमा रे । परणावी जश साई तेह थकी दूरें टलै रे। हिंसा नामें वलायरे प्रां० ॥ ६ ॥ इति प्रथमपापस्थानक प्राणातिपातसिज्झाय ॥ १

॥ लाछलदे मात मल्हार एदेशी ॥ बीजो रे पापनुं स्थान । मृषावाददुरध्यान। आजहो छंडोरे भविमंडो धर्मसुं प्रीतडी जी ॥ १ ॥ वैर खेद अविस्वास । येह थी दोष अभ्यास । आज हो थाईं रे नवि जाईं व्याधि अपथ्य थी जी ॥ २ ॥ रहिवुं कालिक सूरि । परिजन वचनते भूरि । आजहो ॥ सहवुं रे नवि क हवुं कूंठनयादि केजी ॥ ३ ॥ आशन धरत आकाश वसुनृप हुओ सुप्रकाश । आज हो ॥ कूठें रे सुरुठें घाल्यो रसातलें जी ॥ ४ ॥ जे सत्य व्रत धरे चित्त

होय जग मांहिं पवित्त । आज हो तेहनेंरे नविन्नय
सुर व्यंतर यक्ष थी जी ॥ ५ ॥ जे नवि ज्ञापें ञ्य
लीक । बोले ठावुं ठीक ॥ आज हो टेकेरे सुविवेकें
सुजश ते सुख वरें जी ॥ ६ ॥ इति श्री द्वितीय पाप
स्थानक मृषावाद स्वाध्याय ॥ २ ॥

नींदभली वैरण झइ रही एदेशी ॥ चोरी व्यसन
निवारीये । पाप स्थान हो त्रिजूंकह्यो घोरकें ॥ इह ज्ञ
वें परज्ञवें दुखघणा । एह व्यसनें हो पामें जगें चोरके
चो० ॥ १ ॥ चोरते प्रायें दलिद्री झयें । चोरथी हो
धन नठरे नेठके चोरनो कोय धणी नही ॥ प्रायें ज्ञूखो
हो रहे चोरनो पेटके चो० ॥ २ ॥ जिम जल मांहि नां
खियो तलेंञ्यावेंहो जलनें ञ्ययगोल कें । चोर कठोर क
रम करी ॥ जायेनरकेहो तिम निपट निटोल कें चो०
३ ॥ नाठुंपम्युं वलिवीसस्यो । रह्यो राख्यों हो थापण
कस्युं जेहकें ॥ त्रिण तुसमात्र नलीजिये । ञ्यणदीधुंहो
किहां कोइनुं तेहकें चो० ॥ ४ ॥ दूरें ञ्यनर्थ सकल टले ।
मिलेंवाहलांहो संघजेजसथायके ॥ सुरसुखनाझइ ज्ञेट
णां व्रतत्रीजुंहो ञ्यावेंजसदायकें चो० ॥ ५ ॥ तजिचोर
पणे जेचोरतां । होइ देवताहो रोहिणिञ्याजेमके ॥ एत्र
तथीजससुखलहें ॥ वलिप्राणीरे वहेपुन्यसुप्रेमकें चो० ६
इति तृतीय ञ्यदत्तादानोपरि स्वाध्यायं ॥ ३ ॥

तुमेवझमित्रोरेसाहिवा एदेशी ॥ पापथानक चोथुवर
जियेदुरगतिमूलञ्यवंत्र ॥ जगसविमूंगोछेएहमां । छाफी
तेहञ्यचंत्र ॥ १ ॥ पापथानकचोथु वरजिये टेक । रूडो
लागें रे एधुरें परिणांमें ञ्यतिकूर ॥ फलकिंपाकनेंसारि
खा ॥ वरजे सज्जनदूर पा० ॥ २ ॥ ञ्यधरविद्रुम स्मित
फूलमा कुचफल कठिनविशाल । रामादेखि न राचि

ये । एविषवेलि रसाल पा० ॥ ३ ॥ प्रबलज्वलितअ्य
यपूतली । आलिंगनजलुंतंत ॥ नरकदुआर नितंत्रिनी
जघनसेवन एदुरंत पा० ॥ ४ ॥ दावानल गुणवनत
णों । कुलमसि कूर्चक एह । राजधानी मोहरायनी ।
पातिक काननमेह पा० ॥ ५ ॥ प्रभुतायें हरिसारिखो
रूपेंमयणअवतार । सीतायें रे रावणइच्छा ॥ छांडेयो
परनरनार पा० ॥ ६ ॥ दसशिर १ रजमांहि रोलव्या
रावणविवसअचंत्र । रामैंन्यायेंरेआंपणो । रोप्योजगि
जयथंत्र पा० ॥ ७ ॥ पापबंधायें रे अतिघणां । सुकृ
तसकलक्षयजाय ॥ अब्रम्हचारिनोंचिंतवुं । कदियसफ
लनविथाय पा० ॥ ८ ॥ मंत्रफलें जगजसवधे । देव
करे सांनिध्य ॥ ब्रम्हचर्य धरिजेनरा । तेपांमे नवनिध्य
पा० ॥ ९ ॥ सेठसुदर्शननेंटली सूलीसिंहासनहोय । गु
णगाइंगगनें रेदेवता ॥ महिमाशियलनोजोय पा० १०
मूलचारित्रनुं ए भलुं ॥ समकित वृध्हिनिदान । शील
सलिल धरै जिके । तसहोइसुजसवखांण पा० ॥ ११ ॥
इति चतुर्थ मैथुन पापस्थान सिझाय ॥ ४ ॥

सुमति सदादिलमांधरो ॥ एदेशी ॥ परिग्रह ममता
परिहरो परिग्रह दोषनूंमूल सलूणें ॥ परिग्रहजेह ध
रेंघणो तस तपजप सवि प्रतिकूल स० ॥ १ ॥ नवि
पलटायें मूलरासिथी । मार्गें कदियनहोय स० ॥ परि
ग्रहग्रहव्हेंअभिनवो । सज्ञानिदें दुखजोय सप० ॥ २ ॥
परिग्रह मदगरुअपणें । भवमांहीपडिजंत स० ॥ या
नपात्रजिमसायरे भाराक्रांत अत्यंत स० ॥ ३ ॥ ज्ञान
ध्यानहयगयवरे । तपजपश्रुतपरितंत स० ॥ छांडीया
मप्रभुता लहैं । मुनिपिण परिग्रहवंत सप० ॥ ४ ॥
परिग्रहग्रह वसलिंगिया लेइकुमतिरजसीस स० । जि

मतिमजगें लवताफिरै ॥ उनमतज्ञइ निसदीश्र स० ५
तृपतिनजीव परिग्रही। इंधणथीजिमश्राग स० तृन्ना
दाहतेउपसमैं । जलसमज्ञान वैराग स० ॥ ६ ॥ नृप
तोसगर सुतेन्नही गोधनथी कुचिकर्ण स० ॥ तिलक
सेठवलि धानथी कनकें नंदसकर्ण सपा० ॥ ७ ॥ श्रसं
तुष्टपरिग्रहन्नस्या । सुखीनइंद नरिंद स० ॥ सुखीएक
श्रपरिग्रही । साधु सुजन्न समकद स० ॥ ८ ॥ इति
पांचमुंपरिग्रह सिज्झाय ॥ ५ ॥

ऋषन्ननो वंसरयणायरू ॥ एदेशी ॥ क्रोधते बोधनि
निरोधक्छै । क्रोधतसंयमघातीरे ॥ १ ॥ क्रोधतेनरक
नोबारणो । क्रोधते दुरित पखपातीरै ॥ पापस्थानक
छठुंपरिहरो । मनधरोउत्तम खतरे। क्रोध न्नुजंगनें जां
गुली ॥ एहकहै जयवंतरे प० ॥ १ ॥ पूरव कोडि
चरणगुणें । न्नाव्योछेंश्रातम जेणेरे ॥ क्रोधविवशहूंता
दोइघडी । हारियेसविफलतणेरे पा० ॥ २ ॥ बालेते
श्राश्रमश्रापणो । न्नजना श्रन्यनेंदाहैं रे ॥ क्रोधकृसा
नुसमांनछै । टालियेप्रशम प्रवाहैरे पा० ॥ ३ ॥ श्रा
कोसतर्जना घातना । धर्म्मन्नं्रंश मांन्नावें रे ॥ श्रग्रिम
श्रग्रिम विरहथी । लान्नतेशुरु स्वन्नावेंरे पा० ॥ ५ ॥
नहोइहोइतो चिरनही चिररहेंतो फलछेहारे ॥ शज्ज
नक्रोधतेएहवो जेहवो दुरजननेहारे पा० ॥ ६ ॥ क्रो
धमुखें कटुबोलणां । कटकियाकुट शाखीरे ॥ श्रदिठ
कल्याणकराकह्या। दोपनातरूसत शाखीरे पा० ॥ ७ ॥
कूरगडूचउतपकरा । चरित सुणी श्रमश्राणोरे ॥ उपश्र
मशारछेप्रवचनें । सुजशवचन एप्रमाणोरे पा० ॥ ८ ॥
इति षष्टम क्रोध स्थानक स्वाध्याय ॥ ६ ॥

नदिजमुनां केतीर उडेदोयपंखिया ॥ एदेशी ॥ पाप

स्थानक कहेंशातमुं ॥ श्रीजिनराजए ॥ मांनेमांनवहो
य । दुरितशिरताजए ॥ आठशिखर गिरिराजतणाआ
ड़ावलय । नावेंविमलालोक । तिहांकिमतमटले १ ॥
प्रज्ञामद तपमद । वलि गोत्रमदैंनस्या । आजीविका
मदवंत । नमुगतिअंगीकस्या । क्षयोपशम अनुशार
जोएहगुणेवहें । स्योंमदकरवो एहमां । निर्मदसुखलहैं
२ ॥ उच्चनावदृगदोप । मदज्वरआकरो क्षयेतेहनोंप्र
तिकार । कहेमुनिवरखरो पूरवपुरूपसें घुरथी लघुता
नाववूं शुद्धनावनतेपावन शिवसाधननवूं ॥ ३ ॥ मा
नेंखोयूंराज लंकानोंरावणे । नरनुमांनहरै हरी आवि
ये रावणैं । थूलनद्र श्रुतमदथी पाम्याविकारए ॥ मा
नेंजीवनेंआवें । नरकअधिकार ए ॥ ४ ॥ विनयश्रुत
तपशील त्रिवर्ग हणेसवे । मांनतेज्ञाननोंनंजक होयन
वेंनवें ॥ लुंपक छेक विवेक नयणनों मानछैं येहजे
छांडैतासन दुःखरहेंपछैं ॥ ५ ॥ मांनेंवाहूबलिवत्सर
येककाउसगरह्या । निर्मदचक्री सेवकदोय मुनीश क
ह्या ॥ सावधान त्यजि मान जे ध्यान धवल धरै प
रम सुजसरामा तस आलिंगन करै ॥ ६ ॥ इति स
प्तम पापस्थान स्वाध्याय ॥ ७ ॥

राय कहेंराणीप्रते एदेशी ॥ पापस्थानक आठमुकह्युं ।
सुणोंसंताजी । छांडोमायामूल गुणवंताजी ॥ कष्टकरी
व्रतआदरी सु० ॥ मायातेप्रतिकूल गु० ॥ १ ॥ नग
नमास उपवासिया सु० ॥ शिथिलिइंछशअन्न गु०
गर्नअनंता पांमस्यैं सु० जोंछै मायामन्न गु० २ ॥
केशलोंचमलधारणा सु० । नूमिशय्याव्रतपाग गु० सु
कर सकलछै साधुनें सु० । दुःक्कर मायात्याग गु० ३ ॥
नयनवचनआकारनुं सु० । गोपनमायावंत गु० । जे

हकरै ग्रसतीपरें सु० । तेनहि हितकरतंत गु० ४ कुग्राम
पुरघरै सेठनें सु० हेठैंरह्योसंविज्ञ गु० । उपरितसवी
जोरह्यो सु० मुत्कलपणे सुगुणज्ञ गु० ॥ ५ ॥ दंज्ञीये
कनिंद्याकरे सु० वीजोंधरै गुणराग गु० पहिलानाज्ञव
दुस्तरकह्या सु० वीजानें केवलत्याग गु ६ विधिनिषेध
नविउपदिसे सु० येकांते ज्ञगवंत गु० कारण निःकप
टीज्ञवुं सु० येग्रांणाक्षै तंत गु० ७ मायाथीग्रलगाट
लो सु० जिम मिलो मुगतिसु रग गु० सुजग्राविलाग्रा
सुखी रहो सु० लक्षण ग्रावेंग्रंग गु० ९ इति ग्रष्टम
स्थानक माया सिज्झाय ॥ ८ ॥

जीरै म्हारै जाग्यो कुमरजाम येदेंज्ञी ॥ जीरै म्हारै लों
ज्ञतेदोषग्रर्थोंज्ञ पापस्थानक नवमूंकह्योजी० । येक्षै स
र्वविनाग्रानुमूल येहथी किह्णे नविसुखलह्या जी०सु
णियेरेबक्ष लोज्ञार्त्त चक्रवर्तहरिनीकथाजी० पांम्माते
कटुक विपाक पीवत रक्तजलोंयथा जी० ॥ २ ॥ निर
धननें सतचाह सहग्रालहें सतलोंक्षिये जी०सहग्रालहेंल
खलाज्ञ लखलाज्ञैंरसकाक्षिये जी०॥ ३ ॥ कोटीसरनृपरि
द्धि । नृप चाहैं चक्रीपणुं जी० ॥ चक्रीचाहें सुरज्ञोग
सुरचाहेंसुरपति सुखघणुं जी० ॥ ४ ॥ मूललघूपणेंलो
ज्ञ । वाधैं सरावतणीपरैं जी० ॥ उत्तराध्ययनें ग्रनत
इच्छा ग्राकाग्रा समीकही जी० ॥ ५ ॥ स्वयंज्ञू रमण
समुद्र । कोईजेग्रवगाहीसकें जी० ॥ तोपिणलोज्ञसमु
द्र । पारन पांमेंवलथकें जी० ॥ ६ ॥ कोइलोज्ञमदहे
त । तप श्रुत हारें जेजक्षा जी० ॥ काग उक्षावण हेत
सुरमणिते नांखैंखक्षा जी० ॥ ७ ॥ लोज्ञतजेतेधीर । तो
सविसंपतिकिंकरी जी० ॥ सुजस ते पुन्य विलाग्रा ।
गावेंतससुर सुंदरी जी० ॥ ८ ॥ इति नवम पापस्था

नकोपरि स्वाध्याय ॥ ९ ॥

सुणिमोरी सजनी रजनीनजाइ रे ॥ एदेशी ॥ पाप स्थानक दशमुं कह्यो रागरे ॥ कुणहि नपाम्यों तेहनों तागरे । रागेंवाह्या हरिहर वंभरे ॥ राचेनाचेकरि अ चंभरे ॥ १ ॥ रागतेकेसरी छैं वडराजारे । विषयाभि लापते मंत्री ताजारे ॥ जेहनां छोरु इंद्री पंचोरे । तेहनों कीधो ए सकल प्रपंचो रे ॥ २ ॥ जेह सदागम वशय डइजास्येंरे । अप्रमत्ततासिखरैं वासेरें ॥ चरण धरम नृपशैलविवेकैरे । तेहस्यु नचलेरागीटेकैरे ॥ ३ ॥ वी जातोसविरागीवाह्यारे । एकादश गुणठाणउमाह्यारे रागेंपीस्यातेसविखूतारे । नरयनिगोदमहादुखजूतारे ४ ॥ रागहरणतपजपश्रुतभाष्यारे । तेहथीपिणजेंणेंभव फलचाष्यारे ॥ तेहनोंकोइ नछैप्रतिकारोरे । अमियेहो य विषतिहांस्योंचारोरे ॥ ५ ॥ तपवले छूटा तरणुंतां णीरे । कंचन कोडि आषाढभूतिनाणीरे ॥ नंदिषेण पिणरागेंनडियारे । श्रुतनिधीपिणवेश्यावसपडियारे ६ ॥ बाविसजिन पिणरहेघरवासें रे । वरतंतापूरवरा गअभ्यासे रे ॥ वज्रवंधपिण जसवलीतूटैंरे । नेहतंतु थीतेहनछूटैरे ॥ ७ ॥ दिहउच्चाटनें अगनिनुं दहवूं रे घणकुट्टत एसवि दुखसहवूंरे । अतिघणूंरातो जे होय मजीठरे ॥ रागतणोंगुणएहजदीठरे ॥ ८ ॥ रागनकर ज्योकोइ कुंण नरसूरे । नविरहवायैंतों करजो मुनि सूरे ॥ मणिजिमफणी विषनुं तिमनेहो रे रागनोंभेष जमुजशसनेहोरे ॥ ९ ॥ इतिदशमपापस्थानक १० ॥

लालननोदेशी ॥ द्वेषनधरिये लालन द्वेषनधरिये । द्वेषतज्यार्थी लालनशिवसुखवरिये ला शि० ॥ पाप स्थानक इग्यारमुं कहूं द्वेषरहित चित्त होय सवि

रूडूं ला० ॥ १ ॥ होय० । चरणकरण गुण वन चित्र
शाली ॥ छे ञा धूम्रें रे होय ते काली । ला० ॥ हो०
दोषबेतालिश सुद्ध आहारो । धूम्रदोष तो प्रबलवि
कारो ला० प्र० ॥ २ ॥ उग्र विहारी नें तप जप किरि
या । करता द्वेष ते नवमांहि फिरिया ला० न० ॥
योगनुं अंग अद्वेष छै पहेलूं । शाधन सविलहें तेह
वहिलुं ला० ते० ॥ ३ ॥ निरगुण ते गुणवंत न जा
णें । गुणवंतते गुण द्वेषमां तांणें ला० द्वे० । आप
गुणीनें वलि गुणरागी ॥ जगमाहें तेहनीकीरतिजागी
ला० की० ॥ ४ ॥ राग धरीजे तिहां गुण लहिजे
निरगुण ऊपर समचित रहिजे ला० स० । नव थि
ति चिंतन सुजश विलासें ॥ उत्तमना गुण इम प्रका
सें ला० इ० ॥ ५ इति इग्यारमां पापस्थानसिज्झाय ॥

किसके चेले वे किसके पुत्र एदेशी ॥ कलह ते बार
मुं पापनूं स्थान । दुरगति वननूं मूल निदान ॥ साज
न सांभलो । मोटोरोग कलह काच कांमलो ॥ ए आं
कणी ॥ दंतकलह जे घरमांहिं होय । लच्छी निवसें ति
हां नविजाय सा० मो० ॥ १ ॥ स्यूं सुंदरि तुं न करै
सार । न करै आपें कारे गमार सा० । क्रोध मुख्य तूं
तूं धिक्कार । तुझथी अधिको कुणकलिकाल सा० मो०
२ ॥ शाहमूं बोलें पापणि निच्च ॥ पापी तुझ पिता
जो उचित्त । दंत कलह इम जेहनें थाय ॥ ते दंपतिनें
सुख कुण ठाय सा० मो० ॥ ३ ॥ कांटै कांटै थायेंवा
झ । बोलै बोलै वाधैराझ सा० । जांणी मौन धरै गुण
वंत । सो सुख पांमें अतुल अनंत सा० मो० ॥ ४ ॥
नितकलहण कोंहणशील । भंझण शीलविवाद सशील
सा० । चितउताप धरेजेएम । संयमकरे निरर्थक तेम

सा० मो० ॥ ५ ॥ कलह करी नें खमावे जेह। लघु गुरु आराधन थाय तेह सा० । कलह समावें ते धन धन्य ॥ उपशम सार कह्यो सामान्य सा० मो० ॥ ६ ॥ नारद नारी निर्दय चित्त ॥ कलह उदीरै त्रीण्यें नित्त सा० ॥ सज्जन सुजश शील महंत वारैं कलह स्वभावें संत सा० मो० ॥ ७ ॥ इति बारमूं पाप स्थानक सिज्झाय ॥ १२ ॥

अरणक मुनिवर चाल्या गोचरी एदेशी ॥

पाप थानक तेरमूं छांडिये । अभ्याख्यांन दुरंतो जी अछता आल जे परनां ऊचरै दुख पांमें ते अनंताजी १ ॥ धन २ ते नर जे जिनमत धरे ए आंकणी । अछतेंदोपैं रे अभ्याख्यान जे। करैंनपूरैं ठाणोंजी। ते ते चोखें रे तेहनें दूषिये । इम भाषै जिनभाणो जी ध० २ ॥ जे वक्रमुखरी रे जे गुण मच्छरी । अभ्याख्यानी तेहोरे। पातिक लागें रे अणकीधासही ॥ तकिधूं सवि खोयें जी ध० ॥ ३ ॥ मिथ्यामतिनां रे दश संज्ञाजिके अभ्याख्यानना भेदोजी ॥ गुण अवगुणनों रे जेकरै पा लटो । तेपामें वक्र दोपोजी ध० ॥ ४ ॥ परनें दोप न अछता दीजिये । पीजिये जो जिनवाणीजी ॥ उप शम रसनों रे चितमां भीजिये । कीजिये सुजश कमां णीजी ध० ॥ ५ ॥ इति तेरमूं पापस्थान ॥ १३ ॥

सिरोहीके उपरेंयोधपुरी एदेशी ॥ पापस्थानक होकि चौदमूंआकरूं । पिशुनतणानूंहोके ॥ व्यसन छेंअतिबु रूं । अशनमात्रनाहोके शुननकृतज्ञछें । तेहथी भूंडूंहो के पिशुन लवंपछें ॥ १ ॥ वक्रउपरें होके पिशुननीप रें । कलहनोदाताहोके होइतऊपरें ॥ दूधें धोयोहोके वायसऊजलो । किमहोय प्रकृतेंहोके जेहछेंशामलो २

तिलहतिलत्तण होके नेहछैंजीहांलगें । नेह पणठैंहोके खलकहिये जगें ॥ इम निस्नेहीहोके । निरदय हृदयथी पिशुननीवार्त्ताहोके नविजायेंकथी ॥ ३ ॥ चाळीकरतां होके वाळीगुणतणी । सूकेंचूकेंहोके खेतीतेपुण्यतणी ॥ कोइनदेखैंहोके वंदनतेपिशुनतणुं । निरमल कुलनेंहोके दियेतकलंकघणुं ॥ ४ ॥ जिमसज्जनगुणहोके पिशुनते दूपिये तिमतिणेसहजेंहोके त्रिभुवनभूसिये ॥ नस्में मां ज्योहोकेदर्प्पणहोयभलो । सुजशसवाईहोके सज्जनकुल तिलो ॥ ५ ॥ इति चउदमुंपापस्थानक ॥ १४ ॥

प्रथमगोवाला तणें भवेंजी एदेशी ॥ जिहारतिकोई कारणें जी । अरति तिहां पिण होय पापस्थानक ते पनरमूंजी । तिणेंए एकजजोय ॥ १ ॥ सुगुणनर सम ळोचित्तमझार टेक । चिंतन अरति रति पांखमूंजी । उळैपंखीरेचित्त पंजरसुठसमाधनेंजी । रुंध्योरहेतेहमि त्त सु० ॥ २ ॥ मनपारदऊळेगहीजी पांमेंअरतिरतिआग तोऊपेसिद्धकल्याणनीजी । भावटजायेंभाग सु० ३ ॥ परवसअरतेंरतेंकरीजी । भूतारथहोयेंजेह ॥ तस विवेक आवेंनहीजी । होयेंनदुखनोछेह सु० ॥ ४ ॥ नहिरति अरतिछै वस्तुथीजी । जेउपजेमनमाहि ॥ अगजवाह भसुतळळजी । जूकादिकनहिराहि सु० ॥ ५ ॥ मनक ल्पितरतिअरतीअछैजी । नहीसत्यपर्याय ॥ नहितोवे चीवस्तुमाजी । क्षिमतेसविमेटीजाय सु० ॥ ६ ॥ जेह अरतिरतिनविगिणेजी । सुखदुखहेतसमान ॥ तेपामें जशमपदाजी । वाधे जगतस वान सु० ॥ ७ ॥ इतिप नरमू रतिअरति पापस्थानक स्वाध्याय ॥ १५ ॥

साहिब बाहूजिणेसर वीनवु एदेशी ॥ पापस्थानक त्यजो सोळमूं । परनिंदा असरालहो सुंदर० ॥ निंदक

जे मुखरीजवें नेचोथोचंडालहो मुं० ॥ १ ॥ पापस्था
नक तजोसोलमूं टेक । जेहनें निंदानोंढालछे तपकिरि
यातसफोकहो सुं० ॥ देवकिल्विषि तेऊपजे एह फल
रोकारोकहो सुं० ॥ २ ॥ क्रोध अजीरण तपतणुं ज्ञान
तणोअहंकारहो सु० ॥ परनिंदा किरियातणों । वमन
अजीर्णआहारहो सुं० ॥ ३ ॥ निंदकनो जेहस्वभावछे
तासकथन नवि निंदहो सुं० ॥ नामधरीजे निंदाकरें ।
तेह महामतिमंदहो सुं० ॥ ४ ॥ रूपनकोई धारिये दा
पिये निजनिजरंगहो सुं० ॥ तेहमांहिंकाई निंदा नही
बोलेंबीजोअंगहो सुं० ॥ ५ ॥ एह कुशीलनें इमकहें ।
कोपकई जेहभापेंहो सुं० ॥ तेह वचनचें निंदातणों ।
दशवैकालिक शाखेंहो सुं० ॥ ६ ॥ दोपनिजरथीनिंदा
हुवें । गुणनजरे होयरागहो सुं० ॥ जगसविचालेमाद
लमंढशो ॥ सर्वगुणीवीतरागहो सुं० ॥ ७ ॥ निजमुखक
नककचोलडें । निंदक परिमललेयेंहोसुं० तहघणांपरगुण
ग्रहे संततेविरलाकोयहो सुं० ॥ ८ ॥ परपरिवादव्यस
नतजो । मकरोनिज उत्कर्षहो सु० ॥ पापकरमइमस
विटले । पांमंसुजसतें हर्षहो सुं० ॥ ९ ॥ इतिसोलमुंपर
परीवाद पापस्थानकस्वाध्याय ॥ १६ ॥

सखीचैत्रमहीनेंचाल्या एदेशी ॥ सतरमूंपापनूंठाम ।
परिहरज्योसदगुणधाम ॥ जिमवाधें जगमांमामहोला
ल ॥ १ ॥ मायामोसनकीजे । एतोविषनें वलियवधा
स्यूं ॥ एतोशस्त्रनेंअवलुंधास्यूं । एतोवाघनुं वालवका
स्यूंहोलाल मा० ॥ २ ॥ एतोमायी ने मूंसावाई । थइ
मोटाकरेठगाई ॥ तसहेठगई चतुराईहोलाल मा० ३
बगलापरैपगलाभरता थोडूं बोलैजाणें मरता । जगधं
धेघालेफिरताहोलाल मा० ॥ ४ ॥जेकपटीबोलेकूडूं । त

सलागेंपापअपूठूं । पंफितमांहो इमुन्नूंठूं होलाल मा०
५ ॥ दंन्नीनुंफूंठूंमीठूं । पिणनारि चरित्रे दीठूं ॥ पिण
तेछें दुर्गति चीठूंहोलाल मा० ॥ ६ ॥ जे फूठोदझें उप
देञा । जनरंजननें धरेवेस ॥ तेहनोफूठो सकल कलेञा
होलाल मा० ॥ ७ ॥ तिणें त्रीजोमारगन्नाष्यो वेसनिं
दै दंन्नेराष्यो ञाुरुन्नाषी ञामसुख चाख्यो होलाल मा०
८ ॥ फूठूंबोलि उदरजेन्नरवूं कपटीनेंवेसेंफिरवूं । तेतो
जमवारेस्यूंकरवूं होलाल. मा० ॥ ९ ॥ पिंफैजाणे तोपि
णदंन्नें मायामोसनें ञ्यधिकञ्यचंन्ने । ञामकितदृष्टीमन
थंन्नेहोलाल मा० ॥ १० ॥ स्रुतमर्यादा निरधारी । र
ह्यामायामोसनिवारी ञाुधन्नापकनी बलिहारी होला
ल मा० ॥ ११ ॥ जेमायायें फूठो नबोलें । जग नहि
कोईतेहनें तोलै । ते राजेंसुजञा अमोलें होलाल मा०
१२ ॥ इति सतरमूं पापस्थानक स्वाध्याय ॥ १७ ॥

उत्सर्प्पिणी ञ्यवसर्प्पिणी आरा एदेञाी ॥ अठारमूं
पापस्थानक । ते मिथ्यात्व परिहरियेजी सतराथी पि
णए एकन्नारे ॥ होय तुलायें जो धरियेजी । कष्टकरोप
रिरदमोअप्पा । धर्मञ्यर्थेंधन खरचो जी । पिणमिथ्या
त्वछतेंतेफूंठूं । तिणेतेहथी तुम्हे विरचोजी ॥ १ ॥ कि
रियाकरतो त्यजतो परिजन दुख सहतोमनें रीफेंजी ।
अंध नजीते परनी सेना तिम मिथ्यादृष्टिनसीफेजी ॥
वीरसेनसुरनेदृष्टांतें समकितनी निर्युक्तेंजी । जोइनें न्न
लीपरमनन्नावो एहअरथवरयुक्तें जी ॥ २ ॥ धम्मेञ्यध
म्मञ्यधर्मेंधर्मेह । सन्नामग्गिउमग्गाजी उन्मार्गेंमारगनी
सन्ना साधुअसाधु संलग्गा जी । असाधुमां साधुनीम
ति । जीव ञ्यजीव अजीवेंजीव वेदोजी । मुत्तेअमुत्त
अमुत्तेमुत्तह सन्ना एदञान्नेदो जी ॥ ३ ॥ ञ्यन्निग्रहीक

निजनिजमति अभिग्रह । अनभिग्रहीक सङ्गसरिखाजी
अभिनिवेशिक जाणंतोकहे झूठो । करिनें तत्वनिपरि
ख्याजी । संशय जिनवचननीशंका अव्यक्ती अनाभो
गेंजी । एपिण पांच भेद वे विश्रुत जांणे समझूलोके
जी ॥ ४ ॥ लोकलोकोत्तर भेद एपटविध देव वलीगु
रुपर्वजी । सगति तिहांलौकिकत्रिणआदर करतां प्रथ
मनिगर्वजी । लोकोत्तरदेव मांनेंनियाणें गुरुतेलक्षणही
णाजी । पर्वनिष्टेंइहलोकनेकाजे मांनेंगुरुपदलीनाजी ५
एयेकवीसे मिथ्यात्वतजेंवलि । भजेचरणगुरु केरा जी
सजेनपापें रजेनराघे मत्सरद्रोह अनेराजी । तेसमकि
तधारी शुभचारी । तेहनेंजगेंवलिहारोजी । शासन स
मकितनेंआराधें तेहनी करो मनोहारोजी ॥ ६ ॥ मि
थ्यात्वतेजगि परमरोगछे वलियमहा अंधकारोजी ।
परमसत्रुनें परमसस्त्रतैं परम नरक संचारोजी । परम
दोहगनें परमदलिद्रतैं परम संकटते कहियेजी । पर
म कंतारपरम दुर्भिक्षते तेछांडे सुखलहियेजी ॥ ७ ॥ ते
मिथ्यात्व लवलेस नराखैं सूधोमारग भाखैंजी । तेस
मकित सुरतरु फलचाखैं वलिरहें अणिये आंखैंजी ॥
मोटाई सी होयगुणपाखैं गुणप्रभु समकित दाखैं जी
श्री नयविजय विबुधपय सेवक वाचकजश इम आ
खैंजी ॥ ८ ॥ इतिश्री अष्टादश पापस्थानक सिज्झाय ॥

कांइंसिरजी मोरीमाय २ कांईसिरजी होफूलगुलाब
री एदेशी ॥ कीरत धजराजान २ सूरज ग्रहण देखी
संजमलियो । वारैवरस फिरआय २ सुतप्रतिबोधीनें
संयमदियो ॥ १ ॥ राणीपुत्र वियोग २ ऊंचामहिलथ
कीपडनेंमुई । कोधैं कुगति विशेष २ गढ चीतोडैं मरी
बाघणहुई ॥ २ ॥ करताउग्रविहार २ गढचीतोडेपो

हताकिणसमें । वाघणविरती देख २ ऋषिआलोच करै मनमेंइमें ॥ ३ ॥ सकोसलातूं वाल २ म्हे ऊन्नांबांथेजा वोटली । तातबात कहीकेम २ न्नागांनें न्नूंयथायेवेगली ४ ॥ सूराजे रणसूर २ इण कुत्ती श्रागें न्नागे किमें । गयसुकमाल महंत २ श्राठवरस रोपरीसहा सहैतिमें ॥ ५ ॥ थेमुकपूरोपूठ २ ऊठम्हारी हिवदेखोथेसही । ष्या गत्याग वैराग २ वयछोटापिण मोटागुणलही ॥ ६ ॥ तृणजिम त्यागीदेह २ श्रणसण करिनें श्रेणिखिपकच ढ्यो जाण्यो एसंसार २ रागद्वेप करज्युं मादल मढ्यो ७ ॥ वाघणन्नूत न्नराक २ पूंछपटकनें मुंहकोफाकियो कूकलती श्रसराल २ पजेकरनें ऋषिनें ताकियो ॥ ८ ॥ नींचोनांख फंफेक २ श्रामिख न्नगती चौंकोदेखियो । दांतांसाल सुदेख २ एकिहां दीठा इम सोचोकियो ॥ ९ कीरतधज कहेंएम २ धिग २ फिट २ तुकनेंपापणी । प्राणतज्या सुतहेत २ तेंसुतमारन्नष्यो मुखश्रापणी ॥ १० ॥ पूरवन्नव सुणवात २ जातीस्मरण तेसोचीघणी कूंकायसिरजी करतार २ कूंकायसिरजी होवनमें वाघ णी ॥ ११ ॥ एदुख श्रावेचीत २ न्नखनखाऊं इमश्रण सणकरी । त्रिविध खमावी जीव २ श्राठमें सरगम रीनें श्रवतरी ॥ १२ ॥ ते चवि महाविदेह २ मानव न्नवलहि होसीश्रंतकरी । कीरतधज सुतवेय २ केवल पांमी पोहता शिवपुरी ॥ १३ ॥ क्रोधेंवाघण सिंह २ मांणेस्याल तथाहोवेखरे । मायाइत्यिय जलोक २ सा प मरीनें लोन्नी श्रवतरे ॥ १४ ॥ ए दृष्टांत सुणेह २ धन २ नरनारजिके क्षमताकरै । खेतसीजी गुरुसीस २ मुनिखेमक्षमाकर न्नवसायरतरे ॥ १५ ॥ इति सको सला स्वाध्यायः ॥

सुरपति प्रसंसाकरे बैठासभामझारो । सुरनर कोन
हीसारिखो चक्रीसनत कुमारो ॥ १ ॥ करजोडी बीन
ती करे सुणिसनत कुमारो । महिरकरो महराज जी
पाछामहिल पधारो क० ॥ २ ॥ विप्ररूप सुरछलगयो
लीधोसंयमभारो । रायराणा वीनतीकरे पाछामहिल
पधारो क० ॥ ३ ॥ हयगयरथ सबजूजुवा थाहरे ला
खचउरासी । किणरेधूरत भरमावियो तिणथयो उदा
सी क० ॥ ४ ॥ चउदैरतन नवनिधिघरे तूंकिण ऋध
ऊणों सहसबत्तीसे नरिंदसु अतेवर दूणो क० ॥ ५ ॥
कहेंकंता किणकामनी थाहरी लोपीबैकारो । विण ग्र
वगुण पिउपरिहरो किसोदोष हमारो क० ॥ ६ ॥ तूं
पीहर तूंसासरो तूंहीजसुखदावो । किणनलै अवलार
हें कंतादेखा बतावो क० ॥ ७ ॥ रीसअणखंती सीकरो
कंतामतछोडो । सीकटकी कीडीऊपरे छीकंतां स्युंड
डो क० ॥ ८ ॥ ए मंदिर ए मालिया ए चित्रसाली
चोकी । ये हिंडोला हाटडी तजोरीस अनोखी क०
९ ॥ सबकोजल जीजी करे पगलेंकरिलाऊं । जिणदुस
मण पिउदूहव्यो मुस खालभराऊं क० ॥ १० ॥ इम
छोम्यां किमछूटस्यो एहपराईजाई । हांचविछाईनेंकहूं
वाल्हा छांडमजाई क० ॥ ११ ॥ हरखघणें परणी
झंती धुरि प्रीतसंभालो । एहससनेही लोयणें भर निज
रनिहालो क० ॥ १२ ॥ षटमासें इंद्रआवियो सहूनें
समझावे । संपति सुपना सारिखी मूरख ललचावे ॥
क० ॥ १३ ॥ रमणीरंग पतंगचो मतिकोईराचो । का
यामाया कारमी पिंडकुंभज्युंकाचो क० ॥ १४ ॥ रा
यराणा प्रतिबोधिनें इंद्रपाछा सिधाया । संजम पाले
साधुजी रोगदेखी सराया क० ॥ १५ ॥ सुरवैद रूप

वंछ्रोनही हढरह्यो धर्मधारी। ऋणसण ऋाराधीन्नलो लह्यासुर ऋवतारी क० ॥ १६ ॥ संवतसतरे जोजावरे छीयाले न्नावें। सनत कुमार मुनि खेमकहे गायांसुख पावें क० ॥ १७ ॥ इति सनत् कुमार स्वाध्यायः ॥

चित्रकहै ब्रम्हरायनें कछुदिलमैं ऋाणोहो। पूरव न्नव नी प्रीतड़ी तुमसूल मतोड़ोहो॥१॥ कलवारीरा सूतज्युं तूटीनै जोडेहो वं० ॥ २ ॥ म्हांरीतो कह्योक्युंनही कछु दिलमैं ऋाणोंहो। जातीसमरण ऊपनों पूरव न्नव जान्योंहो वं० ॥ ३ ॥ देशादेशांरा राजिया पहिलें न्नव दासाहो। बीजें न्नव कालिंगड़ा मृग वनवासाहो वं० ४ ॥ त्रीजेन्नव गंगानदी ऋांपें हंसलाडंताहो। चौथे न्नव चंडालरे घरजनम्या पुत्ताहो वं० ॥ ५ ॥ चित्र ब्रम्ह दोउंनमैं सवही गुणपूराहो। संगसहूई मनमोहियो धरणीधर सूराहो वं० ॥ ६ ॥ धरम सुणी घर छांडियो ऋांपें सयम लीधोहो। नियाणों तुम्हे ऋादस्यो कर्मन्नूंडा कीधाहो वं० ॥ ७ ॥ नारी रतननै निरखतां लपनों फलहास्यो हो। मैं तुझनै वरज्यो घणों तूं कांइ न विचास्योहो वं० ॥ ८ ॥ नलिनी गुल्मविमानमैं न्नव पांचु कीधाहो। तिहांथीचवी ऊपना कांपिलपुर सीधाहो वं० ॥ ९ ॥ चक्रवर्तपदवीलही सवही ऋधिकारूहो। कीधो सोई पांमियो थाहरी करणी सारूहो वं० ॥ १० ॥ पुरिमतालमैं ऊपना श्रावक ऋाचारी हो। समरथपदवी पायने मैंतासवही सुधारी हो वं० ॥ ११ ॥ मैंपिणऋद्धि लाधीघणी विविधप्रकारी हो। पिणमानवन्नव पांमिने कुण मूरखहारे हो वं० ॥ १२ ॥ इमजाणी व्रतऋादस्यो मनशुद्धैन्नावै हो। हुं ऋायो तुझप्रतिवोधवा हमैकांई ललचावै हो वं० ॥

वंछ्योनही हळरह्यो धर्मधारी । ञ्रणसण ञ्राराधीजलो लह्यासुर ञ्रवतारी क० ॥ १६ ॥ संवतसतरे जोजावरे छीयाले न्नावें । रानत कुमार मुनि खेमकहे गायांसुख पावें क० ॥ १७ ॥ इति सनत् कुमार स्वाध्याय: ॥

चित्रकहे ब्रम्हरायनें कछुदिलमें ञ्राणोहो । पूरव न्नव नी प्रीतड़ी तपगूल मतोड़ोहो ॥१॥ कतवारीरा सूतज्युं तूटीनै जोडेहो वं० ॥ २ ॥ म्हांरोतो कह्योक्युंनही क छु दिलमें ञ्राणोंहो । जातीसमरण ऊपनों पूरव न्नव जान्योंहो वं० ॥ ३ ॥ देञ्रदेञ्रांरा राजिया पहिलें न्नव दासाहो । बीजें न्नव कालिंगड़ा मृग वनवासाहो वं० ४ ॥ त्रीजेन्नव गंगानदी ञ्रापें हंसलाऊंताहो । चौथे न्नव चंड़ालरे घरजनम्या पुत्ताहो वं० ॥ ५ ॥ चित्र ब्र म्ह दोउंनमें सवही गुणपूराही । संगसड़ाई मनमोहियो धरणीधर सूराहो वं० ॥ ६ ॥ धरम सुणी घर छांड़ि यो ञ्रापें सयम लीधोहो । नियाणों तुम्हे ञ्रादस्यो कर्मन्नूंड़ा कीधाहो वं० ॥ ७ ॥ नारी रतननै निरख तां तपनों फलहास्यो हो । मैं तुऊनै वरज्यो घणों तूं कांई न विचास्योहो वं० ॥ ८ ॥ नलिनी गुल्मविमा नमें न्नव पांचु कीधाहो । तिहांथीचवी ऊपना कांपि लपुर सीधाहो वं० ॥ ९ ॥ चक्रवर्त्तपदवीलही सवही ञ्र धिकारूहो । कीधो सोई पांमियो थाहरी करणी सा रूहो वं० ॥ १० ॥ पुरिमतालमें ऊपना श्रावक ञ्रा चारी हो । समरथपदवी पायने मैंतासवही सुधारी हो वं० ॥ ११ ॥ मैंपिणऋद्धि लाधीघणी विविधप्रका री हो । पिणमानवन्नव पांमिने कुण मूरखहारे हो वं० ॥ १२ ॥ इमजाणी व्रतञ्रादस्यो मनशुद्धैन्नावै हो । ऊं ञ्रायो तुऊप्रतिबोधवा हमैकांई ललचावै हो वं० ॥

१३ ॥ छठैभव जूरवा श्रापेंदोनुंभाई हो । अत्रमिल वोछैदोहिलो जिमपर्वतराई हो वं० ॥ १४ ॥ इणसं सारसैंराचिया विषयारस वकुलाहो । तारकजीवतणी परै कुणधर्मनेंतोलै हो वं० ॥ १५ ॥ नियाणोकर सुख लह्या मानवभवकेरा हो । इणकरणीतुम्हजाणज्यो था हरानरकामेंफेरा हो व० ॥ १६ ॥ तेरीगति ञातिपा फवीतिणकरुंनिहोरा हो । इहअवसर वलिदोहिलोसु णवंधवमोरा हो वं० ॥ १७ ॥ रायकहे सुणसाधुजी मुझअरज सुणींजे हो । येक्लंभोग नछांफस्युं कुंअवर कहीजे हो वं० ॥ १८ ॥ चित्रवचन दाख्या घणाकछु नहिंशिख्या हो । पिणतेवाल्या नविवले जाकेकर्मनसि ष्या हो वं० ॥ १९ ॥ चित्रलही सदगतिभली उणनर कलिखाई हो । राजहर्षकहें किममिटै जाकीभवथित श्राई हो वं० । २० । इति व्रम्हदत्तस्वाध्याय ॥

नमो २ मनकमहामुनी बालथकीव्रतलीधोरे प्रेमपि तासुंपरठियो मासुंमोहनकीधोरे न० ॥ १ ॥ पूर्णचवदै पू रवधणीं सज्जंभवतसतातोरे । चौथोपटोधर वीरनों म हियलमांहिं विष्यातो रे न० ॥ २ ॥ श्रीसज्जंभवगणध रू उपदेशीनिजपुत्रो रे । सांफपफंताविरचियो दसवै कालिक सूत्रोरे न० ॥ ३ ॥ मासछए पूराभण्या दस अध्ययन रसालोरे । श्रालससगलो परिहरी धन २ ए मुनिबालो रे न० ॥ ४ ॥ चारित्र पटमासवाफला पालीपुन्य पवित्रो रे सर्ग समाधि सिधाविया क रिनेजगजश मित्रो रे न० ॥ ५ ॥ पुत्रमरण पांम्या पछैसज्जंभव गणधारो रे । श्रुतधरदुख मनमांधरै ति मनयणेजलधारोरे न० ॥ ६ ॥ प्रभुतुम्हे बहुपफिवो हिया समसंवेगी साधोरे । श्रम्हेतो आंसूंनवि दीठा

तुम्हनयणें निरखाधोरे न० ॥ ७ ॥ स्युंकहिये संसार नी येहवी थितिदीसेरे । नैंनैंदीठे तनतपें जोतां हि यडोहीसेरे न० ॥ ८ ॥ ग्राम्हनेयेमुनि मनकलो सुतसंबं धथीमिलियोरे । विणसैकाज कह्याथकी पिणकिणही नविकलियोरे न० ॥ ९ ॥ लब्धिकहे ज्ञवियणतुम्हेम करोमोह विकारोरे । तोतुम्हे मनकतणीपरैं पामोस दगति सारोरे न० ॥ १० ॥ इति मनक स्वाध्याय ॥

मित्रा१तारा२बला३दिप्रा४स्थिरा५कांता६प्रज्ञा७परा नामानि योगदृष्टीनां लक्षणानिच बोधत ॥ १ ॥ शिव सुखकारण उपदिशी योगतणी अडदिठीरे तेगुणथुणि जिनवीरना करिस्यु धरमनीपुठीरे वीरजिणंद नीदेशा ना ॥ आंकणी ॥ सघन अघन दिनरयणमां बाल वि कलनेंअनेरारे अरथजोइ जिमजूजुआ जघनजरितिमफे रारे वी० ॥ २ ॥ दरसणजेहुआ जुजूवा जघनिजरनें फेरें रे ज्ञेदथिरादिक दृष्टिमां समकित दृष्टिनेंहेरें रे वी० ३ ॥ दरसण सकलना नयग्रहें आप रहै निज ज्ञावें रे हितकरि जननें संजीवनी चारोतेह चरावें रे वी० ४ दृष्टिथिरादिक च्यारिमां मुगतिप्रयाण न ज्ञाजै रे रय णिशयनजन श्रमहरे सुरनरसुखतिम छाजै रे वी०५ एहप्रसगथी मैं कह्यो दृष्टिप्रथम हिवेंकहिये रे तेहमि त्रा तिहांबोधजे तिहांतण अगनिस्योंलहियेरे वी०६ व्रतपिणइहां जिमसपजै खेदनही शुज्ञकाजे रे द्वेषनही वलि अवर स्यु एह गुणअगे विराजे रे वी० ॥ ७ ॥ योगना बीज इहांग्रहैं जिनवर शुद्ध प्रमाणो रे ज्ञाव आचारिजसेवना ज्ञव उदवेग सुठामोरे वी० ॥ ८ ॥ द्रव्यअज्ञिग्रह पालवा जषध प्रमुखने दानेरे। आदरआ गम आसिरी लिखनादिक बहुमानेरे॥ ९ ॥ लेखनपूज

नअपवूंश्रुतवाचन उदग्राहोरे जाववित्तार सिज्झायथी चिंतन जावन चाहोरे वी० ॥ १० ॥ वीज कथा जलै सांजली रोमांचितहोय देहेरे एहअवंचक योगथी ल हियेधरम सनेहें रे वी० ॥ ११ ॥ सम्जुरुयोग वंदन क्रिया तेहथीफल होवेंजेहो रे योग१ क्रिया२ फल३ जे दथी त्रिविध अवंचक एहोरे वी० ॥ १२ ॥ चाहैच कोरराते चंदनै मधुकर मालति जोगीरे तिमजविसह जगुणेजवें उत्तम नित्तसंयोगीरे वी० ॥ १३ ॥ एह अवंचकयोगते प्रकटैचरमआवर्त्ते रे साधुनेसिद्ध दशा समों वीजलुं चित्तप्रवर्त्तेरे वी० ॥ १४ ॥ करण अ पूर्वना निकटथी जेपहिलो गुण ठाणोरे । मुख्यपणेते इहांजवें सुजशविलासनुं ठाणोंरे वी० ॥ १५ ॥ इति प्रथममित्रा दृष्टि सिज्झाय ॥ १ ॥

ढालदरशणताराहष्टिमां मनमोहनमेरेगोमय अगनि समान म० सोचसंतोषनें तपजलो म० हिज्झायईस्व रध्यान म० ॥ १ ॥ नियमपांच इहांसंपजै म० नहि किरिया उदवेग म० जिज्ञाशा गुणतत्वनी म० पणन हिनिज हठटेक म० ॥ २ ॥ एहदृष्टिहोइ वरततां म० योगकथा बहुप्रेम म० अनुचित तेहनेंआचरै म० बा ल्योवलै जिमहेम म० ॥ ३ ॥ विनय अधिक गुणनों करै म० देखी निज गुण हांणि म० आंणैधरे जवजय थकी म० जवमाने दुखखांणि म० ॥ ४ ॥ शास्त्रघणा मतिथोडली म० शिष्टकहैतेप्रमाण म० सुजस लहै एजा वथीम० करैनहींकूडफांणम० इतिताराहष्टिस्वाध्याय

५ ॥ ढाल ॥ प्रथम गोवालातणै जवेंजी येहदेशी ॥ त्रीजी दृष्टि वलाकहीजी काष्ठ अगनि समबोध। खेदै नहि आसन सधैंजी श्रवण समीहा सोधरे जिनजी

धन २ तुम उपदेश ॥ १ ॥ तरुण सुखी स्त्री परि
वस्योजी जिमचाहें सुरगीत सांजलवा तिम तत्वनेंजी ये
हृष्टी सुविनीतरे जिनजी ध० ॥ २ ॥ सरिये बोधप्रवा
हनीजी येहविनश्रुतथलकूप श्रवणसमीहा तेकिसीजी
शयितसुणे जेहनूपरे जि० ध० ॥ ३ ॥ मन रीझै तनउ
ल्हसैजी रीझबुझ इकतान । ते इच्छाविण गुणकथा
जी वहिरा आगलगानरे जिन० ध० ॥ ४ ॥ विघन इहां
प्रायें नहीजी धर्म हेतुमांहि कोय । अनाचार परिहा
रथीजी सुजश महोदय होयरे जिन० ध० ॥ ५ ॥
इति तृतीय वलाहृष्टी स्वाध्याय ॥ ३ ॥

॥ झांझरिया मुनिवरझांझरझमके पाय येदेशी ॥
योग हृष्टि चौथी कहीजी दिप्रा तेहनु थान प्राणाया
म तेह जावथीजी दीप प्रजासम ज्ञान । मन मोहन
जिनजी मीठीथारीवाण वाह्यजाव रेचकइहांजी पूरक
अंतरजाव कुंजकथिरतागुणैं करीजी प्राणायाम स्वजाव
म० ॥ १ ॥ धर्म्म अर्थें इहां प्राणनेंजी छांडै पिण नहि
धर्म्म प्राण अथिर संकट पडैजी जुन ए हृष्टिनों मर्म
मन० ॥ २ ॥ तत्व श्रवण मधुरो दकैं जी इहां होय
वीज प्ररोह खारउदकसम जवत्यजैं जी गुरुजक्तैं अ
द्रोह मन० ॥ ३ ॥ सूक्ष्मवोध तो पिण इहांजी सम
कित विण नवि होय वेद्य संवेद्यपदैं कह्यो जी ते न
अवेद्ये जोय मन० ॥ ४ ॥ वेद्य संबंध शिव हेतु छै
जी संवेदन तसनांण नयनिक्षेपें अतिजलो जी वेद्य
संवेद्य प्रमाण मन० ॥ ५ ॥ ते पदग्रंथि विजेद थी
जी छेहली पापप्रवृत्ति तप्तलोहपद धृतिसमी जी ति
हांहोय अति निर्वृत्ति मन० ॥ ६ ॥ येहथकी विप
रीतछै जी पदजे वेद्य अवेद्य जव अजिनदी जीवनें

जी ते होय वज्र अभेद मन० ॥ ७ ॥ लोभी कृपणद
यामणो जी मायीमच्छरठाण भवअभिनंदी भय भस्या
जी अफल आरंभ अयाण मन० ॥ ८ ॥ एहवा अव
गुणवंतना जी पदजे अवेद्य कठोर साधुसग आगम
तणो जी ते जीतो धरि जोर मन० ॥ ९ ॥ ते
जीते सहिजें टलैजी विषम कुतर्क प्रकार दूर निकट
हाथीहणेजी जिमएवठरविचार मन० ॥ १० ॥ कूपा
म्योसंशयनहीजी मूरखकरे ए विचार आलसूआ गुरु
शिष्यनाजी तेतोवचन प्रकार मन० ॥ ११ ॥ धीजैते
पतिआववुं जी आपमतैं अनुमान आगमनें अनुमान
थीजी साचुलहे सुज्ञान मन० ॥ १२ ॥ नहीसर्वज्ञ ते
जुजुवा जी तेहना वलि जे दास भगति देवनी पिण
कहीजी चित्र अचित्र प्रकाश मन० ॥ १३ ॥ देवसं
सारी अनेकछैजी तेहनी भगति तेचित्र एक रागपर
द्वेषथीजी एहमुगतिनी अचित्र मन० ॥ १४ ॥ इंद्रिया
र्थगतबुद्धिछैजी ज्ञानते आगमहेत असंमोहशुभ कृति
गिणेजी तिणफल भेद संकेत मन० ॥ १५ ॥ आदर कि
रिया रतिपणीजी विघनटलै मिलैलच्छि जिज्ञासा बुध
सेवनाजी शुभकृत चिन्हप्रतिच्छ मन० ॥ १६ ॥ बुद्धि
क्रिया भव फलदियेजी ज्ञानक्रियाशिवअंग असंमोह
किरियादियेजी शीघ्रमुगतिफलचंग मन० ॥ १७ ॥ पु
द्गल रचनाकारमीजी तिहाजस चित्तनलीन एकमार्ग
तेशिवनणोजी भेदलहैंजगदीन मन० ॥ १८ ॥ शिष्य
भणी जे देशनाजीकहैंजिनपरिणतिभिन्न कहेमुगतिनी
देशनाजी परमारथथी अभिन्न मन० ॥ १९ ॥ सयद
नेदकनाकिमोजी परमारथजोएक कहोगंगा कोइ
सुरनदीजी वस्तुफिरैनहीछेक मन० ॥ २० ॥ धर्मकूमा

दिकनविमिटैजी प्रगटैं धरमसन्यास तोकिगझो झा
टातणोजी मुनिनैंकवण ञ्युन्यास मन० ॥ २१ ॥ अग्नि
निवेश सगलोत्यजैं जी च्यारलही जिणहृष्टि तेलहिस्यें
हिवपांचमीजी सुजश अमृतघनवृष्टि मन० ॥ २२ ॥
इति दीप्रा स्वाध्याय ॥ ४ ॥

ढाल धन २ सप्रति साचोराजा एजाति ॥ हृष्टिथि
रामांहि दरसण नित्यें रतनप्रभासम जांणो रे भ्रांति
नहींवलि वोधिते सूखमप्रत्याहारवखाणुं रे ॥ १ ॥ ए
गुण वीरतणोंनविसारू संभारुंदिनरात रे । पशुपाटली
सुर रूपकरे जे समकितमनअवदात रे ए० ॥ २ ॥ वा
लधूलिघर लीला सरिपी भवचेष्टा इहांभापें रे । ऋ
द्धिवृद्धि घटमांसवि प्रगटै अष्टमहासिद्धि पासें रे ॥
ए० ॥ ३ ॥ विषयविकार नइंद्रीजोडै तेइहांप्रत्याहा
रो रे । केवलतत्व तेजोतिप्रकासें शेषउपायअसारो रे
ए० ॥ ४ ॥ शीतलचंदन थी पिणउपनों अगनिदहै
जिमवननें रे । धरमजनित पिणभोग इहांतिम लागे
अनिष्टतें मननें रे ए० ॥ ५ ॥ असेंहोय इहांअविना
सी पुद्गल जालतमासी रे चिदानंद घन सुयशवि
लासी किम होय जगनों आसी रे ए० ॥ ६ ॥ इति
थिरा स्वाध्याय ॥ ५ ॥

ढाल भोलीडा हंसाविषय नराचिये ए जाति ॥ अ
चपलरोग रहितनिष्ठुरनही अलपहोय दोयनीनिगंध
तेसारो रे कांतिप्रसन्नता । सुस्वरप्रथमप्रवृत्ति धन २
सासन श्री जिनवीरतणों आंकणी ॥ १ ॥ धीरप्रभा
वीरे आगल योगथी मैत्र्यादिक पुनचित्त। लाभइष्ट
नोरेधंध अहृष्यता जनप्रियता होयनित्त ध० ॥ २ ॥
नाशदोषनो रे तृपति परमलहें समता उचित संयोग

नाग्नावयरनोंरे वुद्धिग्नातंन्नरा एहनिष्पन्नहैयोग घन० ३ ॥ चिन्हयोगना रे जेपरग्रंथमां योगाचार एदीठ । पंचमदिठि थकीसविजोफैं एहवा तेहगरिठ घ० ॥ ५ दृष्टिते छठीरे हिवेकांताकहूं तिहांताराऩ्नप्रकाश्र तत्व मीमांसारे द्दढहोय धारणा । नही ञ्चन्यथातसुवास ॥ घ० ॥ ६ ॥ मनमाहिलानुं रे वालहाऊपरें वीजा काम करंत तिमश्रुत धरमैंरे एहमांमनधरैं ज्ञान ञ्चाक्षेपक वंत घ० ॥ ७ ॥ एहवेंज्ञानैंरे विघननिवारणो ञ्नोगन हीन्नवहेत नविगुणदोप न विषय स्वरूपथी मनगुण ञ्चवगुणखेत घ० ॥ ८ ॥ मायापाणीरे जाणीतेहनें लं घीजाय ञ्चडोल साचुंजाणैं रे तेवीहतोरहैं टलै नडां वाडोल घ० ॥ ९ ॥ ञ्नोग तत्वनैंरे इम ञ्चयनवि टलैं फूठाजाणें रे ञ्नोग ते एहदृष्टीरे ञ्नवसागरतरें लहैंवलिसु यशसंयोग घ० ॥ १० ॥ इति कांता स्वाध्याय ॥ ६ ॥

ढाल एवोफी किहा राषिनी एजाति ॥ ञ्चर्कप्रन्नास मवोधप्रन्नावमांहि ध्यानप्रियाएदीठी तत्वतणीप्रतिप त्तिइहांवलि रोगनहीसुख पुठीरे ञ्नविका वीर वचन चितधरिये ञ्चाकणी ॥ १ ॥ सगलुं परवस ते दुखलक्ष ण निजवस तेसुखलहिये एहष्टी ञ्चातम गुणप्रगटै सु खहोय तेकुण कहियेरे ञ्न० ॥ २ ॥ नागर सुखपामर नविजाणै वल्लन्नसुखन कुमारी ञ्चनुन्नवविण तिमध्यान तणो सुख कुंण जाणै नरनारीरे ञ्न० ॥ ३ ॥ येहृष्टि मांनिरमल वोधें ध्यान सदा ज्ञइं साचूं दूपण रहित निरंतर ज्योति रतनते दीपैंजाचूं रे ञ्न० ॥ ४ ॥ विषय ञ्नोग क्षय शांतिवाहिनी शिवमारग ध्रुवनांम । कहै ञ्चसंगक्रियाइहांयोगें विमल सुजसपरिणांमैंरे ञ्न० ॥ ५ इति प्रन्ना दृष्टि स्वाध्याय ॥ ६ ॥

दृष्टि आठमी सारसमाधी नामपरातस जाणुंजी ।
आपस्वभावैं प्रवृत्ति पूरण शशिसम बोधवखाणुंजी ।
निराचार पद येहमां योगी कहिये नहि अति चा
रीजी आरोहैं आरूढ गिरीनैं तिम एहनी गतिन्यारी
जी ॥ १ ॥ चंदन गंध समान पिमा इहां वासवनैं न
गवेपैंजी आसंगैवरजितवलि यहमां किरिया निजगुण
लेखेंजी शिख्याथी जिम रतननियोजन दृष्टिभिन्न तिम
एहोजी तासनियोगें करण अपूरव लहैं मुनिकेवल गे
होजी ॥ २ ॥ खीणदोप सर्वज्ञ महामुनि सर्वलब्धिफल
भोगेंजी परउपगारकरी शिवसुखनें पांमें योग अयो
गेंजी सर्व शत्रुक्षय सर्व व्याधिलय पूरणसर्व समीहा
जी सर्व अरथ योगें सुखतेहथी अनंत गुणहनिरीहाजी
४ ॥ एअडदृष्टि कही संपेपैं योगशास्त्र संकेतेंजी कुल
योगीनें प्रवृत्ति चक्रजे तेहतणें हितहेतेंजी योगिकुलें
जायाते तसधर्मैं अनुगत ते कुल योगीजी अद्वेषी गु
रुदेवद्विजप्रिय दयावतउपयोगीजी ॥ ५ ॥ शुश्रूषादि
कगुणसपूरण प्रवृत्तचक्र एकहियेजी जिमद्वयत्यागी पर
दुग अरथी आद्य अवंचक लहियेजी च्यार अहिं
सादिक जिम इच्छा प्रवृत्ति थिरसिधनामेंजी शुद्धरुचें
पालें अतिचारह त्यागें फल परिणामेंजी ॥ ६ ॥ कुल
योगीनें प्रवृत्ति चक्रनें श्रवण शुद्ध पक्षपातेंजी योग
दृष्टिग्रथें हितहोइ तेण कही ए वातेंजी शुद्धभावनें
शूनी किरिया बिहुमां अंतर केतोजी झलहलतो सू
रिजनेंखजुउ तासतेजमें जेतोजी ॥ ७ ॥ गुह्यभाव ए
तेहनें कहिये जेहसूं अंतर भांजेजी जेहसूं चित्तपटंतर
रहवें तेहसूं गुह्य नछाजेजी योग्यअयोग्य विभाग अ
लहतो कहस्ये मोटोपातोजी सनस्यै ते पंडितपरपद

मां मुष्टिप्रहारनें लातोजी ॥ ८ ॥ सन्नातीनश्रोतागुण अवगुण नंदीसूत्रें दीसेंजी तेजाणीयेग्रंथ जोगनें देज्यो सुगुण जगीशेंजी लोकपूरज्यो निज २ इच्छा योगन्ना ग गुणरयणेंजी श्री नयविजय विबुधपय सेवक वा चक जसनेंवयणेंजी ॥ इति पराहष्टि स्वाध्याय ॥ ९ ॥

॥ इतिश्री आठ दृष्टिनी सिज्झाय संपूर्णम् ॥ ॥

येकघरघोड़ा हाथिया रे पायकसंख अपार। मोटा मंदिर मालिया जी वृक्षतणा आधाररे जी० ॥ १ ॥ विणदीधो किम पामिये जी आपविमासी जोयरे । जीवड़ा दीधाना फलजोय ॥ २ ॥ इकदिन साथेजन मियाजी इवड़ो अंतरआज । इकमाथें पूलीवहेजी ये क तणेंघर राजरे जी० ॥ ३ ॥ येकतणें घर मलपती जी मीठाबोलीनार । इकघरकाली कूबड़ीजी कोइन चढैघरबाररे जी० ॥ ४ ॥ सेवसुहाली लापसी जी भोजन कूरकपूर । येकतणेंघर ढोकलाजी तेनहीपेट भरपूररे जी० ॥ ५ ॥ येकघर बेटावड़ाजी चलावेघ रनोंसूत । येकनरदीसे वांझड़ाजी कैकुलखांपणपूत ॥ जी० ॥ ६ ॥ येकचढैघोड़ै हांसलै जी येकआगलि दो ड्योजाय । येकनरपोढै पालखीजी येकउन्नरांणे पायरे जी० ॥ ७ ॥ येकचित्रमाहि बोलावियेजी येकचित्र मांहिचौसाल । येकतणोंनाम न जांणियेजी नामअछै जगपालरे जी० ॥ ८ ॥ भरियानें सहूकोभरैजी वूठा वरसैमेह । सुखियारे सहूकोसगा जी दुखियांरे नहि कोयरे जी० ॥ ९ ॥ धनकारण धायोफिरे जी जनम गमायोआल । आंगणवायो वाजरोजी तेकिमलूणी जैंसालरे जी० ॥ १० ॥ आंगणवायो नीबड़ोजी सीं च्योमनउल्हास । फलातणी वेलाहुई जी करै आंवारी

आसरे जी० ॥ ११ ॥ बालविळोहाजेकरे जी मोटा दूपणयेह ज्नरयौवनक्षोरूमरे जी कैवांकफ्री होयरे जी १२ ॥ पात्रकुपात्रां आंतरोजी जोवोकरियविचार ज्ञा लज्नद्रसुख ज्नोगवेंजी पात्रतणै परकाररे जी० १३ ॥ पायपटोली पांमफ्रीजी माथैमोतीमाल येकतणें नहि उढणोजी पांघरणी चउसालरे जी० ॥ १४ ॥ दज्ञवि णगरव जिकोकरैजी ज्नोलामूरखलोक जिमदीवोतेले विनाजी हांफ्रीमां होवेफोकरे जी० ॥ १५ ॥ श्रांणनखं फै जिनतणीजी ढमकैढोल निसाण मुनिलावण्य समय ज्नणैजी जोवोरदांन प्रमाण जी ० ॥ १६ ॥ इत्यात्म हेतुस्वाध्यायः ॥

॥र्दय॥ देवदाणव तीर्थंकर गणधर हरिहर नरवरसग ला कर्मवसै सुखदुपज्नोगवी सबलज्ञवा महानिबला रे प्राणी कर्मसमो नहिकोई श्रांकफ्री ॥ १ ॥ कीधा कर्म विनाज्नोगव्यां छूटकवारो नहोईरे प्राणीकर्म० ॥ २ ॥ श्रादीसर नें कर्म श्रटाख्यो वरस दिवस रह्यान्नूखे पी रनैं वारै वरस दुखदीधो उपनो ब्राम्हणीकूखरे प्राणी क० ॥ ३ ॥ कुंन्नराजारी राणीनोयेटी मल्ली राजकुमा री येअच्छेरोश्रद्भुत कहिये तीर्थंकरज्ञई नारीरे प्राणी क० ॥ ४ ॥ साठ सहससुतमास्या इकदिन जोधा ज्नवा ननरजैसा सगरक्रूयो निजपुत्रै दुखियो कर्म तणा फ़ ... ध्रैसारे प्राणी क० ॥ ५ ॥ वन्नीस सहस देसांरो ना हिब चक्री सनतकुमार सोलै रोग ज्ञरीरमें ऊपना क र्मकीयोतन ख्वाररे प्राणी क० ॥ ६ ॥ सन्नमनामे श्रा ठमोंचक्री करम सायरमें नाख्यो सहसपचवीस यक्षज ज्नादेखें पिणते किणही नराख्योरे प्राणी क० ॥ ७ ॥ ब्रम्हदत्तनामें वरमोंचक्री कर्मकीधो श्रांधो इन ...

प्राणीवेकांमैं कर्म कोईमतिवांधोरे प्राणी क० ॥ ८ ॥
पदवीहोप्रतिवासुदेवरी रावणनैं लखमणमास्योंश्रति
श्रहंकारी बकियो वहतो तेपिणकर्मसुंहास्योरे प्राणी
क० ९ लक्ष्मण राम महा बलवंता श्ररुसतवंती सीता
बारवरस लगवन दुखदीठा वेहला वळला बीतारे
प्राणी क० ॥ १० ॥ लीधीलंका सोवनमय नगरी लछ
मण रावणनेंमास्यो जगसघलै निजश्राण मनावी कर्म
सुंतेपिण हास्यारे प्राणी क० ॥ ११ ॥ कृष्यनकोड़ या
दवांरो साहिब कृस्न महाबल जाणी श्रटवी मांहिमु
वो एकलड़ो विलर तो विनपांणी रे प्रांणी क० १२ ॥
पांड़व पांच महाबलवंता हारीद्रोपदा नारी वारें वर
सवनषंड़ै वसिया ज्ञमिया जेमज्ञिख्यारीरे प्राणी क०
१३ ॥ सतिय शिरोमणि द्रोपदा कहिये तिण समी
श्रवरनकाई पांचपुरुषनी थई तेनारी पूर्वकर्मदुखदाईरे
प्राणी क० ॥ १४ ॥ कर्म हवालकिया हरचंदमै वेची
तारादेराणी बारै वरसलगेंमाथें श्राण्यो डूंवतणै घर
पाणी रे प्राणी क० ॥ १५ ॥ समकित धारी श्रेणिकरा
जा वेटेंबांध्यो मसकै धरमी नरनैं करमधकाया कर्म
सुंजोरन किसकै रे प्राणी क० ॥ १६ ॥ दधि वाहन
राजारीबेटी चावीचंदनवाला चौपदजिम चोहटामैंवि
काणी कठिन कर्मना चालारे प्राणी क० ॥ १७ ॥ कुं
ड़रीक राजादीक्षालेनें पाछोघरमैंश्रायो दोय दिनारो
राजपालनें सातमीनरक सिधायोरे प्राणी क० १८ ॥
जिनऋषिलोभ करीनैचाल्यो सागर मांहींश्रायो जक्ष
तणी परतीतनराखी देवीसुंमोहज लागोरे प्राणी १९ ॥
लंगड़ा लंगड़ीवलै बुलायो ड़रतैंवचनज फेस्यो कमल
प्रभनामै श्राचारिजगोत्रतीर्थंकर षेस्यो रे प्राणी क०

२० ॥ ढंढणऋषिरै कर्मउदैभवो छमासेंरह्योभूखो आ
हारमिल्योते लब्धिकुस्तरी नेमकह्यांथी परठणढूकोरे
प्राणी क० ॥ २१ ॥ रायप्रदेशी पापीभंतो भवोबा
राव्रतधारी तपस्यामांही कर्मउदैभवो जहरदियो नि
जनारीरे प्राणी क० ॥ २२ ॥ नंदन मणिहारो श्राव
कभंतो समकितबोध गमायो सोलैंरोगशरीरमै ऊपना
डेडकरो भवपायोरे प्राणी क० ॥ २३ ॥ नामैं एलापुत्र
सेठरोबेटो उणहीभव शिवगामी नटविध सीखवां
सपरिखेल्यो नटवीसुंलुबधो कामीरे प्राणी क० २४
पांडुराजारी तपिणनारी कर्णकुमारीजायो निजहाथै
पुत्रनैं हणियो कर्मतणोंफल पायोरे प्राणी क० २५ ॥
राजाहरचंद मलयागिरि नारी सायर नीर दोय बेटा
बार वरस लगै दुख जेदीठा कर्मतणा चपेटारे प्राणी
क० ॥ २६ ॥ आभापुरनों भंतोस्वामी चावो चंदनरे
भा मांइंकीधोपंखी कूकडो कर्मैंपाम्यों कलेशरे प्राणी
क० ॥ २७ ॥ अंजनानारी रूपैसारी माहेंद्रराजारी बे
टी वनमें तेहणवंतजायो कर्मनी गतिनहि मेटीरे प्रा
णी क० ॥ २८ ॥ ईश्वरदेव पार्वतीराणी कर्त्तापुरुप
कहावें अहनिशिमेल मसांणमें वासो भिष्यानों भोज
नखावेंरे प्राणी क० ॥ २९ ॥ सहस किरण सूर्यप्रता
पी रात दिवस रहै भमतो सोलकला शशि धर चा
वो दिन२ जायें घटतोरे प्रणी क० ॥ ३० ॥ कर्मत
णोंसरूपसुणींनें उत्तमकीज्योविचार आवता रोकोलार
लातोडो ज्योंपामों भवपाररे प्राणी क० ॥ ३१ ॥ इम
अखंड खंम्माकरमैंनरां भांज्यातेभला साजा कर्मदलतो
सबलाकहीजै नमोनमो कर्म राजारे प्राणी क० ३२
आठकर्म अरियण अधिकाई साभलज्यो सझभाई ऋ

ऋिहर्षकहे धर्मसखाई करज्यो शिव सुखदाई रे प्राणी क० ॥ ३३ ॥ इति कर्म बत्तीसी संपूर्णा ॥

॥दं०॥ समरीश्रुतदेवी सारदा । सरस वचन वरआ पेंसदा ॥ आंबिल तपनों महिमाघणों । नविजन नाव थकी तेसुणों ॥ १ ॥ विगयसकलनो जिहां परिहार अन्ञानमांहिं घणों नेदविचार ॥ विदल सर्वतिलतूयरविना । अलसी कोद्रवकांगनीमना ॥ २ ॥ षंऊधनपुंहक हू कटफलसर्व । वर्जी जे आंबिलनें पर्व ॥ नसांमणप रिजोजल नलै । तोआंबिल अंबिल रसटलै ॥ ३ ॥ बिलवण सूंठिमरिचनैसुआ । मेथी संचलरांमठ कह्या अजमांदिक नेलारंधाय । तोआंबिलमांहि लेवाथाय ४ ॥ जीरुंनिले तेजेवऊीकही ॥ तेसूऊै पिणजीरूं नहीं गोमूत्रबिनाअळै अणहार । तेस वैंनिन्नैंविवहार ॥ ५ सात जातिते तंडुलतणी । तेसूऊती आंबिल मांनणी सेकिलधान अपक्कोदाल । मांऊाखाखर लेवाटाल ॥ ६ ॥ हलदलवंगपीपलपीपली । हरऊैसैंधव वेसणवली खादिम सादिम जेहकहाय । तोआंबिलमां नविलेवाय ॥ ७ उत्कृष्टें विधि उष्ण जलनीर । जघन्य विधें कांजी नुंनीर ॥ इम निरुपण आंबिलकरे । मुखधोवण दातण नविकरे ॥ ८ ॥ जे निरदूपण लिये आहार । नदन नों तेहनें विवहार ॥ आटालिंगठ पांणी वतुं । तेपिण आंबिलमां सूऊतूं ॥ ९ ॥ असठगीतारथ अणमच्छरी । जेजे विधि बोले तेखरी लान्नालान्न विचारेजेह विधिगीतारथ कहिये तेह ॥ १० ॥ आंबिलतप उत्कृष्टोकह्यो । विघन विऊारण कारण लह्यो वाचक कीर्ति विजय सुपसाय । नापें विनयविजय उवज्झाय ॥ ११ ॥ इतिश्री आंबिल तप सिज्झाय ॥

पुरसुग्रीव सुहामणो मृगापुत्र राजा बलभद्र रायहो महल विराजै चोकरा मृ० गोखां रतन जडायहो म्हां रा राजकुमर म्हारालालकुमर म्हारावलसिरी मृ०गो० राजपंथसाम्होजोवतां मृ० बैठासुखमै आयहो १ पंच सुमति करसोभता मृ० गुणसगवीस भंडारहो तीजै पोहरैं गोचरी मृ० दीठाइम अणगारहो म्हां० जातीसमरण जागीयो मृ० पूर्वभव पंच महाव्रतधारहो ॥ २ ॥ घर आवीकहै मातनैं मातामोरी एसंसार असारहो अनुमतिदीजैंमातजीमाताहेमोरी लेस्युंसंयमभारहोम्हां०ले० पूरवसुकृत जेमातजी मा० जेभोगवुंइण वारहो ॥ ३ ॥ इष्टकंत तूंमांहरे मृ० वाल्हो लागेंमोहिहो तूंसुतजी वनकीजडी मृ० माता साम्हो जोयहो म्हा० मृ० मातासा० झूंकिमजीवुंमोरी मातजी मा० मोह कीयां दुखहोयहो ॥ ४ ॥ मणि माणक मोतीघणा मृ० हीरा लालजडाणहो पुत्रपिता धनसंचीयो मृ० सातपीढील गमाणहो म्हा० धनकिम माणूंमातजी मा० सीरघणा जगि जाणहो ॥ ५ ॥ कंचन कांबी सारसी मृ० चालंतीगजगेलहो रूपैरंभासारिसी मृ० रमण्यांसु मनमेलहो म्हा० मनकिम मेलूंमातजी मा० कामभोग विषवेलहो ॥ ६ ॥ पंचमहा व्रत पालवा मृ० पांचे दुक्करकारहो बावीसपरीसह जीपवा मृ० संजम पडा धारहो म्हा० सजमसुखीमोरी मातजी मा० जिणतरियें संसारहो ॥ ७ ॥ सुरगिरटांकै तोलवो मृ० लोह चिणाकिम चायहो स्वादकिसो वेलूकवें मृ० जलनिधिके मतिरायहो म्हा० लखचौरासी भमभ्यो मा० सजन किसो दुखथायहो ॥ ८ ॥ अनंत गुणी ऊन्हीतिहां मा० अनंत गुणवसिठारहो छेदनभेदन वेदना मा० उभरा

ध्ययन विस्तारहो म्हा० नरकतिर्यंच मैमातजी मा० अनंत अनंती वारहो ॥ ९ ॥ घर२फिरवो गोचरी मृ० माथेकरवो लोचहो तुंसुकमाल सुहामणों मृ० तुऊमा तानैसोचहो म्हा० सोचकिसो हिव मातजी मा० करस्यांकरमां मोचहो ॥ १० ॥ पूतरोगादिक जोगव्यां मृ० कुणकरसी तुऊ सारहो । मृगजिममार्ग मालहस्यां मा० करस्याउग्रविहारहो मा० जेमसुखीहोवो वलसिरी मृ० लीधो संजमनार हो० ॥ ११ ॥ केवलपाम्यो निरमलो मृ० पांमी शिवसुख ठामहो गच्छनागोरीदीपतो मृ० खेतसीजी गुण धामहो म्हां० मृ० खेतसी० खेम नणै करजोऊनै मृ० त्रिकरण शुद्ध प्रणाम हो ॥ १२ ॥ इति मृगापुत्र स्वाध्यायः ॥

कपूरहोवें अतिऊजलुं एदेशी । वंदीप्रणमी प्रेमसु रे पूछें गौतम स्वाम वीरजिणेसर हितकरी रे अरथकहैं अनिरामरे ॥ १ ॥ नविका सुणज्यो नगवइ अंग । मनआंणी उछंगरे न० । गौतम स्वामीयें पूछिया रे ॥ प्रश्न सहसछत्रीस । तेहनो उत्तर एहमां रे दीधा श्री जगदीसरे नवि० ॥ २ ॥ एक सुअखंध एहनों रे । शतक एकचालीस शतकैं शतकैं अतिघणारे उद्देशा जगदीसरे न० ॥ ३ ॥ वांच्युं सूऊैंतेहनें रे । जेणे ठमासीयोग ॥ वांच्योहोय गुरु आगलें रे । किरिया तप संयोगरे न० ॥ ४ ॥ सांनलतां एकासणुं रे । पचखी करें त्रिविहार ब्रम्हचारि नूमी सुयें रे करें सचित परिहाररे न० ॥ ५ ॥ देयवंदे त्रिण टंकनारे । पडिकमणुं बेवार कठिन बोलनविबोलियेंरे । रागद्वेष निवाररे न० ॥ ६ ॥ कलह नकीजे केहसुंरे पापस्थानक अढार यथाशक्ति इम वरजियें रे । धरमध्यान मनधाररे ॥

न० ॥ ७ ॥ उंझेमन आलोचियें रे एहना अर्थविचार वलिवलि एह संन्नारियें रे जांणी जगमें साररे न० ॥ ८ ॥ पंचवीस लोगस्सनोरे कीजे काउसग्ग । एहसूत्र आराधवोरे थिरकरि चित्त अन्नंगरे न० ॥ ९ ॥ नांम तीन वे एहनांरे । पहिलुं पंचमअंग ॥ विवाह पन्नती ए नलुं रे नगवती सूत्र सुरंगरे न० ॥ १० ॥ जिणदिन सूत्र मझावियें रे । तिणदिन गुरु नी नक्ति ॥ अंगपूजणुं कीजियेरे । प्रनावना निज शक्तिरे न० ॥ ११ ॥ गौतमनें नामें करोरे । पूजा नक्ति अपार ॥ लखमीनो लाहोलियोरे । सगति तणे अनुसाररे न० ॥ १२ ॥ मांझवना व्यवहारियारे । धनसोनी संग्राम जेणसोनैयें पूजियोरे गुरुगौतमनूं नामरे न० ॥ १३ ॥ सोनइया अविचल थयारे । तेब्रीस हजार ॥ पुस्तक सोवन अक्षरें । दीसेंचणा नंझार रे न० ॥ १४ ॥ जपिये नगवति सूत्रनी रे । नोकरवाली वीस ॥ ज्ञानावरणी त्रूटियें रे । एहथी विसवा वीसरे न० ॥ १५ ॥ सर्प जहरजिमऊतरें रे तेजिममंत्रप्रयोग । तिमएअक्षर सांनले रे टालें करमना रोगरे न० ॥ १६ ॥ सूत्रए पूरुं थई रहेंरे । नच्छव करो अनेक । नगतिसाधु सामी तणीरे । रातीजगा विवेकरे न० ॥ १७ ॥ विधेंकरी इमसान्नलैं रे । जेइग्यारह अंग । थोमान्नवमाहें लहें रे ते शिवरमणी सगरे न० ॥ १८ ॥ संवत सतरे अम तीस मेंरे । रह्या रांनेर चोमास ॥ सघें सूत्रए सांनल्युंरे आणी मनउल्लासरे न० ॥ १९ ॥ पूजानक्ति प्रनावनाजी । तप किरिया सुविचार ॥ विधइम सघलो साचव्योरे । समयतणें अनुसाररे न० ॥ २० ॥ कीर्ति विजय उवझायनोंरे सेवक करै सिज्झाय ॥ इ

णपरि ज्ञगवती सूत्रनोंरे । विनयविजय उवझायरे २१ ॥ ज्ञविका० ॥ इति ज्ञगवती सूत्रसिज्झाय संपूर्णम्
॥र्दय॥ कोइलो परवत धूंधलोरे लो ॥ एदेशी ॥ आचारंगवडुं कह्योरे लो । अंगइग्यार मझाररे चतुरनर अठारहजार पदें जिहांरे लो । दाष्यो मुनिआचाररे च० ॥ १ ॥ ज्ञावधरीनें सांज्ञलोरे लो । जिमज्ञाजें ज्ञवज्ञीतरे च० । पूजा ज्ञगति प्रज्ञावनारे लो । साचविये सवरीतरे च० । ज्ञावधरीनेंसांज्ञलोरे एआंकणी। दो सुअखंधसुहामणोंरे लो । अज्झयणा पणवीसरे च० ज्ञास्वता अरथ इहांकेंहेंरे लो । जुगतें श्रीजगदीसरे च० ज्ञा० ॥ २ ॥ मीठडेंवयणे गुरूकह्योरे लो । मीठडुं अंगज एहरे च० ॥ मीठडि रीतें सांज्ञलैरे लो । सुख लहें मींठडा तेहरे च० ज्ञा० ॥ ३ ॥ सुरतरु सुरमणि सुरगवीरे लो । सुरघट पूरै कामरे च० । सांज्ञलवुं सिद्धांतनुंरे लो । तेहथी अतिअज्ञिरामरे च० ज्ञा० ॥ ४ श्री नयविजय विबुध तणोंरे लो । वाचकजस कहैंसीखरे च० । तुमनें पहिला अंगनोंरे ज्ञारणझज्यो निज्ञा दीसरे च० ज्ञा० ॥ ५ ॥ इति प्रथमअंग आचारांग सिज्झाय ॥ १ ॥

कपूरहोवें अतिऊजलोरे एदेशी ॥ सुयगडांग हिवेंसांज्ञलोजी । वीजो मननें रंग ॥ श्रोतानें आवेंरुचीजी तेहजलागैअंग ॥ १ ॥ चतुरनर धारो समकित ज्ञाव एहै ज्ञवसायरमां नाव च० टेक ॥ सूअखंध दोय इहांज्ञलाजी । अज्झयणा तेवीस तिसयातिसठि कुमति तणुंजी । मतखंडण सुजगीस च० ॥ २ ॥ कह्योदविय अणुज्ञगमाजी । एहपुंहतो अधिकार साधुजवेहरीनों ज्ञलोजी । जवहरनों व्यापार च० ॥ ३ ॥ अंचकयंच

कना इहांजी । श्रोता अंतरहोय ॥ गुरुभगतें सुख
पांमस्येंजी । अवरभमें मतिखोय च० ॥ ४ ॥ अंगेंपू
जा प्रभावनाजी । पुस्तकलेखनदान ॥ गुरु उपगारसं
भार वोजी । आदर भक्तिनिदान च० ॥ ५ ॥ वक
ताएहमां कोनहीजी । जिम भाष्यो तुम्हेधर्म ॥ वाच
क जसकहें हर्षवुंजी । इमते विनयनोमर्म च० ॥ ६ ॥
इतिश्री बीजो सुअगडांग सूत्र स्वाध्याय ॥ २ ॥
ढाल कुंवारी रे गोरडीगामनी एदेशी त्रीजुंअंगहिवेंसां
भलो । जिहां एकादिकदशठाण मोहन० ॥ उद्देसा वे
अतिघणां । अर्थअनंत प्रमाण मो० ॥ १ ॥ वारीरेकुं
जिनवचननी जेहना गुणनों नहिपार मो० ॥ जेहकू
रनें वकुलंपटी । तेहनों पिणकरें उद्धार मो० ॥ २ ॥
वारीकू जिनवचननी । एआंकणी। गीतारथ मुखेंसां
भलैं । लहैं नयभाव उल्लास मो० ॥ तरणि किरण फ
रसेंकरी । हुवेंसव कमल विकास मो० ॥ ३ ॥ जेहगु
हनीदे शुभ देशना । तेमहज्यो सदगुरु पूर मो० ॥
तसअंग विलेपन कीजिये । चदन मृगमद कपूर मो०
वा० ॥ ४ ॥ जिमभमर कमल वनें सुखलहे । कोकि
लपामी सहकार मो० ॥ तिमश्रोता वक्तानें मिली ।
पामें सूत्रअर्थनोंपार । मो० वा० ॥ ५ ॥ सांडगली
साकरगली । वली अमृत गल्यूं कहवाय मो० माहरे
मनश्रुत आगलें । ते काइन आवेंदाय मो० वा० ६
श्रुतनागुणइम मनलावियेंवलिभावियें मनवैराग मो०
ठाणांगेंप्रेम जगावियें। उपजावियेंसुजस सोभाग मो०
वा० ॥ ७ ॥ इति त्रीजों ठाणांग स्वाध्याय ॥ ३ ॥
नींदडलीवैरणहुइरही एदेशी ॥ चोथु समवायांगनें
सांभलो ॥ मुकी आमलोरे मननोंधरि भावक ।

नएहमंझाविये गुरुज्ञक्तिते दिवस विशेषें रे । कीजेव
लीपूरैंथयें उत्सव वज्ञजनदेखेंरे सु० ॥ ६ ॥ ज्ञगति
साधुसाहमीतणी । वली रातिजगोसुविवेकोरे लखमी
लाहो अतिघणुं । वलि गौतमनामें अनेकोरे सु० ७
तीननाम वै येहना । पहिलुंतिहां पंचम अंगरें वि
वाहपन्नत्ती वीजलुं । त्रीजुंज्ञगवइ सूत्र सुरंगोरे सु०
८ ॥ येकसुयखंधएहनो वली । वलि चालीसशतकसु
हायारे । उद्देसातिहांअतिघणा ॥ गमज्ञंगअनंत कहा
यारे सु० ॥ ९ ॥ गौतमपूछै प्रज्ञुकहें । तेतोनामसुणें
सुखहोयेरे ॥ सहसछत्तीस तेनामनी । पूजाकीजे वि
धिजोयेरे सु० ॥ १० ॥ मंझपगिरि विवहारिया । धन
सोनीसंग्रामरे । जिण सोनैयेंपूजिया । श्रीगुरु गौतम
नामरे सु० ॥ ११ ॥ पुस्तक सोनैंअक्षरें । तेतोदीसे घ
णाज्ञंझाररे ॥ कल्याणे कल्याणनो होय अनुबंध अति
विस्ताररे ॥ १२ ॥ सफल मनोरथ जसज्ञवें । तेतो
पुन्यवंत मां पूरोरे ॥ ऊमाही अलगोरहे । तेतोमा
नस नहि गूढोरे सु० ॥ १३ ॥ सूत्रसांज्ञली ज्ञगवती ।
लीजेलपमीनोलाहोरे ज्ञावज्ञूपण मांधारिये । सद्दह
णाउछाहोरे सु० ॥ १४ ॥ उतकृष्टी आराधना ज्ञग
वइसुणतां शिवलहियें रे । श्रीजेज्ञव वाचकजस कहें
इमज्ञाष्युंते सद्दहियें रे सु० ॥ १५ ॥ इतिपंचमा अंग
ज्ञगवती सूत्र स्वाध्याय ॥ ५ ॥

प्यारोरकरती होलाल एदेशी ॥ ज्ञाताधर्म कथाव
छुंअग सांज्ञलिये मनधरिरंग । सुअखंधदोय इहांसा
रा सुणिसफल करो अवतारा होलाल ॥ १ ॥ प्यारी जि
नवरवाणी । लागेंमीठी साकरवाणी होलाल प्या० ॥
आंकणी ॥ पहिलामांकथा ज्ञगणीस । दसवग्गबीजेसु

जगीस ॥ जठ कोढिकथा इहांसारी । छठाञ्चंगनीजा
उंबलिहारी होलाल प्या० ॥ ३ ॥ उत्सवञ्चानंदधारो
बीजाध्यानें जनतारो रोमांचित ऊइ श्रुतधारो । सम
कित पर्याय वधारो प्या० ॥ ४ ॥ साहाय्यकरैं श्रुत
सुणतां । तेसुखपामें मनगमता जेविघनकरे ऊयञ्चाडो
तेतोमाणसनही पिणपाडो होलाल प्या० ॥ ५ ॥ वा
चकजसकहें सुणोलोगा श्रुतटाले विघननें सोगा । क
हिश्रुत नक्ति नत्यजिये गुरुचरण कमल नित नजिये
होलाल प्या० ॥ ६ ॥ इतिछठो अंग ज्ञाता धर्म्म क
था स्वाध्याय ॥ ६ ॥

ढाल चोपाईनीदेशी ॥ सातमुं अंग उपाशक दशा ।
ते सांनलवा मनउल्लसा । टोलीमिली मनोहरनाव ।
पाम्यो धर्मकथाप्रस्ताव ॥ १ ॥ श्रावक धर्मप्रनावक
जया । आणंदादिक जे दृढथया । तेहनायेहमांसरस
चरित्र । सांनल करिये जनमपवित्र ॥ २ ॥ श्रावकजि
म उपसर्गखमैं । तेडी मुनि नें वीरकहें । गृहीनें ख
मवुं इमचितवस्युं । श्रुतपाठीतुम्हकहवोकिस्युं ॥ ३ ॥
जिमजिम रीझेंचित श्रुतसुणी । तिमतिम श्रोताहोय
बहुगुणी ॥ रोमांचित ऊयकायासदा । जाईनाठा सक
ल श्चवदा ॥ ४ ॥ जिनवाणी जेहनें मनरुची । तेस
त्यवादी तेहज शुची । धर्म्मगोष्ठितेहसुं कीजिये । वा
चक जसकहें गुणरीझिये ॥ ५ ॥ इतिश्री उपासकद
शांग स्वाध्याय ॥ ७ ॥

साहिलडियानी देशी ॥ श्चाठमो श्रंग अंतगडदशा
साहेलडियां सांनलो धरियविवेक गुणवेलडियां ॥ बो
ल्याबोलतेपालिये सा० ॥ नथित्यजियेगुणटेक गुण० १
येक सुश्रखंध येहनो सा० । मोटाछैं श्चडवग्ग गु०

चरित्रसुणीवज्ञवीरना सा०। रोमांचितज्ञयअंग गु०२
धरमते सोवनघटसमो सा०। न्नंगेपिण नविजाय गु०
घाटघफामण जोगज्युं सा० । वस्तुनंमूल लहाय गु०
नितरराचै माचियेसा० । याचिये येकजमुक्तिगु० । पु
ण्य प्रकृति निकाचिये । धर्म रंग येह युक्ति गु० ४
श्रीनयबिजयविबुधतणो सा० वाचकजसकहेंसीस गु०
मुऊनें जिनवाणी तणो सा०। नेहज्ञज्यो निसदीस गु०
५ ॥ इति अंतगफदज्ञा अंगस्वाध्याय ॥ ८ ॥

ढाल रसियानी देज्ञी ॥ नवमुंअंग न्नवि सांन्नलोअणु
त्तरोववाईनाम सोन्नागी० ॥ सुणतांरे सकल प्रमादनें
परिहरो । जिमहोइ समपरिणाम वैरागी० ॥ १ ॥ न
वमुंअंग हिवें सांन्नलो एआंकणी । बूऊंरीऊंश्रोता सु
णी । तोसीऊं सविकाम सो० ॥ वाधैरंग श्रुत वक्ता
तणो । वज्ञप्रीति वज्ञधर्म व० न०॥ २ ॥ आंधाआ
गलै दर्पण दाखवो । वहिरा आगेरे गान सो० ॥ धर्म
रहस्य कथा जफआगलें । त्रिण्यें एह समान व० न०
३ ॥ जे जेहवो तेसमऊो तिस्यूं । निस्पृही कहस्येंसाच
सो० ॥ धर्म गोठि धर्मी वाजस्यें । बीजु मोरनुं नाच
व० न० ॥ ४ ॥ धर्मकरी अनुत्तर सुरज्ञता । तेहनों
इहां अवदात सो० ॥ वाचक जसकहें जेसांन्नलें। धन
तसन्नातनेंतात न० ५ इति अणुत्तरोववाई सिज्झाय ९

ढाल मोतीडानीं देज्ञी ॥ प्रज्ञनव्याकरणांग ते दज्ञमो
सांन्नलतां काईन ऊवें विपमों ॥ न्नावीया प्रवचननां
रंगी आवीया सुविहितनासंगी । आस्रव पंचनें संव
रपंच । दज्ञअध्ययन इहां सुप्रपंच ॥ १ ॥ आवीया सु
विहितनासंगी । एहजहित जाणीनेंधास्या । अतिज्ञाय
ऊवेंतातें ऊतास्या न्ना० जेहअपुठा लंबनसेवी। तेहनें

मञ्चर्थ विचारिये विज्ञं न्नेदेतेजाणिये । न्नुन्न ञ्चन्नुन्न प्रकार मूलुत्तर गुणदोपनें योगेंन्नुन्नसार ॥ १८ ॥ ञ्चा गमञ्चर्थ विचारिये । पासत्यादिक सुं मिल्यो ते थाय ञ्चधर्मी ॥ संवेगी साथें मिल्यो प्रायें थाय धर्मी ञ्चा० १९ ॥ पंचास्रवरत गारवी स्त्रीजनसूं रत्तो । जेमोहें मातोरहें ते ञ्चन्नुन्न संसत्तो ञ्चा० ॥ २० ॥ इमञ्चनव स्थित दोषते संगतिथीपावें नींवसंगथी ञ्चांवमां जि मकटुताञ्चावें ञ्चा० ॥ २१ ॥

ढाल ५ ॥ चालैसूत्रविरुद्धाचारै न्नापेंसूत्रविरुद्ध यथा छंद इच्छाये चालै तेनहीमनमांन्नुद्धरे २ प्राणीवीर व चन चितधारो एञ्चांकणी सूत्रपरंपरसुं जो नबिमिलै तेउत्सूत्रविचारो ञ्चंधपरंपर चाल्युंञ्चाव्युं तेपिणतिम निरधारोरे २३ प्राणीवीर वचन चितधारो निजम ति कल्पित जननेंन्नाषै गारबरसमांमाचें यथाछंद गृ हिका जकरंतो नवनवरूपें नाचेंरे प्राणी० २४ येकप्ररू पणतेहनीचरणै बीजीगमनैखोटी पड़िलेहणमुंहपीत्तीयें करस्युं किसी चरवली मोटीरे प्राणी० २५ मात्रकविधि पात्रकथीहोस्ये पड़लांकाजचलोटें लेपेंदोपघणो इत्या दिक चरणमृपामिलिलोटैरे प्राणी० २६ चोमासे जो मेहनवरसे तोहींम्ने स्योंदोप राजविरुद्ध गमनस्युं वा स्यो मुनिनें स्योंतनुपोपरे प्राणी० २७ वर्षाकालें व स्त्रवहरतां खपकरतांनहि हांणी नित्यवासमाकाइनदू पण साहमुं होयेनाणीरे प्राणी० २८ इमगति विपय प्ररूपण खोटी येसवीछैविस्तारे ञ्चातमञ्चरथीजोईले ज्यो न्नाप्यसहितव्यवहारैरे प्रा २९ ॥

ढाल ६ इमपांचे कुगुरु प्रकास्याञ्चावञ्चयकमांजिमन्ना स्यासमकितप्रकरण वङ्गन्नापीयोगविंदुप्रमुखइहांसाखी

गमाअनंता जेहनां रेला० वलि अनंतपर्य्यायरे सु०
त्रसपरित्तो छैइहां रेला० थावरअनंत कहायरे सु० ॥
५ ॥ निबद्धनिकाचित सासतारे ला० जिनपरिणति
ए न्नावरे सु० सुणतांआतम उल्लसै रे लाल प्रगटेसहज
स्वन्नावरे सु० व०॥ ६ ॥ सुगुणश्रावक बारू श्राविकारे
ला० अंगेंधरियउल्लासरे सु० विधिपूर्वकतुम्हेसांन्नलो
रे ला० गीतारथगुरुपासरे सु० ॥ ७ ॥ ए सिद्धांतमहि
मानिलोरे ऊतारैन्नवपाररे सु० । विनयचंदकहैं मांह
रोरे ला० एहिजअंग आधाररे सु०ब० ॥ ८ ॥ इति
आचारांगस्वाध्याय ॥ १ ॥

ढाल रसियानी ॥ बीजोरेअंग हिवें तुम्हेसांन्नलो-म
नोहर श्रीसुगडांग मोरासाजन त्रिणसेत्रेसठ पाखंडी
तणो मतखंडी धरिरंग मोरा० ॥ १ ॥ मीठीरे लागें
वाणी जिनतणी जागें जेहथीज्ञान मो० ए वाणीमन
न्नाणी माहरै मानुंसुधारे समान मो० मी० ॥ २ ॥ रायप
सेणी उपांगछै जेहनुं एतो सूत्रगंन्नीर मो० जाणैं रेअर
थ बहुश्रुत एहना क्षीरनीर रिधनूंरे तीर मो० ॥ ३
एहनारे सुयखंध दोयछै सही वलि अध्ययन तेवीस
मो० उद्देसासमुद्देसाजिहांन्नला सव्यायेरे तेत्रीस मो०
४ ॥ नयनिक्षेपप्रमाणे पूरिया पदछत्तीसहजार मो०
संख्याता अक्षर पद छे हनै कुण लहैं तेह नोंरे पार
मो० ॥ ५ ॥ गमाअनंता वलि पर्य्यायता न्नेदअनंत
जिहांमांहि मो० गुणअनंत त्रसपरित्त कह्या वलिथा
वरअनंतारे जांहि मो० ॥ ६ ॥ निबद्ध निकाचित जे
सासयकह्या जिणपन्नत्तारे न्नाव मो० न्नापी रे सुंदरए
ह परूपणा चरणकरणनीरे जाव मो० ॥ ७ ॥ करिये न्न
गत जुगतए सूत्रनी निहचै लहियेरे मुक्ति मो० विन

० लहिये एहथीभाव बिरोध काईनथी हो ला० बि०
भांगातीन स्वसमयादिकना जाणियेहो ला० या० लो
कअलोकनें लोकालोक बखाणिये हो ला० लो० ॥ २
एकथकीवै सतसमवाय प्ररूपणा हो ला० स० कोडा
कोडिप्रमाणक जीवनिरूपणाहो ला० जी० बारसत्रिह
गणिपिटक तणी संख्याकहीहो ला० त० सासताअर
थअनतछै एहनासही होला० छै० ॥ ३ ॥ सुयखंध अ
ध्ययन उद्देसादिकैं होला० उ० संख्यायें एक २ प्रत्येकै
गुणनिलेहोला० प्र० पद एकलाख चमालसहसतेउत्त
राहोला० स० पदनेंअग्रउदग्र संख्याताअक्षराहोला०
सं० ॥ ४ ॥ भाष्यचूरणनिर्युक्ति करीसोहैंसदाहोला०
क० सुणतांभेदगम्भीर तृपतिनहोवे कदाहो ला० तृ०
जेहनमावे अंगक अंतरगति हसीहोला० अं० जलबर
संतैंजोर कुणनथावे खुसी हो ला० कुं० ॥ ५ ॥ जाग्यो
धरमसनेह जिनंदसूंमाहरोहोला० जि० तजिया भ्रान्त
मिथ्यात सूत्रजान्यो खरोहोला० सू० जिम मालति ल
हिभृंग करीरैं नविरहैं होला० क० ईश्वरभ्रार सुरगंग
तजी परि नविवहैं होला० त० ॥ ६ ॥ ए प्रवचननिग्रं
थ तणोंजुगतैं वडोहोला० त० साकरसेलडि द्राख थ
की पिण मीठडोहोला० थ० स्युंकहिये वधुवात वि
नयचंद्रइमकहैं होला० वि० एहनां सुणनेंभाव श्रोता अ
तिगहगहैंहोला० श्रो० ॥ ७ ॥ इतिसमवायांगसिज्झाय ।
ढाल पंथीडानी ॥ पांचमोंअंग भगवती जाणिये रे
जिहां जिनवरनां बचन अथाहरे हिमवत पर्वतसेती
नीकल्यारे मानूं परतिख गंगप्रवाहरे पं० ॥ १ ॥ सू
रपन्नत्तीनामें परिगडोरे जेहनोंछै उद्दाम उवांगरे ।
सूत्रतणीरचनादरियाजिसीरे मांहिलाअरथतेसजलतरं

गरेपं० ॥ २ ॥ इहांतो सुयखंधएकअतिभलोरे एकसो
एकध्ययन उदाररे। दसहजार उद्देशाजेहनारे जिहांकी
ना प्रश्नछत्तीसहजाररे पं० ॥ ३ ॥ पदतोदोयलाप अ
स्थैभस्यारे । ऊपर सहसअठ्यासीजाणरे ॥ लोकालो
कस्वरूपनी वर्णनारे विवाहपन्नत्ती अधिक प्रमाणरे
पं० ॥ ४ ॥ करियेपूजा अनेंप्रभावनारे धरियें सदगु
रुऊपर रागरे सुणिये सूत्रभगवती रागसुंरे तो होय
भवसागरनो त्यागरे पं० ॥ ५ ॥ गोतमनामें नाणुंमु
कियैंरे सम्यक्ज्ञान उदयहोयजेमरे कीजेसाधुतथासा
हमीतणीरे भगतिजुगति मनआणीप्रेमरे पं० ॥ ६ ॥
इणविधसुं येहसूत्र आराधतारे इणभव सीझै वंछित
काजरे परभवविनयचंद्रकहै तेलहैरे मोहनमुगतिपुरी
नोराजरे पं० ॥ ७ ॥ इति भवती सिज्झाय ॥ ५ ॥

ढाल ॥ कितनालाषलागाराजाजीरैमालियेजी एदेशी
छठोअंगतेज्ञातासूत्रवखाणियेजी जेहनाछै अरथ अ
धिकउदंडहो म्हांरा सुणिज्यो धरिनेह सिद्धांतनीवात
डीजी श्रवणेसुणतां गाढोरस ऊपजैजी मधुरतातजित
जिम मधुखंडहो म्हां० ॥ १ ॥ जंबूदीप पन्नत्ती उपां
गछै जेहनोजी इणमांहि पूजानीविधिजोरहो म्हां ॥
अर्चकसुणि परमशांतिरस अनुभवेंजी चर्चिक सुणीक
रैसमसोरहो म्हां० ॥ २ नगरउद्यानचैत्य वनखंडसो
हांमणोजी समवसरणराजाना मातनैंतातहो म्हा० ॥
धरमाचारिजधर्मकथा तिहांदाखवीजी । इहलोकपर
लोक ऋद्धिविशेष सुहातहो म्हा० । । ३ ॥ भोगपरत्या
गप्रव्रज्यापर्यवाजी सूत्रपरिग्रह वारूतपउपधानहोम्हा०
संलेहण पचखाण पादपोपगमनता जी । स्वर्ग गमन
शुभ कुल उतपत्तहो म्हां० ॥ ४ ॥ बोधिलाभ दलित

ते अंतक्रिया कहीजी । धर्मकथा नां दोयछै श्रुतखंध
हो म्हां० पहिलानां उगणीस अध्ययन ते आजवैजी
बीजानां दशवर्गमहा अनुबंधहो म्हा० ॥ ५ ॥ ऊंठ
कोडि तिहां सबल कथानक आपियोजी । आख्याव
लि उगणीस उद्देशहो म्हा० संख्याता हजार आलाप
द एहनांजी । एहथकी जाये कुमति कलेसहो म्हां०
६ ॥ विनयकरै जेगुणनो बहुपरैजी तेहनें श्रुत सुण
तां बहुफल होयहो म्हां० तेरसिया मनवसिया वि
नय चंद्रनेंजी । सोमांहें मिलै जोयां एक के दोयहो
म्हां० ॥ ७ ॥ इतिश्री ज्ञाताधर्मकथा सिज्झाय ॥ ६ ॥
ढाल ॥ ७ ॥ वीछियानी देशी ॥ हिवेंसातमो अंगते
सांभलो । उपासकदशा नामै अंगरे ॥ श्रमणोपासक
नी वर्णना । जसुचंदपन्नत्ती उपांगरे ॥ १ ॥ मनला
गोमोरो सूत्रथी येतोभव वैराग तरंगरे रसराता ज्ञा
ता गुणलहै । परमारथ सुविहितसंगरे म० ॥ २ ॥ इणअं
गेसुयखंध येकछै । अध्ययन उद्देशा विचाररे ॥ दश
दशा संख्यायें दाखव्या । पद पिण संख्यात हजाररे ॥
म० ॥ ३ ॥ आनंदादिक श्रावकतणो । सुणतां अधि
कार रसालरे ॥ रसलागें जागेंमोहनी । श्रोताजननें
ततकालरे म० ॥ ४ ॥ श्रोता आगलतोवांचतां ।
गीतारथ पांमेरीझरे जेमुर्द्ध दग्ध समझैनही । तेह
सुं तोकरवोधीजरे म० ॥ ५ ॥ दश श्रावकतो इहां
आपिया । पिणसूत्र भण्यो नही कोयरे तेमाटै सुध
श्रावकभणी । इक अरथनी धारणाहोयरे म० ॥ ६ ॥
साचोहोय ते प्ररूपिये । नीसंकपणै सुजगीसरे कवि
विनयचद्र कहै स्युंथयो । जोकुमति करिस्यें रीसरे म०
७ ॥ इति उपासक दशा गीतं ॥ ७ ॥

ढाल ॥ ८ ॥ वीरवखाणी राणी चेलनाजी । एदेशी आठमोअंग अंतगडदशाजी सुणीकरो कान पवित्र अंतगडकेवली जेथयाजी तेहनारे इहां चरित्र आ० १ ॥ कर्म कठिन दल चूरताजी पूरता जगतनी आस जिनवरदेव इहांभासताजी शासता अरथ सुविलास आ० ॥ २ ॥ सकल निक्षेपनय भंगथीजी । अंगना भाव अभंग ॥ सहिज सुखरंगनी तलिपकाजी । कल्पिका जासुउवंग आ० ॥ ३ ॥ येकसुयखंध इण अंगनोजी वर्गछै आठ अभिराम । आठ उद्देशाछै जेहनाजी संख्यातासहस पदठाम आ० ॥ ४ ॥ आठमा अंगना पाठमैजी । येहवो अछैरे मिठास सरस अनुभव रस ऊपजैजी संपजै पुन्यनी रास आ० ॥ ५ ॥ विषयलंपट नरजे डवेंजी निरविषयी सुणथाय जिम महा विष विषधर तणोजी । नागमंत्रै सुण्याजाय ॥ आ० ॥ ६ ॥ अमृतवचन मुख वरसताजी । सरसती करोरे पसाय ॥ जिम विनयचंद्र इण सूत्रनाजी । तुरतलहै अभिप्राय आ० ॥ ७ ॥ इति अंतगड दशा सिज्झाय ॥ ८ ॥

ढाल विंदलीनी देशी ॥ नवमोअंग अणुत्तरोववाई एहनी रुचमुडनै आईहो ॥ श्रावक सूत्रसुणो सूत्रसुणो हितआणी । एतोवीतरागनी वांणीहो श्रा० ॥ १ ॥ जसुकल्पावतंसिका नामै । सोहै उपांग प्रकामैंहो श्रा० एतोआगमनें अनकूला । मानुं मेरुशिखरनी चूलाहो श्रा० ॥ २ ॥ एतोसूत्रनो नामसुणीजै । तिमतिम अंतरगति भीजैहो श्रा० प्रगटै नवलसनेहा । एहथी उलसै मोरा देहाहो श्रा० ॥ ३ ॥ अणुत्तर पदपाया । तेहना गुण इणसां गायाहोश्रा० नगरादिक भाव व

खाणयां । तेतोछठै अंगे आन्यांहो श्रा० ॥ ४ ॥ ॥ इ
हां एकसुयखंधवारू । त्रिणवर्ग वलीमनोहारूहो श्रा०
उद्देशा त्रीणसनूरा । संख्यात सहस पद पूराहो श्रा०
५ ॥ अमेसूत्र सुणावुं तेहनें। सांरी श्रद्धाजय जेहनेंहो
श्रा० श्रोतार्थी प्रीतलगावूं । निंदकनें मूंह नलावूंहो
श्रा० ॥ ६ ॥ जेसुणतांकरे बकोर । तेतोमाणसनही
पिणढोरहो श्रा० कवि विनयचंद्र कहैसाचो । श्रुत
अंगै सज्ञको राचोहो श्रा० ॥ ७ ॥ इति अणुत्तरोव
वाई सिज्झाय संपूर्णम् ॥ ९ ॥

आघाआम पधारो पूज एदेशी ॥ दशमो अंगसुरंग
कहावे । प्रश्ण व्याकरणनामैं॥ सूत्र कल्पतरु सेवे । ते
तो चिदानंदपदपामैं ॥ १ ॥ आवो गुणनाजाण । तु
मनें सूत्रसुणावुं । टेक । पुष्फकलीज्युं परिमलमहकै गु
रु परागनें रागें । तिमउपांग पुष्फिका एहनो । जोरजु
गतिकरि जागें आ० ॥ २ ॥ अंगुष्टादिक जिहां प्रका
स्या प्रश्णादिक अतिरूडा । तेगै अठोत्तर शत एतो
सूत्र मध्य मणिचूडा आ० ॥ ३ ॥ आश्रवद्वार पांच
इहां आन्यां। पांचसैं संवरद्वारा ॥ महामंत्र वाणीमां
लहिये । लबधिभेद सुखकारा आ० ॥ ४ ॥ सुयखंध
एकदशमैं अंगै । पणयालीस अज्झयणा ॥ पणयाली
स उद्देशावली पद । सहस संख्यातनी रयणा आ० ॥
५ जेनर सूत्रसुणैनहीकानें। केवल पोषै काया ॥ माया
मांहि रहें लपटाणा । तेनर इमहीज आया आ० ६
सूत्रमांहि तो मारग दोयछै । निहचे नय विवहारा
विनयचंद्र कहैं तेआदरिये तजिये मदनविकारा आ०
७ ॥ इति प्रश्ण व्याकरण सिज्झाय संपूर्णम् ॥ १० ॥

अथ ॥ ढाल कडखानी ॥ सुणोरे विपाक श्रुत अंग

इग्यारमो तजोविकथा वृथाअनेरी । ललित उवांग जसु प्रवर पुष्फ चूलिका । मूलिका पाप आतंककेरी सु० ॥ १ ॥ अनुभ्न किंपाकसम दुक्कत फल भोगवी नरकमां गरकथया जेहंप्राणी ॥ सुक्कतफलभोगवीस्व। र्गमां जेगया । तासवक्तव्यता सहुइहांआणी सु० ॥ २ ॥ दोयस्रुत खंधनें वीस अध्ययन वलि । वीसउद्दे आ इहां जिन प्रयुंजे ॥ सहससंख्यात पदकुंद मचकुंद जिम । बहुल परिमल भ्रमर चित्तगुंजे सु० ॥ ३ ॥ सरस चंपकलता सुरभि सहुनेंरुचैं । अन्य उपगारनी बुद्धिमाटै ॥ सूत्रउपगारतेहथी सहूजाणिये । जेहथी पुरुप सुख अचलखाटै सु० ॥ ४ ॥ बंधनें मोक्षनावेउं कारण अछै दुक्कतनें सुक्कत जोवो विचारी ॥ दुक्कतनेंप रिहरी सुक्कतनें आदरी । जिनवचन धारिये गुणसंभा री सु० ॥ ५ ॥ मकररे मकरनिंदा निगुण २ नारकी तणींगति कांइं वांधै ॥ पारकी प्रक्कति तजिसहजसंतो षभज । लाग स्रुत सांभली धरम धंधै सु० ॥ ६ ॥ सुखनें दुखविपाक फल दाखव्या । अंगइग्यारमैं वीत रागै ॥ चिरजयो वीर शासन जिहां सूत्रथी । कवि विनयचंद्र गुण ज्योतिजागैं सु० ॥ ७ ॥ इति विपाक स्रुत सिज्झाय संपूर्णम् ॥ ११ ॥

ढाल ११ मी ॥ अंगइग्यारै मैंथुण्या । सहेलीहो आ ज थयारंगरोलकिस० नंदीसूत्र मांहि एहनो । भाख्यो सर्व निचोलकि स० ॥ १ ॥ आजवधामणा पसरी अं ग इग्यारनी स० मुजमन मंझपवेलकि सींचूं तेहरसैंक री स० ॥ २ ॥ अनुभव रसनी रेलकि हेजधरीजे सां भलै स० कुणबूढा कुणबालकि तेतोफल लहैफूठरा स० ३ ॥ स्वादैअतिहि रसालकि हरख अपारधरी हिये

स० अहम्मदावाद मझारकि भासकरी एअंगनी स० वरत्या जयजय कारकि संवत सतरे पंचावने स० व रषाऋतु भभमासकि दशमीदिन सुदि पक्षमां स० ५ ॥ पूरणथइ मनआसकि श्रीजिनधर्म सूरिपाटवीस० श्रीजिनचंद्र सूरीसकि खरतरगच्छना राजिया स० ६ ॥ तसुराजै सुजगीसकि पाठक हरखनिधानजी स० ज्ञान तिलक सुपसायकि । विनयचद्र कहै मैंकरी स० अंग इग्यारेसिज्झायक स० ॥ इति११ अंगसिज्झाय ॥

भविजीवो आदिजिणेसर वीनवुं सतगुरु लागुंपाय भ० ॥ मनवचकाया वसकरो छोझो च्यारकषाय भवि जीवो करणीतो कीजोचितनिरमली ॥ १ ॥ भविजीवो मनुष्यजनम तुझदोहिलो सूत्र सुणिवासार भ० सतगुरु सरधा दोहिली उत्तमकुल अवतार ॥ २ भ० मोहमि थ्यातकीनींदमैं सूतो कालअनंत भ० जनम मरणजग पूरियो ज्ञानविना नहिअंत ॥ ३ ॥ भ० छकियो वहैं संसारमें ज्युंभझभुंजानींभाझभ० निग्रंथगुरु हेलादिया अवतूआंखउघाड़ ॥ ४ ॥ भ० नरकतणांदुख दोहिला सुणतांथरहरेपाय भ० पापकरम सैंठाकिया मारअनं तीखाय ॥ ५ ॥ भ० चंदसूरज जिहांनही दीसैंघोरअं धार भ० न्हासणनें सेरीनही जिहदेखैतिहांमार ॥ ६ ॥ भ० आंधोजीमण रातरो करतांझरतानाहि भ० भोभर विष्टातेहने चाखेंमुंहझामांहि ॥ ७ ॥ भ० परमाधामीदेव ता ज्यांरीपनरेजात भ० मारदेएकणजीवने करै अन थीघात ॥ ८ ॥ भ० अर्थअनर्थनेंकारणे जलढोल्यो अ ज्ञान भ० बाहिरसूतीबोलीकरी मैलोमांहिअज्ञान ९ भ० वैतरणीलोहीराधनी तिणरो तीखोनीर भ० ति णमेंझबोयोतेहनें छिनछिन हाथशरीर ॥ १० ॥ भ०

ठांठाजिमचरतासदा नहिजाणी तिथियार ज० पान
फूलतरुछेदतां नहीआणीदयालिगार ॥ ११ ॥ ज० वृ
क्षतणासुरसाणसा तिणरीबैठावेंछांह ज० पानपक्षैतर
वारसा टूकटूकहोयजाय ॥ १२ ॥ ज० धंधामें खूतार
है गुनाधरंज्यार ज० लोहतणेरथ जोतस्याधरतीधुखे
है अगार ॥ १३ ॥ परनीहोळीदहे चोस्या विषयकु
माल ज० धनखाधो कुटुंबियां सहे एकलड़ो मार १४
ज० हाथपांवछेदनकरे नाखेअंगमरोर ज० एकणनुलें
करीनिहांनहीकिणरोजोर ॥ १५ ॥ ज० रागरातामा
ताफिरे परनारी परसंग ज० अगनबरण लोहपूतली
चेंठेतिणरेअंग ॥ १६ ॥ ज० पापकरम अकुलाकिया
करकरमनरंजोस ज० श्रोलेपरमाधामी देवता किसोह
नारोदोष ॥ १७॥ ज० कुणजीतबेरकारणे सागरपलां
सहेमार त्रिणतुगत्यांछूटैनही अरजकरेयारोआर १८
क्रोधमानमायालोभमें छकियोरहेदिनरात ज० साधु
श्रावकदेखीबोलियो देताधर्मअंतराय ॥ १९ ॥ ज० जो
वदया धर्मजाणियो सेवियाकुगुरु कुदेव ज० निर्ग्रंथगु
रुसेव्यानही तिणरेकुलरीटेव ॥ २० ॥ ज० कपटदगो ध
ननेलियो चोरीचुगलीखाय ज० अनम्यनखिया जीवह
तिया नहिमारीकुकाय ॥ २१ ॥ ज० गयामुयांकुरेवणा
करेछेसारीरात ज० टकटकरीआंख्यांगडे तोहिनको
रात ॥ २२ ॥ ज० दक्षेपकेनरकमें तहांपिण कुरलेहाय
ज० वैसांनेमांतहिमरे ताराज्युंमिलजाय ॥ २३ ॥ ज०
[illegible] पेतोचतुरसुजाण ज० निरलोनी गुरु
[illegible] ॥ २४ ॥ ज० केहंजायें देव
[illegible] विलास ज० नाटकनार्धनवनवा
[illegible] ॥ २५ ॥ ज० मुहाउछावथ होयर

ह्या वाजित्रनाझणकार ज० देव्यांहाथजोडीखडी बो लैजयजयकार ॥ २६ ॥ ज० माथेमुकुटविराजतो कां नेंकुंडलहियेहार ज० गहिणागांठा नितनवा नवरंगव स्त्रसार ॥ २७ ॥ ज० साधुसगाधरमीमिलै हिलमिल वातकरंत ज० कहैपुन्याई आंपणी मिल्यासाधु महंत २८ ॥ ज० इमजांणीसेवो सुगुरुनें पाखंडमत निवार ज० शुधसमकितहिवडैधरो ज्युंपामो भवपार ॥ २९ ॥ ज० जेतादुखदीसै तिके पापतणैं परमाण ज० तेतासु खदीसैतिकें धर्मतणाफलजाण ॥ ३० ॥ ज० पांचवरत वैसाधुना श्रावकनाव्रतबार ज० ऐधर्मसेवो जिणकहै जुंखुलैसद्गतिद्वार ॥ ३१ ॥ ज० रागद्वेषमैलमूंकदेवोडो विपयकषाय ज० पंचेद्रीनेंवसकरो मुक्तिविराजोजा य ज०क० ॥ ३२ ॥ इति हितोपदेश सिज्झाय ॥

नींदडलीएवैरणहुयरही ॥ इणहूंतीहोविगडै धर्मवा तक। चोरफिरैचिहुंपाखती किमसोवेंहोदिननेंरातक १ वीरकहैसुणिगोयमा मतिकरज्योहो इकसमयप्रमादक जराआवें यौवनगयो तिनेंसूतांहो कहो कवण सवादक नीं० ॥ २ ॥ चवदपूर्वधरमुनिवरू नींदकरतांहो जाये नरकनिगोदक कालअनंतातिहांवसै किमहोवेंहोतिहां धर्मविनोदक नीं० ॥ ३ ॥ जोरावरघणुं जालमी जम रांणोहोवाल्हा सवलकरूरक करकइणेरा चिहुंदिसै जे जागेंहोतेकहिये सूरक नीं० ॥ ४ ॥ जागतडोठागेंनही क्तितरावेंहो नरसूतोनेठक सूतांरीपाडाजणै वाल्हाकर ज्योहो सापुरसांरीभेटक नीं० ॥ ५ ॥ वीरदृष्टांतवखां णियो पंखीनकरैहो भारंडप्रमादक तेहतणी परविचर ज्यो परिहरज्योहो तुम्हेउनमादक नीं० ॥ ६ ॥ वीरव यणइमसांभली परिहरज्योहोजगमें जसवादक नीं० ७

हमाया लंबकायाविन्नाहरा दोयपक्ष उंदरमरण गयवर आयुवक्रवाईवटा चटकाविजोगा रोगसोगा न्नोगजो गासांमठा ॥ ढाल ॥ विद्याधररे सुगुरूसम संन्नरारे ति ण धरियोरे धर्मविमान विन्नालरे। विपयारसरे मीठो अछै मक्षवालरे पक्षखावेरे बालजोबन वयकालरे ॥ ९ ॥ उल्लालो ॥ बालजोबन कालतरुणी चित्तहरणी निरख तो घरन्नारजूतो विषय खूतो मद विगूतो पोपतो। आनंदआणी जैनवाणी धर्मजाणी जागिये ॥ चरणप्रमो द सुसीस जंपें परमपद सुख मांगिये ॥ १० ॥ इति हितोपदेश मधुविंदु दृष्टांत स्वाध्याय ॥

ढाल वीछीयारी ॥ सुगुण बुढापो आवियो। न्नावें तूं जाणमजाणरे लाला बारोक्ष वासोवस्यो खाटपुराणे वाणरे लाला सु० ॥ १ ॥ समरणकरि नवकारनों सेवा सदगुरूसाररे लाला। मानवन्नव सफलोकरो जिम पामो न्नवपाररे लालासु० ॥ २ ॥ कोय नपूछै वातक्ष सुखदुखकेरी जाणरे ला० बोलायो बोलै नही एकोय नमानै काणरे ला०सु० ॥ ३ ॥ पटरस न्नोजन खावतो प्रऊगमतै सूररे लाला करतो कपूरेकुरला हिवें पेट नपक्षचै पूररे लाला सु० ॥ ४ ॥ हरखै सुत परणाइ यामैंखरची बक्षली आथरे लाला कांनफटी कांनेचढी तिकेथया विक्षाणै हाथरे लाला० सु० हाजर रहती का मिनी सुखदेती जीजीकाररे लाला। बोलाई बोलेंनही तेअहनिश फिरती लाररे लाला सु० ॥ ६ ॥ नयणे नारिनओलखै नगपरखंतो इमजांणरे ला० कामैंसादन सांन्नलें नितसुणतो वेदपुराणरे लाला सु० ॥ ७ ॥ हा थेक्षाली क्षांगक्ष अवधूजै अंगोपांगरे लाला। लक्षथक्ष तो पगल्यान्नरे क्षईकाया रंगविरंगरे लाला सु० ॥ ८ ॥

हाथेहाथी पालतो हिवेपाहिरी नसकैपोतरे लाला । च
वदै विद्मात्नणतो मुखे ञ्युव ञ्यटपटवोले वज्ञतरे लाला
सु० ॥ ९ ॥ ञ्अंगगल्यो सिरसञ्जफल्यो ञ्युव जंजरज्ञ्इ
इष्टरे लाला । सगासकोमन चिंतवे एफोसो करावे वेठरे
लाला सु० ॥ १० ॥ वेटाकहिता वापजी जिण कदेन
लोपीकाररे लाला । खूंणै पम्योरहैं फोकरो ञ्युव इम
जपें परिवाररे लाला सु० ॥ ११ ॥ वूढोञ्जवोरे वाल
हा ञ्अवलागी सवली खोफरे लाला । पहिलीलोहमरो
फतो हिवेतिणहू नसके तोफरे लाला सु० ॥ १२ ॥ धं
धोकरि धन मेलियो तै पोष्यो रुञ्जपरिवाररे लाला ।
स्वारथलगै सञ्जकोसगा ञ्अवकोय नपूछें साररे लाला
सु० ॥ १३ ॥ जोवनथो तवमांनथो गाहकथो सवको
यरे लाला । जोवन रतन गमायकै ञ्अवरह्यो कलंदर
होयरे लाला सु० ॥ १४ ॥ ऊजफ खेफा फिरवसे वलै
निरधनियां धनहोयरे लाला । गयोनजोवन वाञ्जफै
जेमूवो नजीवेकोयरे लाला सु० ॥ १५ ॥ जोवन समें
समफयोनहीं विलसीनहि निजञ्आथरे लाला । घणयघ
णुं वैठोघसैं तूं माखीनीपर हाथरे लाला सु० ॥ १६ ॥
दानशील तपभावना एछै जगमैं तंतसाररे लाला ञ्आ
राहो भावेंकरी जिमपामैं भवपाररे लाला । पांचेइंद्री
परवफी ज्यांलग करज्यो धरम ध्यानरे ला० दयाहंस
मुनिरायनो इमकहैं कविगण ज्ञानरेलाला सु० ॥ १८
॥ इति वूढापणरी स्वाध्याय ॥

॥र्दय॥ चेतनज्ञान ञ्अजुञ्आलिये । टालिये मोहसंता
परे चित्तफमफोलतो वालिये ॥ पालियें सहजगुण ञ्आ
परे चे० ॥ १ ॥ उपसम ञ्अमृतरस पीजिये कीजिये
साधु गुणगानरे ञ्अधम वयणें नविखीजिये । दीजिये

सजन वक्षमानरे चे० ॥ २ ॥ क्रोध अनुबंध नविरा
खिये ॥ ज्ञाषिये वयण मुख साचरे । समकित रतन
रुचिजोमिये छोमिये कुमतिमति काचरे चे० ॥ ३ ॥
शुद्ध परिणामनें कारणे । च्यारनां शरणधरे चित्तरे
प्रथम तिहांशरण अरिहंतनुं । जेहजगदीस जगमित्तरे
चे० ॥ ४ ॥ जेसमोसरणमां राजता । ज्ञजता ज्ञविक
सदेहरे ॥ धर्मनां वचन वरसें सदा । पुष्करावर्त्त
जिममेहरे चे० ॥ ५ ॥ सरणबीजूं ज्ञजेसिद्धनुं । जेकरे
कर्मचक्रचूररे ॥ ज्ञोगवेंराज शिव नगरनुं । ज्ञानआनंद
ज्ञरपूररे चे० ॥ ६ ॥ साधुनुं सरण त्रीजूंधरे जेहसाधें
शिवपंथरे । मूलउत्तरगुणें जेवरा ज्ञवतराज्ञाव निग्रंथरे
चे० ॥ ७ ॥ शरण चोथुंकरें धर्मनुं । जेहमां वरदया
ज्ञावरे ॥ जेहसुख हेतु जिनवर कह्यो । पाप जलतार
वानावरे चे० ॥ ८ ॥ च्यार शरणए पमिवजी । वलि
ज्ञजें ज्ञावना शुद्धरे ॥ दुरितसवि आपणा नंदिये ।
जिमन्नवें सवरवृद्धरे चे० ॥ ९ ॥ इहज्ञवें परज्ञवें आ
चस्या । पापअधिकरण मिथ्यातरे जेजिनासातनादि
क घणांनिंदिये जेहगुण घातरे चे० ॥ १० ॥ गुरुतणा
वचनते अवगुणी गुंथियां आप मत जालरे ॥ बहु
परें लोकनें ज्ञोलव्या । निंदिये तेहजजालरे चे० ११ ॥
जेहहिंसाकरी आकरी जेहबोल्या मृपावादरे । जेहपर
धनहरी हरपिया कीधलो कामउनमादरे चे० ॥ १२ ॥
जेहधनधान मूर्छाधरी सेविया च्यारकपायरे । रागने
द्वेषनें वसहुआ जेकिया कलह उपायरे चे० ॥ १३ ॥
कूठ जेआल परनंदिया जेकिया पिसुनता पापरे रति
अरति निंदमाया मृपा । वलियमिथ्यात्व ननापरे ।
चे० ॥ १४ ॥ पापजे एहवासेविया निंदियेंतह त्रिहु

कालरे । सुकृत अनुमोदनाकीजिये जिमहोये कर्मवि
सरालरे चे० ॥ १५ ॥ विश्व उपकार जेजिनकरें । सा
रजिननाम संजोगरे । तेह गुणतास अनुमोदिये पुण्य
अनुवंध शुभयोगरे चे० ॥ १६ ॥ सिद्धनी सिद्धता क
र्मना । क्षयथकांऊपना जेहरे ॥ जेहआचार आचार्य्य
नो । चरणवनसींचवा मेहरे चे० ॥ १४ ॥ जेहउवझा
यनो गुणभलो । सूत्रसिज्झाय परिणामरे ॥ साधुनीजे
हवली साधुता । मूल उत्तरगुण धामरे चे० ॥ १८ ॥
जेहविरतदेश श्रावकतणी । जेह समकित सदाचाररे
समकित दृष्टि सुरनरतणो । तेह अनुमोदियेसाररे चे०
१९ ॥ अन्यमांपिण दयादिकगुणा । जेह जिनवचन
अनुसाररे ॥ सरवते चित्त अनुमोदिये । समकितवीज
निरधाररे चे० ॥ २० ॥ पाप नवितीव्र भावेंकरे । जे
हनें नवि भवरागरे उचितथिति जेहसेवेंसदा । तेहअनु
मोदवा लागरे चे० ॥ २१ ॥ थोडलो पिण गुणपरत
णो । सांभली हरखमन आणरे ॥ दोष लवपिण निज
देखतां । निजगुण निज आतमा जाणरे चे० ॥ २२ ॥
उचितव्यवहार अवलंवनें इमकरी सुथिरपरिणामरे ॥
भाविये शुद्ध नयभावना पावनाश यतणुं ठामरे चे० ॥
२३ ॥ देहमन वचन पुदगलथकी । कर्मथी भिन्नतुझ
रूपरे ॥ अखैं अकलंकछै जीवनुं । ज्ञानआनंद सरूपरे
चे० ॥ २४ ॥ कर्मथी कल्पना ऊपजें । पवनथी जिम
जलधिवेलरे ॥ रूपप्रकटैं सहज आपणुं देखतां दृष्टि
थिरमेलरे चे० ॥ २५ ॥ धारता धरमनी धारणा । मा
रतामोह वडचोररे ॥ ज्ञानरुचिवेल विस्तारता । वार
ता करमनुं जोररे चे० ॥ २६ रागविपदोष ऊतारता
जारता द्वेपरस शेपरे । पूर्वमुनि वचन संभारता ।

सारना करमनिशशेपरे चे० ॥ २७ ॥ देखिये मार्ग शि
वनगरनो । जेउदासीन परिणामरे तेह ऋणछोफतांचा
लिये । पांमिये जिमपरधामरे चे० ॥ २८ ॥ श्रीनय
विजय गुरु सीसनी । सीखफी अमृत वेलर ॥ एहजे
चतुरनर आदरें तेलहें सुजस रंगरेलरे चे० ॥ २९ ॥

॥ इतिश्री हित शिष्या सिज्झाय संपूर्णम् ॥

॥ अथ प्रस्तावीक उपदेश आदि सिज्झाय ॥

जोएजतनकरि जीवफा । आयउजाणुं जायरे ॥ लहेला
होलखमी तणों । पचेंतो कांइ नवि थायरे जो० ॥ १
दुलहो नवमाणस तणो । दुलहो देह नीरोगोरे दुलहो
दया धरम वासना । दुलहो सुगुरु संजोगोरे जो० ॥
२ ॥ दिनऊगें दिनआथमें । नवलें कोईदिन पाछोरे
अवसर काजनकीधलुं । ते मनमांहिपछतासोरे जो० ३
लोभलगें लखवंचिया ॥ तेपरधन हरिलीधारे । केफैन
आवे कोइनें केफैकरम रह्या कीधारे जो० ॥ ४ ॥ मा
ता उदर उंधोरहें कोफिगमें दुख दीठारे । जोनिज
नम दुख सवहिवें तेतुफलागेछे मीठारे जो० ॥ ५ ॥
हैहै नवआलेंगयो । एकोअरथ नसाध्योरे ॥ सहगुरुसी
ख सुणीघणी तोपिण सवेंग'नवाध्योरे जो० ॥ ६ ॥
मानमनें कोइमतकरो जमजीत्यो नविकांणेरे । सुकृत
काजन कीधलुं वैभव हास्योवें तेणेरे जो० ॥ ७ ॥ जप
जगदीसना नांमनें । कांइ निचिंतो तुं सोवें रे ॥ का
जरे अवसरलही । सवदिन सरिखानहोवें रे जो० ॥
८ ॥ जगजातो जाणोकरी । तिम एकदिन तुफजावो
रे ॥ करकरवो जेतुफहिवें । पछेहोवें पसतावोरे जो०
९ ॥ तिथिपरवें तप नविकस्यो । केवल काया पोषी
रे ॥ परभव जातांजीवनें । संवलविण किमहोसी रे ॥

जो० ॥ १० ॥ सुणप्राणी प्रेमेंकही । लबधिलही जि
नवाणीरे ॥ संबलसाथे संग्रहो । कहें जिनकेवलनाणी
रे जो० ॥ ११ ॥ इति हितोपदेश सिज्झायसंपूर्णम्

जोबनियांनी मोजांफोजां । जायनगारादेती रे ॥ घ
डीरवड़ियालांबाजें । तोहिनजागेंतेथीरे जो० ॥ १ ॥
जराराक्षसीजोरकरेछें । फेलावे फजेतीरे ॥ छावीअवधें
जुरांकेनाहि । लखपतिनें लेतीरे जो० ॥ २ ॥ मालेबैठो
मोजकरेछै । खातेजोबेंखेतीरे ॥ जमरो जमरोतांणीले
सें । गोफणगोलासेतीरे जो० ॥ ३ ॥ जिनराजानेंसर
णेजानु । जोरालोकोजेथीरे ॥ दुनियांमांदूजोनहिदीसें
आखरनरसोतेथीरे जो० ॥ ४ ॥ दंतपक्वानें झोसोथयो
काजसर्स्युं नहीकेहथीरे ॥ उदयरतकहें आपे समझो ।
कहियेवानांकेतीरे जो० ॥ ५ ॥ इतिप्रभातनीसिज्झाय

वीरकहेंगौतमसुणो । पांचमांआरानांभावरे ॥ दुखि
याप्राणीअतिघणां । सांभलगौतमसुभनावरे वीर० १
नगरहोस्येंतेगामडा । गामहोस्यें समसांनरे ॥ विणुगो
वालेधणचरे । ज्ञाननहीं निरवाणरे वी० ॥ २ ॥ मुक
केडेंकुमतीघणा । होस्येतेनिरधाररे ॥ जिनमतनीरुचि
नविगमें । थापस्यें निजमतिसाररे वी० ॥ ३ ॥ कुम
तीकाकदाग्रही । थापस्यें आपणांबोलरे ॥ सालमा
रगमूकस्यें । करस्यें निजमुख मोलरे वी० ॥ ४ ॥ पासं
डीघणाजागस्यें । भांजस्यें धरमनापंथरे ॥ आगमग्रंथ
नेंडालस्यें । करस्येंनवाथलिग्रंथरे वी० ॥ ५ ॥ चोरच
रकचकूलागस्यें । बोलीनपालस्येंबोलरे ॥ साधुजनसीदा
वस्यें । दुरजन बहुला मूलरे वी० ॥ ६ ॥ राजापरजानें
पीडस्यें । हिंडस्येंनिरधनलोकरे ॥ मांग्यानवरसेमेहला
मिथ्या होस्यें बहुथोकरे वी० ॥ ७ ॥ संयमउगणीसें

चउंदोतरे । होस्येंकलंकीरायरे ॥ मातब्राम्हणीजाणियें बापचंडालकहवायरे वी० ॥ ८ ॥ ब्यासीवरसनोआ उखा । पाडलिपुरमां होस्यें रे ॥ तससुतदत्तनामेंभलो । श्रावक कुलसुभपोपैं रे वी० ॥ ९ ॥ कौतकीदाम चला वस्यें । चरमतणातेजायरे ॥ चोथलेस्येंभिक्षातणी । म हाअकराकरहोयरे वी० ॥ १० ॥ इंद्रअवध करिजोव स्यें । देखसीएहसरूपरे ॥ द्विजरूपें आवीकरी । हण स्येकलंकी भूपरे वी० ॥ ११ ॥ दत्तनेंराजथापीकरी । इंद्रसुरलोकेंजायरे ॥ दत्तधरम पालेंसदा । भेटसेंशत्रुंजे गिरिरायरे वी० ॥ १२ ॥ पृथवीजिनमंडितकरी । पां म्योंसुखअपाररे ॥ देवलोकेंसुखभोगवें । नामेंजयजय काररे वी० ॥ १३ ॥ पंचमाआरानेंछेडलें । चतुर्विध संघहोस्येरे छठोआरोवेंसतां । जिनधर्मपहिली जास्येरे वी० ॥ १४ ॥ बीजेअगनीजावस्ये । त्रीजेरायनकोयरे चोथेप्रहरलोपना छठो आरोते होयरे वी० ॥ १५ ॥ दोहा ॥ छठेंआरेनांमानवी । बिलवासी सवहोय ॥ वी स वरसनो आउखो । पटवर्षे गर्भजोय ॥ १६ ॥ वरस सहसचोरासीपणे । भोगवसेभवकर्म ॥ तीर्थं करहोस्ये भलो । श्रेणिकजीव सुधर्म ॥ १७ ॥ तसगणधर अति सुंदरू । कुमारपालभूपाल ॥ आगमवाणी जोयनें । र चियाचरणरसाल ॥ १८ ॥ पंचमा आरानां भावए । आगमेंभाप्यावीर ॥ ग्रंथेवोलविचारकह्या । सांभलोते भविधीर ॥ १९ ॥ भणतांसमकितसपजें । सुणतांमग लमाल ॥ जिनहर्षकहीजोइये । भाप्यावेंगरसाल २० इति पांचमां आंरानी सिज्झाय ॥

आदरजीवक्षमागुणआदर । मकरोरागनेंद्वेपजी ॥ स मताइंशिवसुखपांमीजे । क्रोधेंकुगति विशेपजी आ०

चउदंदोतरे । होस्येंकलंकीरायरे ॥ मातब्राम्हणीजाणियें बापचंडालकहवायरे वी० ॥ ८ ॥ ब्यासीवरसनोआउखा । पाडलिपुरमां होस्यें रे ॥ तससुतदत्तनामेंनलो । श्रावक कुलसुनपोषें रे वी० ॥ ९ ॥ कौतकीदाम चलावस्यें । चरमतणातेजायरे ॥ चोथलेस्येंभिक्षातणी । महाअकराकरहोयरे वी० ॥ १० ॥ इंद्रअवध करिजोवस्यें । देखसीएहसरूपरे ॥ द्विजरूपें आवीकरी । हणस्येकलंकी नूपरे वी० ॥ ११ ॥ दत्तनेंराजथापीकरी । इंद्रसुरलोकेंजायरे ॥ दत्तधरम पालेंसदा । भेटसेशेत्रुंजे गिरिरायरे वी० ॥ १२ ॥ पृथवीजिनमंडितकरी । पांम्योंसुखअपाररे ॥ देवलोकेसुखभोगवें । नामेंजयजयकाररे वी० ॥ १३ ॥ पंचमाआरानेंछेडलें । चतुर्विध सघहोस्येरे छठोआरोवेंसतां । जिनधर्मपहिली जास्येरे वी० ॥ १४ ॥ बीजेअगनीजावस्ये । त्रीजेरायनकोयरे चोथेग्रहस्थलोपना छठो आरोते होयरे वी० ॥ १५ ॥ दोहा ॥ छठेंआरेनांमानवी । बिलवासी सवहोय ॥ वीस वरसनो आउखो । षटवर्षे गर्भजोय ॥ १६ ॥ वरस सहसचोरासीपणे । भोगवसेभवकर्म ॥ तीर्थ करहोस्ये भलो । श्रेणिकजीव सुधर्म ॥ १७ ॥ तसगणधर अति सुंदरू । कुमारपालनूपाल ॥ आगमवाणी जोयनें । रचियाचरणरसाल ॥ १८ ॥ पंचमा आरानां भावए । आगमेंभाष्यावीर ॥ ग्रंथेबोलविचारकह्या । सांभलोते भविधीर ॥ १९ ॥ भणतांसमकितसपजे । सुणतांमंगलमाल ॥ जिनहर्षकहीजोइये । भाष्यावेंणरसाल २०

इति पांचमां आरानी सिज्झाय ॥

आदरजीवक्षमागुणआदर । मकरोरागनेंद्वेषजी ॥ समताइंशिवसुखपांमीजे । क्रोधेंकुगति विशेषजी आ०

१ ॥ समतासंयमसारसुणीजे । कल्पसूत्रनी साखजी ॥ क्रोधेंपूरवकोडिचारित्रबाले । जगवंत इणपरिजाखजी आ० ॥ २ ॥ कुंण२जीवतस्या उपशमथी । सांजलते दृष्टांतजी ॥ कुंण२जीवजम्याजवमांहें । क्रोध तणेविरतं तजी आ० ॥ ३ ॥ सोमल सुसरेसीसप्रजाल्युं । बांधी माटीपालजी ॥ गयसुकुमा लपिमामनधरतो । मुगति गयोततकालजी आ० ॥ ४ ॥ कूलबालुज साधुकहातो कीधोक्रोधअपारजी ॥ कोणिकनी गणिकावशपडियो रडवडियोसंसारजी आ० ॥ ५ ॥ स्वर्णकारकरी अति वेदन । वाधसुंवींटयोसीसजी ॥ मेतारजऋषिमुगतेपहुं तो । उपशमएहजगीसजी आ० ॥ ६ ॥ करकूडगवेसा धुकहाता । रह्याकुणालाखालजी ॥ क्रोधकरी तेकुग तेपहुंता । जनमगमाड्योआलजी आ० ॥ ७ ॥ कर मखपावीमुगतेपहुंता । खंदगसूरीनासीसजी ॥ पाल कपापीघाणीपील्या । नाणीमनमांरीसजी आ० ॥ ८ ॥ अचंकारी नारअचुंकी । तोड्योप्रियसें नेहजी ॥ वहूर कूलसह्या दुखबहुला । क्रोधतणांफलएहजी आ० ९ वाघणसुतशरीरवलूस्यो । ततखिणछोड्याप्रांणजी ॥ सा धुसुकोशलशिवसुखपांम्यो । एहक्षमागुणजाणजी आ० १० ॥ सातमीनरक गयोतेब्रम्हदत्त । काढीब्राम्हणआं खजी ॥ क्रोधतणांफल कडुआजाणी । रागद्वेषदियें नांखजी आ० ॥ ११ ॥ खंदग ऋषिनीखालउतारी । सह्योपरीसहजेणजी ॥ गर्भवासनादुखथीछूटो । सबल क्षमागुणतेणजी आ० ॥ १२ ॥ क्रोधकरीखंदगआचा रिजहुउअगनिकुमारजी ॥ दंडकिनृपनो देशप्रजाल्यो जमस्येजवहमडारजी आ० ॥ १३ ॥ चंद्ररुद्रआचार जचलतां ॥ मस्तक दियाप्रहारजी । षिमाकरंतांकेवल

उपसर्गसह्या अनेकजी आ० ॥ २६ ॥ पडूरमांहेऊप
जतोहास्यो । क्रोधेकेवलनांणजी ॥ देखो श्रीदमसार
मुनीसर सूत्रगुण्यो उठाणजी आ० ॥ २७ ॥ चंद्रावतं
सककाउसगरह्यो । क्षमातणो भंडारजी ॥ दासी तेलभ
स्योनिसदीठो । सुरपदवी लहीसारजी आ० ॥ २८ ॥
सींहगुफावासी ऋषिकीधो । थूलभद्रऊपरिकोपजी ॥
वेश्यावचन गयो नेपालें । कीधोसंयमलोपजी आ० ॥
२९ ॥ एमअनेक तस्यात्रिभुवनमें । खिमागुणेंभव्यजी
वजी ॥ क्रोधकरीनें कुगतेपहुंता । पाडंता मुखरीव
जी आ० ॥ ३० ॥ विषहालाहल कहियें विरुत्र । ते
मारेंएकवारजी ॥ पिणकषाय अनंतीवेला । आपेंमर
णअपारजी आ० ॥ ३१ ॥ क्रोधकरंतां तपजपकीधो ।
नपडेंकाई ठामजी ॥ आपतपें परनें संतापें । क्रोधसुं
केहोकांमजी आ० ॥ ३२ ॥ क्षमाकरंतां खरचनलागें
भागेंकोडि कलेसजी ॥ अरिहंतदेव आराधक थापें ।
व्यापेंसुजस प्रदेसजी आ० ॥ ३३ ॥ नगरमाहेंनागोर
नगीनों । जिहांजिनवर प्रासादजी ॥ श्रावकलोकव
सेंजिहांसुखिया । धरमतणे परसाद जी आ० ॥ ३४
क्षमाछतिसी खांते कीधी । आतमपर उपगारजी ॥
श्रावकपिण सांभलतां समझ्या । उपशमधस्यो अपा
रजी आ० ॥ ३५ ॥ युगप्रधान जिमचंदसूरीसर । स
कलचंद तसुसीसजी ॥ समयसुंदरतस सीसहमपभणें ।
चतुर्विध संघजगीसजी आ० ॥ ३६ ॥ इति क्षमाछती
सीस्वाध्याय संपूर्णम् ॥

बापडलीरे जीभडली तुंकानवि बोलेंमीठुं ॥ विरुवा
वचनतणां फलविरुवा । तेस्युंतेनविदीठुंरे बा० ॥ १ ॥
अन्नउदक अणगमतो तुझनें । जोनविरुचे अनीठो ॥

अणबोलाव्यो तुंस्यांमांटें । बोलेंकुवचनधीठो रे बा॰
२ ॥ अगनीदाधो तेपिणपाले । कुवचन दुरगतिघाले
अगनिथकी अधिकुं तेकुवचन । तेतोखिण २ साले रे
बा॰ ॥ ३ ॥ तेनर मांनमहत नविपामें । जेनरहोइमु
खरोगी ॥ तेहनेतो कोइनविबोलावें । तेतोपरतिखसो
गीरे बा॰ ॥ ४ ॥ क्रोधमस्योनें कडुवुंबोलें । अभि
मानेंअणगमतो ॥ आपतणो अवगुणनविदेखे । तेकि
मजासीमुगतेरे बा॰ ॥ ५ ॥ जनम २ नीप्रीतिविणासे
एकणकडुइंबोले । मीठावचनथकी विणगरथे लेवोस
घजगमोले रे बा॰ ॥ ६ ॥ आगमनें अनुसारें हितम
ति जेनर रूडुंभाषें । प्रगटथई परमेश्वर जेहनी लज्जा
जगमांहिराखे रे बा॰ ॥ ७ ॥ सुवचनकुवचनना फल
जाणी । गुणअवगुण मनआणी ॥ वाणीबोलो अमि
असमाणी । लब्धिकहे सुणप्राणी रे बा॰ ॥ ८ ॥ इति
जीभडली स्वाध्याय ॥

वर्द्धमान जिनवीनवुं साहिबसाहस धीरोजी ॥ तुम्ह
दरसण विनभ्रंमम्यो । चिहुंगतिमां वडवीरोजी ॥ १ ॥
प्रभुनरकतणां दुखदोहिला । मेंसह्याकाल अनंतोजी ॥
सोरकियां नविकोसुणें । एकविना भगवंतोजी प्र॰ ॥
२ ॥ पापकरीनें प्राणियो । पोंहतोनरक मझारोजी ॥
कठिन कुम्भापासांभली । नयण श्रवणदुखकारोजी प्र॰
३ ॥ शीतलयोनें ऊपजे रहवेंवधते ठामोजी । जानुप्र
माण रुधिरनां कीच कह्या वहुतांमोजी प्र॰ ॥ ४ ॥
तवमनमांहें चिंतवें जाइये किणदेशे न्हासोजी । पर
वसपडियो प्राणियो करतो कोडि विपासोजी प्र॰ ॥
५ ॥ चंद नत्यां सूरज नत्यां घोरघटा अंधकारोजी ।
थांनक अतिअसुहामणां फरसजिस्यो खुरधारोजी प्र॰

वेदन सहतां काल थयो जी हिवें एह सही न जाय च० ॥ ६ ॥ जिहां जाइं तिहां ऊठें मारवा रे कोइन पूछेंसार दुखन्नरि रोवें दीनता करें रे निपट ते निरश्रा धार च० ॥ ७ ॥

ढाल ३ । रेजीवधरम न कीधो रे । परमाधामी सुर कहें ॥ सान्नलतुंन्नाई केहादोस श्रमारडा । निजदेखक माई प० ॥ १ ॥ पापकरम कीधाघणां । बह्नजीववि णास्या ॥ पीफनजाणी परतणी । कूफामुख न्नाष्या ॥ प० ॥ २ ॥ चोरीलीधा धनपारका सेवीपरनार ॥ श्रा रंन्नकाम कियाघणा परिग्रहनहीपार प० ॥ ३ ॥ निस न्नोजनकीधाघणा । बह्नजीव संहार ॥ श्रन्नख्य श्रथा णांश्राचस्या । पातिकनहीपार प० ॥ ४ ॥ मातपिता गुरुश्रोलव्या । कीधाक्रोध श्रपार ॥ मानमाया लोन्न मनधस्या । मतिहीणगमार प० ॥ ५ ॥

ढाल ४ । एमकहीसुर वेदनाए । चलावेंउदी रे तेह तो ॥ सिलाकंटाला वज्रतणाए तिहांपछाफें साहतो ॥ १ ॥ तिरस वसेंतातोतरूए । मुखमां घालेतांमतो ॥ श्रगनिवरण लोह पूतलीए । श्रालिंगण देजामतो ॥ २ सयलबदन कीफोवहेंए । जीन्नकरें न्नतखंफतो ॥ एफ लनिसि न्नोजनतणांए । जाणीपालश्रदंन्नतो ॥ ३ ॥ श्रति ऊनोश्रति श्राकरोए । श्राणेतातोनीरतो ॥ तेघालेतस श्राखिमेंए । कानेंन्नरें कथीरतो ॥ ४ ॥ काला श्रधिक विहांमणाए । वलिनिरधारा प्राणतो ॥ ५ ॥

ढाल ५ । इणिपरेंबह्न वेदनसही चितचेतोरे ॥ वस तोनरक मफार ॥ ज्ञानीविण जाणेनको । कहतांनावे पार चि० । १ । दसदृष्टांतें दोहिलो । लीधो नरन्नव सार ॥ पाम्योश्राज महारज्यो । करज्यो एह विचार

चि० ॥ २ ॥ सूधोसंयम आदरो। टालोविषय विका
र ॥ पांचेइंद्री वसिकरो । जिमहोय छूटकवार चि०
३ ॥ निद्राविकथा परिहरो । आराधो जिनधर्म ॥ स
मकित रतनहियेधरो । भांजेंमिथ्याभर्म चि० ॥ ४ ॥
वीरजिणंद पसाउले । अहिपुर नगरमझार ॥ तवन
रच्योरलियामणो । परमकृपाल उदार चि० ॥ ५ ॥
इति चउगति वेलसिज्झाय ॥

जिनसासनरे सूधीसद्दहणाधरू सुणगुरुमुखरे नवेतत्व
सुधाकरू । मिथ्यामतिरे कपटकदाग्रह परिहरू । शील
पालैरे तेनरसमकित मनखरे १ ॥ मनखरेसमकितसुद्ध
पाले टालेदोष दयापरो । धुरिपंच अणुव्रत त्रिण गुण
व्रत च्यारसिक्षा व्रतधरो । इमदेश विरती क्रियानिर
ती सुणोभविअणनिरमली । दाखवीनिजगुण परहकेरा
दोष ममकाढोवली ॥ २ ॥ ममकाढोरे लोभें नरकुडुं
करो । जाणीसावद्यरे अभक्ष बावीसे परिहरो वड
पीपलरे पीपरि निंबकचुंबरो ॥ उंबरफलरे रखेजोउ
भक्षणकरो ॥ ३ ॥ रखेभक्षण करोमांखण मद्यमधुआ
मिषतणुं । विषहिमकरहा छांझिपरहा दोषमूल माटी
घणुं । परिहरो सज्जनरयणि भोजन प्रथम दुरगतिबा
रणुं ॥ ममकरोव्यालू अतिअसूरू रविउदय विनपार
णुं ॥ ४ ॥ अथाणूरे अनंतकाय सविनेमिये काचो
गोरसरे मांहिकठुल नविजीमिये ॥ वायागणरे तुच्छ
फलसविछंझिये आपण पूरे व्रतलेई नाविखंझिये ॥ ५ ॥
खंझियेनवि सविनेमलेई वेइफल व्रतपंगनुं ॥ अज्ञात
फल वज्जबीजभोजन चलितरस झयजेहनुं संवरआणी
अभक्ष जात तजो एबावीसए। गुरुवयण विगतें वली पू
छो अनंतकाय बतीस ए॥ ६ ॥ अनंतोरे कंदजातिजा

णुंसह्न । जसुन्नक्षणरे पातिक बोल्याछै वह्न कचूरहल
दरेनीलीआदूचली ॥ वज्रसूरण रे कंदवज्ञ कुलीफली
७ ॥ जेफलीअकुंला बीजपाखै चाखैं चतुरनर आंबि
ली । आलूपिंझालू थेगथूहर ज्ञातावरि लसुण कली गा
जरमूलागिलोयगिरणी बिरालीटुकवत्थुलो पल्पंकसूरण
वालिवहला मोथिनीली सांन्नलो ॥ ८ ॥ वंज्ञकरेलारे
कुंपलकवलातसतणा अंकूरारेलोढाते जलपोयणाकुंआ
रीरेन्नमर वृक्षनी बालझी जेथूहररे लोकेअमृत वेलझी
९ ॥ वेलझी केरातंतुताजा खिल्लोझनें खरसुआ नुइफो
झक्षत्रा कारजाणु नीलफूली सविजुआ । वत्रीज्ञाबोले
प्रसिद्ध बोल्या ॥ श्रीलक्ष्मी रतसूरी इमकहै परिहरै
जेवज्ञदोष जांणीप्राणी तेसविसुख लहै ॥ १० ॥ इति
अन्नक्ष अनंतकाय सिज्झाय ॥

निंदामकरजो कोई पारकीरे निंदानाबोल्या महापा
परे वयरविरोध वाधेघणारे ॥ निंदाकरतो नगिणे माय
बापरे निं० ॥ १ ॥ दूरबलंती कांदेखो तुम्हेरे पगमां
बलती देखोसज्ञ कोयरे ॥ परनामलमां धोयालूगझारे
कहोकिम उजलाहोयरे निं० ॥ २ ॥ आपसंन्नालो सज्ञ
कोआपणोरे निंदानी मुंकोपरीटेव रे थोझेघणे अवगु
णसज्ञन्नस्था रे केहना नलियाचूवे केहनानेवरे निं० ॥
३ ॥ निंदाकरे तेथायेनारकी रे। तपजपकीधो सज्झाय
रे ॥ निंदाकरेतो करज्यो आपणी रे जिमछूटक बारो
थायरे निं० ॥ ४ ॥ गुणग्रहीज्यो सज्ञकोतणोरे जे मां
हिदेखो एकविचाररे ॥ कृष्णपरैंसुख पांमस्योरे समय
सुंदर सुखकाररे निं० ॥ ५ ॥ इति निंदानी सिज्झाय ॥

ढाल चोपाइनी । पवयणदेवी समरीमात कहिस्युमधु
रीसीमनवात धर्म्मआसातन वर्जितकरो । पुन्यरजा

चि० ॥ २ ॥ सूधोसंयम आदरो। टालोविपय विका
र ॥ पांचेइंद्री वसिकरो । जिमहोय बूटकवार चि०
३ ॥ निद्राविकथा परिहरो । आराधो जिनधर्म॥ स
मकित रतनहियेधरो । नांजेंमिथ्यानर्म चि० ॥ ४ ॥
वीरजिणंद पसानले । अहिपुर नगरमझार ॥ तवन
रच्योरलियामणो । परमकृपाल उदार चि० ॥ ५ ॥
इति चउगति वेलसिज्झाय ॥

जिनसासनरे सूधीसद्दहणाधरू सुणगुरुमुखरे नवेतत्व
सुधाकरू । मिथ्यामतिरे कपटकदाग्रह परिहरू। शील
पालैरे तेनरसमकित मनखरे १ ॥ मनखरेसमकितसुद्ध
पांले टालेदोप दयापरो । धुरिपंच अणुव्रत त्रिण गुण
व्रत च्यारसिक्षा व्रतधरो । इमदेश विरती क्रियानिर
ती सुणोनविअणनिरमली। दाखवीनिजगुण परहकेरा
दोप ममकाढोवली ॥ २ ॥ ममकाढोरे लोनें नरकुडु
करो । जाणीसावद्यरे अनक्ष वावीसे परिहरो वड
पीपलरे पीपरि निंवकचुंवरो ॥ उंवरफलरे रखेजोउ
नक्षणकरो ॥ ३ ॥ रखेनक्षण करोमांखण मद्यमधुआ
मिपतणुं । विपहिमकरहा बांझिपरहा दोपमूल माटी
घणुं । परिहरो सज्जनरयणि नोजन प्रथम दुरगतिवा
रणुं ॥ ममकरोव्यालू अतिअसूरू रविउदय विनपार
णुं ॥ ४ ॥ अथाणूरे अनंतकाय सविनेमिये काचो
गोरसरे मांहिकठुल नविजीमिये ॥ वायागणरे तुच्छ
फलसविबंझिये आपण पूंरे व्रतलेई नविखंझिये ॥ ५ ॥
खंझियेनवि सविनेमलेई वेइफल व्रतपंगनुं ॥ अज्ञात
फल वज्रवीजनोजन चलितरस जयजेहनुं संवरआणी
अनक्ष जात तजो एबावीसए। गुरुवयण विगतें वली पू
बो अनंतकाय बतीस ए॥ ६ ॥ अनंतोरे कंदजातिजा

णुंसक्त । जसुजनक्तणरे पातिक बोल्याछै वक्त कचूरहल दरेनीलीआदूनली ॥ वज्रसूरण रे कंदवक्त कुलीफली ७ ॥ जेफलीअकुंला बीजपाखै चाखैं चतुरनर आंबिली । आलूपिंडालू थेगथूहर शतावरि लसुण कली गाजरमूलागिलोयगिरणी बिरालीटुकवत्सुलो पलपंकसूरण वालिवहला मोथिनीली सांजलो ॥ ८ ॥ वंशकरेलारे कुंपलकवलातसतणा अंकूरारेलोढाते जलपोयणाकुंआरीरेजमर वृक्तनी छालडी जेथूहररे लोकेअमृत वेलडी ९ ॥ वेलडी केरातंतुताजा खिल्लोडनें खरसुआ जुइफोडक्षत्रा कारजाणु नीलफूली सविजुआ । बत्रीशबोले प्रसिद्ध बोल्या ॥ श्रीलक्ष्मी रत्नसूरी इमकहै परिहरै जेवक्तदोष जांणीप्राणी तेसविसुख लहै ॥ १० ॥ इति अनक्त अनंतकाय सिज्झाय ॥

निंदामकरजो कोई पारकीरे निंदानाबोल्या महापापरे वयरविरोध बाधेघणारे ॥ निंदाकरतो नगिणे मायबापरे निं० ॥ १ ॥ दूरवलंती कांदेखो तुम्हेरे पगमां बलती देखोसक्त कोयरे ॥ परनामलमां धोयालूगडारे कहोकिम उजलाहोयरे निं० ॥ २ ॥ आपसंजालो सक्तकोआपणोरे निंदानी मुंकोपरीटेव रे थोडेघणे अवगुणसक्तजनस्या रे केहना नलियाचूवे केहनानेवरे निं० ॥ ३ ॥ निंदाकरे तथायेनारकी रे। तपजपकीधो सक्तजायरे ॥ निंदाकरेतो करज्यो आपणी रे जिमछूटक बारो थायरे निं० ॥ ४ ॥ गुणग्रहीज्यो सक्तकोतणोरे जे मांहिदेखो एकविचाररे ॥ कृष्णपरैंसुख पांमस्योरे समय सुंदर सुखकाररे निं० ॥ ५ ॥ इति निंदानी सिज्झाय ॥

ढाल चोपाइनी । पवयणदेवी समरीमात कहिस्युंमधुरीसीमनवात धर्म्मआसातन वर्जितकरो । पुन्यखजा

नोपोतेन्नरो ॥ १ ॥ आसातन कहिये मिथ्यात तसवर
जनसमकित अवदात आसातनकरतो न्नवकरै दीर्घन्न
वदुखपोतेवरें ॥ २ ॥ आहारविन्न आसातनमूल तेहनुं
घरस्नान ऋतुप्रतिकूल तेऋतुवंती राखोदूर । जोतुम्हे
वांछो सुखन्नरपूर ॥ ३ ॥ दर्शनपूजा अनुक्रमेंघटें च्या
रेसाते दिवसेंवटें परसासन पिणइमसंदेह । च्यारेसुध
होयेतेदेह ॥ ४ ॥ पहलेदिन चंडालिनि कही बीजेदिन
व्रम्हघातनिसही । त्रीजेदिन रजकणि समजाण चोथे
सुद्धहोवें गुणखांण ॥ ५ ॥ ऋतुवंती करे घरनुंकाम ।
खांडण पीसण रांधणठाम ॥ तेअन्ने प्रतिलान्नैं गुणी
सदाति सघली पोतेहणी ॥ ६ ॥ तेहज अन्नन्नत्तादि
कजीमें तेणें पापेंधनदूरेन्नमें । अन्नस्वाद नहोयेलवले
स सुन्नकरणी जायें परदेश ॥ ७ ॥ पापडवडी केरादिक
स्वाद ऋतुवंती संगतिथीलाद । लूडण न्नूडणनें साप
णी परन्नवें तेथाये पापणी ॥ ९ ॥ ऋतुवंतीघरे पा
णीन्नरे तेजल देहरासर जोवरे । वोधवीज नविपामें
किमें असातनथी वडुन्नवन्नमें ॥ ९ ॥ असिज्झाईमां
जीमवा धसें विचेंवेसीनें मनमां हसें । पोंतेसवे अ
न्नडावीजिमें तेणें पापें दुरगति दुखखमें ॥ १० ॥ सा
मायक पडिकमणुं ध्यान असिज्झाई येनवि सूझे दान
असिज्झाईयें जोपुरुष आन्नडे तसफरसे रोगादिकनडै
११ ॥ ऋतुवंती एकजिनवरनमी तेणें करमें तेवहु
न्नवन्नमी । अनेंचंडालणीथाये तेवली जिनआसातन
तेहनेफली ॥ १२ ॥ अेम जांणी चोखाईन्नजो अवधि
आसातन दूरैंतजो । जिन सासनक्रिया अनुसरो जिम
न्नवसायर हेलांतरो ॥ १३ ॥ श्रद्धालू सेवाविधिसार
अनुपान निजशक्ति अपार द्रव्यादिक दूषण परिहरे

पक्षपात पिणतेहनोकरें ॥ १४ ॥ धन्य पुरुषनें होय विधिजोग । विधिपक्षा राधक शिव जोग ॥ विधि बहुमानै धन्यजेनरा । तिमविधि पक्षअदूसगपरा ॥ १५ ॥ आसातन सुधहोय जेजीव । विधिपरिणांमें होवें तसपीव ॥ अविधि आसातन जेपरिहरें । न्यायें शिवलक्ष्मी तसवरें ॥ १६ ॥ इति असिज्झाई समाप्त ॥

ढाल १ ऋषभनोवंश रयणायरूए ॥ एदेशी ॥ सदगुरु एहवासेविये । जेसंयमगुणरातारे ॥ निजसमजगजनजांणता । वीरवचननें ध्यातारे ॥ १ ॥ सदगुरु एहवा सेविये । एआंकणी च्यारकषायनें परिहरें ॥ साचूं शुभमति भाषें रे । संजमवंतअकिंचना ॥ सनिधिकांइनराषें रे ॥ २ ॥ सद० ॥ आणींभोजन सूझतो । साहमीने देईभुंजें रे ॥ कलह कथा सविपरिहरें । श्रुत सिज्झायप्रयुंजै रे ॥ ३ ॥ सद० ॥ कंटकग्राम नगरतणा । समसुखदुख अहिआसें रे ॥ निरभय हृदयसदा वरे । बहुविध तपसुविलासें रे ॥ ४ ॥ सद० ॥ मेहमेदिनी परसवसहें । काउसगें परितापोरे ॥ खमियपरीसहउद्धरे । जाति मरण भयव्यापो रे ॥ ५ ॥ सद० ॥ करें क्रमवचनसुसंयता । अध्यातमगुण लीनारे ॥ विषयविभूति न अभिलपें । सूत्र अरथरसपीनारे ॥ ६ ॥ सद० ॥ एहकुसीलमेंइमकहे । जेहथी परजन रूसें रे ॥ जाति मदादिक परिहरी । धर्म ध्यान विभूसें रे ॥ ७ ॥ सद० ॥ आपरही व्रतधर्ममां । परनें धर्ममां थापें रे ॥ सर्वकुशील लक्षणत्यजी । वचन भत्र नांकापें रे ॥ १ ॥ सदगुरु ॥ अध्ययने कहिया गुण घणा । दशवैकालिक दशमें रे ॥ कचन परि तेह प

रखिये । एकालें पिण विसमें रे ॥ १ ॥ सद्गुरु
विये । ढाल ॥ २ चउपई ॥ उत्तराध्ययनें
तणो । मारगतेहिवेन्नवियणसुणो ॥ हिंसा
अदत्तअवंज्ञ । ठांकें पुनपरिग्रह आरंज्ञ ॥ १
पुष्प वासित घरचित्र । मनें न वंछें परम प
जिहांरहतां इंद्रियसविकार । कामहेतु हो
वार ॥ ११ ॥ स्त्रीपज्ञुपंरुग वर्जितठांम ।
वास करें अन्निराम ॥ घरनकरें नकरावें कदा
थावरवध जिहांवें सदा ॥ १५ ॥ अन्न पान
वेंपचें । पचतोदेखी नविमनरुचें ॥ धाननीरपृथ
पात । निश्चितजीवतणो जिहांघात ॥ १२
अगनि दीपावें नही । ज्ञास्त्रसरव धारूतेसही
नतृणसमवज्ञमनधरे । क्रय विक्रय कहियें
॥ १४ ॥ खरीदार क्रय करतो कह्यो । विक्र
वलिवाणियो ॥ क्रयविक्रय मांवर्ज्जेह । न्निक्षु
विपालें तेह ॥ १५ ॥ क्रयविक्रयमां वज्ञ
न्निक्षावृत्ति महागुणखाण ॥ इमजाणि आग
सरी । मुनिसमुदान करें गोचरी ॥ १६
लालचनकरें गुणवंत । रसअर्थे नविन्नुंजैदं
मजीवितरक्षाहेत । संतोषीमुनि न्नोजनलेत ॥
अर्चन रचना पूजानती । नविवंछें ज्ञुन्नध्यानी
करीमहाव्रत आराधना । केवल ज्ञानलहे
॥ १८ ॥ ढाल ३ ॥ श्रीमंधरजिन त्रिन्नुवन
एदेशी ॥ मारग साधुतणोवेन्नावें । दर्शन
रित्रस्वन्नावें ॥ चरकादिकआचारकुपंथ । पास
नोनिजयथ ॥ १९ ॥ आधाकर्मादिकजेसेवें ।

थायेंकुमतकुमारग गामी ॥ २०॥ मारगएकज्ञहिं सारूप । जेहथीऊतरियेंजवकूप ॥ सर्वयुक्तिथीएहज जांणो । एहजसार समयमनआणो ॥ २१ ॥ ऊरध अधतिरछाजेप्रांणी । त्रसथावर ते नहणेंनाणी ॥ एस णदोषत्यजेंउद्देशी । कीधूं अन्न न लियें शुज़लेसी । ॥ २२ ॥ आधाकर्मादिक अविशुद्ध । अवयव मिश्रि तजेबैं अशुद्ध ॥ तेपिणपूति दोषथी टालें । एमारग संयम अजुआलें ॥ २३ ॥ हणतानैं नवि मुनिअनु मोदें । कूपादिकनवपाणेंमोदें ॥ पुण्य पापतिहां पूछें कोई । मौनधरे जिनआगम जोई ॥ २४ ॥ पुण्यकहें तोपातिक पोषें । पापकहें जन वृत्ति विशोषें ॥ कें जाषें निरदोषआहार । सूझें अमने इहां अधिकार । ॥ २५ ॥ सुगतिकाज सवि किरियाकरतो । पूरण मा रग जाषें निरतो ॥ जवजलवहता जननेंजेह । द्वीप समानकरें दुखछेह ॥ २६ ॥ एह धरम नलहें अ ज्ञानी । वलिय अपम्रित पंम्रितमानी ॥ बीजउदक उद्देशिकनुंजी । ध्यानधरे असमाधि प्रयुंजी ॥ २७॥ मांस जक्षण ध्यावें पखी । ठंकादिक जिम आमिस कंखी ॥ विषय प्राप्ति ध्यायें तिम पापी । वकुलारंज परिग्रहथापी ॥ २८ ॥ विषयतणांसुखवछैप्रांणी । परिग्रहवत नते सुहम्रांणी ॥ ते हिंसानादोष नदाखै । निजमति कल्पित कारणजाखै ॥ अंधचलावे फाणी नावा । तेहसमर्थ न तीरे जावा ॥ मिथ्यादृष्टी जव जलपम्रिया । पार न पामें तिम दुखनम्रिया ॥ ३० ॥ जेहअतीत अनागत नांणी । वर्त्तमानतस एककहांणी दयामूल समता मयसार । धर्मतेहनो परमाधार ॥ ॥ ३१ ॥ धर्मलही उपसर्गनिपातें । मुनिन चलें जिम

गिरि घनवातैं ॥ इग्यारमुं अध्ययन संभारो । बीजे अंगें इम मनधारो ॥ ३२ ॥ ढाल ४ ॥ इणपुर कंबल कोई नलेसी ॥ तेमुनिनें भामणडें जइये ॥ जे व्रतकिरियापालै रे । सूधूंभाखी जेवलि जगमां ॥ जिन मारग अजुआलैं रे ॥ ३३ ॥ ते मुनिने भामणडेंजइये । एआंकणी ॥ जेसूधो मारग पालें ते । शुद्ध कहैं निरधारीरे ॥ बीजो शुद्ध कहैं भजनाये । कह्यो भाष्य व्यवहारीरे ॥ ३४ ॥ तेमु० ॥ छिविध बालते शुद्धन भाषें । भाषें संवेगपाखीरे ॥ ए भजनानो भाव विचारो । ठाणांगादिकसाखीरे ॥ ३५ ॥ तेमु० ॥ कुगुरु वासना पाशेपडिया । निजबलथी जेछोडै रे ॥ शुद्ध कथकते गुणमणि भरिया । मारग मुगतिने जोडै रे ॥ ॥ ३६ ॥ तेमु० ॥ बकुल असंयतनी जे पूजा । एद समुं अच्छेरूं रे ॥ छठेंशतकैं भाख्यो ठाणांगें । कलिल कण अधिकेरूरे ॥ ३७ ॥ तेमु० ॥ एहमां पिण जिन शासनबलथी । जेमुनि पूज चलावेरे ॥ तेहविशुद्ध कथक बुध जनना । सुरपति पिण गुणगावेरे ॥ ३८ ॥ ॥ तेमु० ॥ करतो अति दुःकर पण पडियो । अगीतार्थ जंजालैं रे । शुद्ध कथक हीणो पिण सुंदर ॥ बोल्युं उपदेश मालैं रे ॥ ३९ ॥ तेमु० ॥ शुद्ध प्ररूपक साधु नमीजे । शरण तेहनुं कीजे रे ॥ तास वचन अनुसारे रहिये । चिदानंद फल लीजेरे ॥ ४० ॥ तेमु० ॥ सिरिणय विजय गुरूणं । पसाय मासज्ज सयल कम्म करं ॥ भणिया गुणा गुरूणं । साहूण जसंसिणंएए ॥ ॥ ४१ ॥ तेमु० ॥ इतिश्री सुगुरुनी सिज्झाय ॥ चोपैनी देशी ॥ प्रथमनमुं सहगुरुनो नांम । जिम मनवंछित सीझैंकांम ॥ प्रथवी सचित अचित तणोविचार ॥

तेकहिये सूत्रनें आधार ॥ १ ॥ अव्यापार क्षेत्रभूमि
का । अंगुल च्यार अचित होवें तिका ॥ राजमार्गे
अंगुलते पंच । सेरिजिहां सातअंगुलसंच ॥ २ ॥ गृह
भूमिकायें दशआंगुला । मलमूत्रठांमें पनरतेभला ॥
चउपदठांमें अगुलअेकवीस । चुल्लाअध अंगुल ब
तीस ॥ ३ ॥ नीमाहेठ वहोत्तर अचित । पछेंजिन
कहें होवें सचित्त ॥ इंटवाहे वेंहवें ते जोय । एकसो
ब अंगुल अचितजहोय ॥ ४ ॥ प्रासुक भूमिजांणेंत
जती । तेहने पाप न लागेरती ॥ लालविजय शिष्य
मेरूकहें । श्रीसुयगडांगवृत्तिथीलहें ॥ ५ ॥ इति पृथ
वीसचित्ताचित्तसिज्झाय ॥ ढाल ॥ पेख करमगति प्रा
णिया । सायरजेम अथाहोरे ॥ अलख अगोचर एस
ही । इमभाषें जिणनाहोरे ॥ १ ॥ ब्रम्हा विष्णु महे
सरे । करता भाषें जेहोरे ॥ मारग चूकिया ते वली
धीरज । उजड पडें तेहोरे ॥ ५ ॥ पे० ॥ एकरसें
करता सही । मनभीजो मत जाणोरे ॥ करम पसाये
भोगवें । रांक अने वलि रांणोरे ॥ ३ ॥ पे० ॥ पाप
पडल सहु परिहरो । साचो जिनधर्म साधोरे ॥
पोसी पोढो करमनें । जीव भणी मत वंचोरे ॥ ४ ॥
॥ पे० ॥ करमवसे सुख दुखहुवे । लीलालखमी ला
होरे ॥ भला भला भूपतिनम्या । रणहुंतारिमराहोरे ॥
॥ ५ ॥ पे० ॥ करकंडू नें साधवी । परठवियो सम
सांणोरे ॥ विडुं देसनो राजियो । दुक्कर करम प्रमा
णोरे ॥ ६ ॥ पे० ॥ सोले सिणगार वणावतां । भर
तेसर सुविचारोरे ॥ तपजप विनापिण पामियो । केवल
महल मझारोरे ॥ ७ ॥ पे० ॥ राणा रावणनो कि
यो । लखमण वीर संहारोरे ॥ लंकविभीषण भोग

तरोमणिद्रौपदी । नामथकी निस तारोरे ॥ करम
गसेन्नोंतिणसही । पंच वस्त्रान्नरतारोरे ॥ २१ ॥ पे०
हस पचीस सेवा करे । सुर लखमी त्रिण पारोरे ॥
नूम चक्रीस नरकैं गयो । ब्रम्हदत्त ञ्रधिकारोरे ॥
२२ ॥ पे० ॥ धन धन धन्नों धीरजें । पग पग
रुद्धि विसेखोरे ॥ करमपसायें सुखलहें । कयवंनो वलि
खोरे ॥ २३ ॥ पे० ॥ वस्तपाल तेजपालसे । क
ग ञ्रने वलि न्नोजोरे ॥ विक्रम विक्रम पूरियो ।
मर तणी ए मोजोरे ॥ २४ ॥ पे० ॥ सम्वत सतरते
ात्तरें । श्री सुमतिहंस उवझायें रे ॥ करम पचीसी
नणी । न्नणतां ञ्राणंद थायें रे ॥ २५ ॥ पे० ॥ इति
रम पचीसी समाप्ता ॥

ल ॥ नदि यमुनाके तीर उडै दोय पंखिया एदेशी ॥
काम अधगजराज ञ्रगाध महाबली । कागल ह
णीदेख मदोन्मत्तऊबली ॥ ञ्रावै पावै दुख ञ्रना
ोमिपडै । अंकुशसीस सहत फरसेंद्रीनडै ॥ १ ॥
च्छाचारी मच्छद्रह माहेंरहै । ञ्रांको फलवींधके
ोरमैंनाखहै ॥ गिलैमूढ न्नपजाणजायकंठैफहै । रस
ा लणैवस मरण लहै जिनवरकहै ॥ २ ॥ कमल स
हस्त्रदल विमल विपुल वासावली । चंचल लोल
गंधलीयण ञ्रावैञ्रली ॥ ञ्रस्तगतरवि होय फूल
ावैमिली । घाणेद्री वसिप्राण तजैकली ॥ ३ ॥
ीपक ज्योत उद्योत निहालैपतगियो । सोवनन्नाति
कांत ग्रहिवा लोन्नियो ॥ ञ्रज्ञानी सुखजाण दीपक
ाहेंधसै । न्नसमझवै तिणठामचक्षुइंद्रीवसै ॥ ४ ॥
थाधिप वनगहन सुखै रहै हिरणलो । धीवरञ्रावी
ीणवजाय गावैंन्नलो ॥ सरस सुणेवा नादतिहाऊनो

रहै । मारै कांनवसेण मरण दुख तेलहै ॥ ५ ॥ पंचे द्रीचपलते आपणावसकरो । दुरगति दुखदातारजांणी उपसमधरो ॥ आराहो जिनधर्म आणी मनआसता । कहै जिन हर्ष सुजाण लहोसुख सासता ॥ ६ ॥ इति पंचेंद्री उपरि स्वाध्याय ॥

परउपगारी साधु सुगुरु इमउपदिसै । मीठी अमियसमान सुणी मनउल्लसै । विसनवुरा छै सात साता इणथीनही ॥ धर्म अर्थने काम विणासे एसही ॥ १ ॥ प्रथम विसन जूवा पेल वीजोमांससुंरसी । तीजो विसन सुरापान चौथो वेश्यावसी ॥ पांचमो आखेट कजाण छठो चोरी तणो । परनारीसुं संग विसन सातमोंगिणो ॥ २ ॥ चौपड़ पासासार मांडी रमै जूवटा । मुखबोले मारोमार बांधै कर्म चीकटा ॥ नलहारी निज नारि नगरथी नीसर्यो । रह्या पांडववनवास देशवटै दुखसह्यो ॥ ३ ॥ अजक्ष्य मांस आहार अशुचिपिंड जीवरो । खातां वडला दोषकुजसवाधैखरो ॥ राजा श्रेणिक आयु नरकनो बांधियो । विलविलतो वारोवार श्रीवीरजिन थिरकियो ॥ ॥ ४ ॥ रातामाता मदपांन रहसी जेप्राणियां । त्यांरा ड़ेरा खरा ते नरकनैं तांणिया ॥ रड़ैलड़ैपड़ै लाल माखी मधुमालती । इणथी यादववाली द्वारामती ॥ ॥ ५ ॥ वेश्या धुतारी नारि नहीथिर नेहड़ो । जांणै गहिली नारि उपाम्यो वेहड़ो ॥ राताइणरै रंग बूड़ा तेवापड़ा । काढ्यो कयवन्नोकूट खादीधननीजड़ा ॥ ॥ ६ ॥ जलचर थलचर जीव हणै पशु पंखिया । तेशरैपापेंपिंड़नदेखेआंखियां ॥ दसरथ ज्युंपापारंभर ह्योरौद्रध्यानमैं । जायपड्योउंडी खाड़केनरकनिगोदमें